व्यंग्य या विनोद का मज़ा तो यह है कि पढ़नेवाला पढ़ते ही फड़क उठे। जिस व्यक्ति या दल पर व्यंग्य की बौछार की गई हो, उसे भी बुरा न लगे; तभी लेखक की ख़ूबी है। देश-काल-पात्रोपयोगी व्यंग्य का प्रयोग वास्तव में बड़ा महत्त्व रखता है। उसके उपयोग से बिगड़ों का सुधार और अधःपतितों का उद्धार होना कोई आश्चर्य की बात नहीं।

सिद्धहस्त, प्रतिभाशाली हास्य-लेखकों के लिखने का ढंग ऐसा होता है कि उनके निर्मम आक्रमण में भी अपनपौ अथवा सहानुभूति की पुट पाई जाती है। जो कोई लेखक के आक्रमण का लक्ष्य होता है, वह उस रचना को पढ़कर यह अनुभव करने लगता है कि लेखक मुझे अपना ही आदमी समझता है, मेरे बिगड़ने से या मेरी बुराइयों से उसे कष्ट हो रहा है, और वह सच्चे दिल से चाहता है कि मैं सुधर जाऊँ। बस, यह अनुभव ही उसे अपनी बुराई दूर करने पर उद्यत करता है। इसका एक ही उदाहरण देना यहाँ यथेष्ट होगा। एक नौकर स्व० महारानी विक्टोरिया की चाल की नक़ल उनके पीछे किया करता था। महारानी को किसी तरह यह मालूम हो गया। उन्होंने उससे एक दिन कहा—"मुझे नहीं मालूम, मैं किस तरह चलती हूँ। ज़रा मेरी तरह चलकर दिखाओ तो।" बस, नौकर पर इसका वह असर हुआ, जो उसे दंड देने से कभी न हो सकता। उसी दिन से उसने वह आदत छोड़ दी। व्यंग्य में यही विशेषता होनी चाहिए।

रह गया केवल विनोद। वह भी अपना ख़ास स्थान रखता है। जीवन में विनोद की बड़ी आवश्यकता होती है। जिसमें विनोद की मात्रा बिलकुल नहीं, जो सदा गंभीर रहता है, उस मातमी सूरत से लोग दूर ही रहना पसंद करते हैं। स्थानाभाववश हम इस विषय की विस्तृत विवेचना और विश्लेषण करने में असमर्थ हैं। इतने ही से

गंगा-पुस्तकमाला का छाछठवाँ पुष्प

मिस्टर व्यास की कथा

[हास्य-रस की अपूर्व रचना]

लेखक
पं० शिवनाथजी शर्मा बी० ए०
(आनंद-संपादक)

प्रकाशक
गंगा-पुस्तकमाला-कार्यालय
प्रकाशक और विक्रेता
लखनऊ

प्रथमावृत्ति

सजिल्द ३)] सं० १९८४ वि० [सादी २॥)

आग्रह से पढ़ा करते थे। 'उचितवक्ता' और 'भारतमित्र' में भी आपके हास्य-रस के लेख समय-समय पर छपते रहते थे।

इसके बाद आपने 'वसुंधरा' नाम की मासिक पत्रिका लखनऊ से निकाली। सन् १९०६ ई० में आपने अपने दामोदर-प्रेस से 'आनंद' नाम का साप्ताहिक पत्र निकाला, जो अब तक निकल रहा है। यह पत्र दैनिक भी निकलता है। इसमें 'मिस्टर व्यास की कथा'-शीर्षक से आपके हास्य-रस के लेख बराबर निकला करते थे। उन्हीं में से चुने हुए सौ लेखों का संग्रह करके हमने यह प्रस्तुत पुस्तक प्रकाशित की है।

पं० शिवनाथजी हास्य-रस के ही नहीं, राजनीति के भी उद्भट लेखक हैं। जिन्होंने आपके ऐसे लेखों को पढ़ा है, वे जान सकते हैं कि आप किस योग्यता से अपने पक्ष का प्रतिपादन करते हैं। आप नरमदल की राजनीति के अनुयायी हैं। पर समय-समय पर सरकार की खरी और तीव्र आलोचना करने में कभी आप पीछे नहीं रहे। आपको कविता करने का भी शौक़ है। आपकी हास्य-रस की कविताएँ इस संग्रह में पाठकों को देख पड़ेंगी।

पंडितजी एक सुयोग्य अध्यापक भी हैं। आपने कालीचरण-हाई-स्कूल में बहुत दिनों तक अध्यापक रहकर अब कई साल से अवकाश ग्रहण कर लिया है। इसका कारण आपके स्वास्थ्य का ठीक न रहना ही था।

पंडितजी ने हास्य-रस की कई पुस्तकें लिखी हैं। आपकी नागरी-निरादर, मानवी कमीशन, दरबारीलाल, नवीन बाबू, बहसी पंडित, चंडूलदास, शिक्षा-रहस्य आदि हास्य-रस की पुस्तकें पढ़ने ही योग्य हैं। इनमें कुछ शायद अप्रकाशित भी हैं। इनके अतिरिक्त आपने मृगांकलेखा और ग़दर का फूल, ये दो उपन्यास भी लिखे हैं। 'अवाक् वार्तालाप' नाम की आपकी रचना अभी प्रकाशित नहीं हुई।

प्रकाशक
श्रीदुलारेलाल भार्गव
अध्यक्ष गंगा-पुस्तकमाला-कार्यालय
लखनऊ

मुद्रक
श्रीदुलारेलाल भार्गव
अध्यक्ष गंगा-फ़ाइनआर्ट-प्रेस
लखनऊ
[पृष्ठ १-४१६ नवलकिशोर-प्रेस में मुद्रित]

समालोची "क्रिटिक्" चैव रिव्यू सूच्छिद्रग्राहकः ।
एडीटराणां सर्वेषां मध्ये तत्त्वविशारदः ॥ ४ ॥

यह हमारे नामों का नमूना है। इनमें कुछ तो हमारे नाम हैं, और कुछ हमारे मित्रों के ; क्योंकि हम अपने मित्रों के बीच में "मेरा-तेरा" शब्दों का व्यवहार करके व्याकरण की टाँग नहीं तोड़ते, और परम वेदांतियों के सिद्धांतानुसार सबका माल अपना ही समझते हैं। हमारी शिक्षा बड़ी गंडेदार रही। पहले तो हम बहुत दिन तक गुरूजी की टकसाल में पहाड़ी तोते के समान पहाड़ों की रटंत करते रहे, और इसी मनुष्य-जन्म में पक्षियों के स्वभाव का अनुभव करने लगे। पर जब यह देखा गया कि इसमें कुछ लाभ नहीं निकला, तब हमारे शुभचिंतकों ने हमको हिंदी के खेत में छोड़ा। इसमें हम बहुत चरे। साधारण पुस्तकों से लेकर रामायण तक को जब श्रीमान् पेटदेव के अर्पण कर चुके, तब संस्कृत के खेत में जोते गए, और झुटैया बाँधकर ऐसी रटंत के घिस्से लगाए कि हमारी जिह्वा हमारी होने के कारण घबरा उठी। इसमें भी कुछ ऐसे-वैसे ही रहे कि बीबी उर्दू और उनकी अम्माजान फ़ारसी के चंगुल में फँसे, और "सद शुक्र के शुद दौलते-वस्ले तो मयस्सर।" के गीत गाते हुए परकीया की मार का अनुभव करने पर उतारू हुए। बीबी उर्दू से और हमसे बहुत साबिक़ा रहा, पर पटी नहीं। अंत में उनको "डाइवोर्स" देकर हम बंग भाषा और महाराष्ट्री की उपासना का अनुष्ठान करने लगे। इसमें भी सिद्धि न हुई, और हमारी दाढ़ी-मूछ की खेती अब पकने लगी। इधर औलाद-पर-औलाद होने लगी, और बाल्य-विवाह की परम कृपा से हमारे घर में लौंडों की फ़ौज का सामान हो गया। एक दिन हम घबराकर रो दिए। हमको यह देखकर हैरत हुई कि अभी हमारी विद्यार्थी-अवस्था पूरी भी नहीं हुई, और इतने लड़के कहाँ से आ गए! अब

दो शब्द

अन्य सब रसों की अपेक्षा हास्य-रस पर सफलता के साथ क़लम चलाना कोई साधारण काम नहीं। जिसे हास्य-रस लिखने की, दूसरे के हृदय में गुदगुदी पैदा करके उसे हँसने के लिये विवश करने की जन्मजात, स्वाभाविक क्षमता नहीं प्राप्त है, उसका चेष्टा करके दूसरों को हँसाने का उद्योग करना वास्तव में अपनी ही हँसी कराना है।

हिंदी में ही क्या, प्रत्येक भाषा में यथार्थ हास्य-रस की रचनाएँ अल्प ही दृष्टिगोचर होती हैं, और इसका कारण वही है, जो ऊपर लिखा गया है। प्रत्येक देश या प्रत्येक जाति में सिद्धहस्त हास्य-लेखक इने-गिने ही पैदा होते हैं।

व्यंग्य और विनोद के द्वारा समाज को सुधारने की, उसकी बुराइयों को हटाने की चेष्टा प्रायः प्रतिभाशाली लेखक किया करते हैं। लक्ष्यहीन, उद्देश्यहीन हँसी के चुटकुले चाहे कोई कोशिश करके कुछ-कुछ लिख भी लें, पर इस प्रकार पुनीत उद्देश्य सामने रखकर सफलता-पूर्वक लेखनी चलाना बहुत ही कठिन है।

इस समय हिंदी में हास्य-रस की रचनाएँ अधिक संख्या में प्रकाशित होती नज़र आती हैं। प्रायः प्रत्येक दैनिक, साप्ताहिक और मासिक पत्रों तक में स्थायी रूप से व्यंग्य-विनोद का एक स्तंभ रक्खा जाने लगा है। परंतु खेद के साथ कहना पड़ता है कि उन स्तंभों में विशुद्ध हास्य-रस की कहीं झलक भी नहीं पाई जाती। वही कृत्रिम, असफल चेष्टा नज़र आती है। कभी-कभी तो हँसी के बदले लेखक की लाचारी पर करुणा का उद्रेक हो आता है।

दार के यहाँ कवियों की विदाई देने का ख़र्च आवश्यक ख़र्चों में गिना जाता था। इस उदारता के सहारे कुछ-न-कुछ काव्य की उन्नति हो जाया करती थी। ज़मींदारों की इस चाल से बड़े-बड़े साहित्य-ग्रंथ उत्पन्न हो गए, और कविता का एक ऐसा अंग पुष्ट हो गया, जिसके मुक़ाबले का दूसरा अंग जन्म-भर सिर पटकने पर भी आजकल के साहित्यप्रेमी पूरा न कर सके। कवियों के दो भेद सदा से चले आए हैं—एक उच्चतम और दूसरे साधारण। अंतिम विभाग के लोग, जो काव्य की बारीकियों को नहीं जानते थे, एक प्रकार की भद्दी कविता किया करते थे। इस कविता के कवि अपने को शायर कहते थे। उनमें उस्तादों के अखाड़े होते थे। ये अखाड़े दो दलों में विभाजित थे। एक कलँगीवाले दूसरे तुर्रेवाले बनकर आपस में खूब स्पर्द्धा दिखाते और जवाब सवाल के पद बनाकर चंग बजाकर गाते थे। शिक्षा के अभाव से ये कविराज आपस में गाली-गलौज करते-करते मार-पीट पर भी उतारू हो जाया करते थे। एक समय हिंदी-संपादकों को आपस में झगड़ते देखकर मरैठी के ढंग की कविता में जो उपदेश दिया गया था, वह इस प्रकार ध्यान देने योग्य है कि उससे इस बात का पता लगता है कि हमारे माननीय संपादकों की पब्लिक में कितनी क़दर है, और आजकल के अख़बारी कवियों की कविता से पुरानी मरैठी पद्धति यदि श्रेष्ठ नहीं, तो निषिद्ध भी नहीं थी। उसका कुछ नमूना इस भाँति है—

पहला सं०—मैं बड़ा और संपादक हैं सब छोटे ;
लिखने का न जानें ढंग बुद्धि के मोटे।
दूसरा सं०—सुन बड़े कड़ाई में भी तले जाते हैं ;
लड़के-वाले सब मज़े ले चख जाते हैं।
पहला सं०—हो बच्चे अभी नहिं दाँत तुम्हारे टूटे ;
इसलिये बड़ों को गाली-गुफ़्ता फूटे।

(पंडित का प्रवेश)

पंडित—

नमो देव स्वारथ, नमो देव स्वारथ ;
तिहारे निहारे हमीं राग गाते।
धरम केर उपदेश हैं जौन भैया ;
तिन्हें बक्क समझें, कभू ना सुनाते।
टका दो, टका दो, यही धुन हमारी ;
टके में सुरग औ नरक हम पठाते।
पड़े भाड़ में राँड़ हिंदी, हमें क्या ;
हम आपन बिटौना का उर्दू पढ़ाते।

(साहब का प्रवेश)

साहब—

जो स्वारथ हमारे मग़ज़ में हैं आते ;
तो हम खूब सब पर हैं टिक्स लगाते।
जो नेटिव कभी बढ़के चलता तभी हम ;
गवर्मेंट को बात उलटी सुझाते।
तुम्हारी मदद से अरे यार स्वारथ ;
हम इंसाफ़ में भी कभी फ़र्क़ लाते।

(बाबाजी का प्रवेश)

बाबाजी—

महाराज स्वारथ, तुम्हारे भरोसे ;
हमारे निकट रोज़ मिष्टान्न आते।
सो नेत्तर चढ़ाकर व गाली सुनाकर ;
बकैं खूब मंतर सभी को डराते।
रसायन बनाने का लालच दिखाकर ;
बड़े सूम तक का हमीं माल खाते।

हमारे पाठकों को इस विषय का साधारण परिचय प्राप्त हो गया होगा।

इस पुस्तक के लेखक पं० शिवनाथजी के लेखों में व्यंग्य और विनोद, दोनों की यथेष्ट मात्रा पाई जाती है—दोनों का सम्मिश्रण दृष्टिगोचर होता है। इस पुस्तक के स्थल-विशेषों को उद्धृत करके उनके व्यंग्य और विनोद की ख़ूबियाँ यहाँ दिखलाई नहीं जा सकतीं। पाठक स्वयं पुस्तक को पढ़कर हमारे कथन की सार्थकता देख पावेंगे। इस पुस्तक के कोई-कोई स्थल तो इस ख़ूबी के साथ लिखे गए हैं कि बेअख़्तियार मुँह से वाह-वाह निकल जाती है। कहीं-कहीं पढ़ते समय हँसी के मारे पेट में बल पड़ जाते हैं, और पढ़नेवाला लोट-पोट हो जाता है।

शुरू के लेख पढ़कर गंभीर-से-गंभीर प्रकृति का पाठक हँसे विना नहीं रह सकता। कोई-कोई स्थल लेखक की गहरी अंतर्दृष्टि का प्रकृष्ट प्रमाण है। लेखक ने जगह-जगह पर जो मानव-चरित्र के गहरे अध्ययन और अनुशीलन का परिचय दिया है, वह वास्तव में प्रशंसनीय है। समाज की भीतरी तह तक मार्मिक खोज की नज़र डालना पंडितजी की उल्लेख योग्य विशेषता है। हमें आशा—नहीं, पूर्ण विश्वास है कि पंडित शिवनाथ शर्माजी के इन लेखों का समुचित समादर होगा, और शीघ्र ही हम आपके अन्य हास्य-रस के लेखों का दूसरा संग्रह लेकर अपने पाठकों की सेवा में उपस्थित हो सकेंगे।

दुलारेलाल भार्गव

का यह अंदाज़ था कि उसकी कृपा से सैकड़ों भले आदमी सफ़र-दाई बनकर माल लूटने लगे, और फ़ोनोग्राफ़ के रिकार्ड बेच-बेचकर इश्क़ देवता के मत का प्रचार करने को व्यापार का अंग मानने में संकुचित नहीं हुए।

बी नूरानीजान के प्लेटफ़ार्म पर खड़े होते ही करतल-ध्वनि होने लगी थी। उसके समाप्त होने पर "हुर्रे" घंटा-घोष हुआ। फिर बीबी साहबा ने इस प्रकार मुखारविंद खोला—

"ऐ बाज़ारू लेडियान, और शौक़ीन मेहरबान, आपने जिस तकलीफ़ को गवारा करके इस पंडाल याने कानफ़्रेंस के फूस-महल को सरफ़राज़ फ़र्माया है, उसका मैं तहेदिल से शुक्रिया अदा करती हूँ। इस मौक़े पर जिस गरोह ने आगे बढ़कर क़दम रक्खा, वही आला दर्जे को पहुँच गया, और जिसने काहिली की अदा का ख़याल किया, वही जहन्नुम-रसीद हुआ। (करतल-ध्वनि)

हमारी जमात ने हिंदुस्तान जन्नत-निशान को वीरान बना दिया। सच पूछिए, तो अगर हम लोगों के अबरुए-ख़ंजर से आबादी के अमीर लौंडे घायल न होते, तो क्या यहाँ की पुरानी हश्मत कभी जानेवाली थी? हमारी तिरछी निगाहों से मारे हुए हिंदुस्तानी आज तक बग़ैर दाना-पानी के घर-घर मारे-मारे फिरते हैं। यह कुछ अफ़सोस की बात नहीं। अफ़सोस होगा, तो उनको होगा, जिनके बुज़ुर्ग 'यवनी' को दोज़ख़ का निशान बताकर किताबों के वर्क़ काले कर गए हैं। हमारे वास्ते तो यह जश्न का वक़्त है। (करतल-ध्वनि) हमारी जमाअत ने तमाम पंडितान, उलमा और पादड़ी साहबान को जैसी करारी शिकस्त दी है, उनका दिल जानता होगा। (सुनो-सुनो) हम वे हैं, जिनके सामने आते ही मज़हबी तास्सुब के पर कट जाते हैं। अहले-इसलाम क़ुरान की शान भूल जाते हैं, अहले-हिंदू बुतपरस्ती से पस्त पड़ जाते हैं,

टाइप का एक पंडित है। इनकी दशा ऊपर कही कहावत से उलटी रही। पहले यह था कालिकाप्रसाद, फिर मुफ़लिसी से मेल होने पर "प्रसाद" का लोप हो गया, और यह कोरा कालिका रह गया। यह बाज़ार में पानी पिलाया करता था, इससे बम्हनई का कुदरती ख़िताब "महाराज" इसके नाम के पीछे दुम की तरह जोड़ दिया गया, और यह कालका महराज कहा जाने लगा। फिर पुलीस के झगड़ों में पड़कर इसको जेलख़ाने की हवा खानी पड़ी, और यह कालका का कल्लू बन गया।

अब यह कोरे कल्लू हैं। किसी ख़िताब से इसे मतलब नहीं। बिना मकान मार्गों में सोना, दिन-भर बेकाम घूमना, कभी तान मारना, कभी गाँजे-चरस की चिलम को सुलगाना, ये ही इनके महत्त्व की बातें हैं। इनकी घरवाली श्रीमती गुलब्बो बीबी हैं। वह पंडित को घर में घुसने नहीं देती। कारण इसका बड़ा लंबा चौड़ा है। आरंभ-काल में विवाह होने के बाद वर-वधू का बकवाद-युद्ध होने लगा। पंडित ग़रीबनी का गहना-गुरिया सब चर गया। इनमें "हनीमून" अर्थात् पति-पत्नी के सम्मेलन का प्रतिफल यह निकला कि देवता के लँगोटी बँध गई। स्त्री आटा पीस-पीसकर पेट पालने लगी, और पुरुष देवता फाकड़ेमस्ती के डंड पेलने लगे। स्त्री ने थोड़ी-बहुत पूँजी आटे के काम में पैदा कर ली है, और अब वह घर में महाराज को फटकने नहीं देती। वह बस्ती-भर में गुलब्बो बीबी के नाम से प्रसिद्ध है।

इधर लेक्चरबाज़ी और उपदेश की बीमारी बहुत बढ़ने लगी। कथा के नायक पंडित ने भी गेरुआ कुरता और उसी रंग की गांधी-कैप लगाकर चौराहों पर व्याख्यानबाज़ी का ख़ोनचा लगा दिया। अब यह कल्लू से "कालू आचार्य" कहे जाने लगे। कालू आचार्यजी की कुछ बानियाँ ये हैं—

पं० शिवनाथजी शर्मा

Ganga Fine Art Press, Lucknow.

परिचय

पं० शिवनाथ शर्माजी का जन्म काशी के गढ़वासीटोला महल्ले में, फाल्गुन-बदि ११, संवत् १६२४ वि० में, हुआ था। आपके पिताजी का नाम पं० दामोदर शर्माजी था। आप सारस्वत ब्राह्मण हैं। आपके पिताजी वेदपाठी और कर्मकांडी थे। ज्योतिष भी अच्छी जानते थे।

शिवनाथजी ने आरंभ में गुरूजी के यहाँ साधारण हिसाब-किताब की शिक्षा पाई। उसके बाद लखनऊ के स्वनामधन्य विद्वद्वर स्वर्गीय पं० ज्ञानेश्वरजी से आपने संस्कृत का अध्ययन किया। कारण, आप बाल्यकाल ही से लखनऊ आ गए थे। लखनऊ के क्रिश्चियन-कॉलेज में अँगरेज़ी की शिक्षा पाते रहे, और वहीं से बी० ए० पास किया। आपको विद्याध्ययन का व्यसन बराबर रहा, और वह अब तक जारी है। संस्कृत के पट्काव्यों का आपने अच्छी तरह अनुशीलन किया है। अँगरेज़ी के प्रायः सभी प्रधान और प्रसिद्ध कवियों की रचनाएँ आपने पढ़ी हैं। उनमें शेक्सपियर, मिल्टन और बायरन के आप विशेष भक्त हैं। आप उर्दू-फ़ारसी भी जानते हैं, और उन भाषाओं के कवियों की रचनाएँ भी आपने अच्छी तरह पढ़ी हैं।

हिंदी लिखने का आपको लड़कपन से ही शौक़ रहा। कॉलेज में दाख़िल होने के पहले ही आपने रसिकपंच नाम का एक हिंदी-पत्र निकाला था। पर वह दो साल तक निकलकर बंद हो गया। इसके बाद कलकत्ते से पं० सदानंद मिश्रजी के संपादकत्व में निकलनेवाले साप्ताहिक पत्र 'सारसुधानिधि' में आप लिखने लगे। उसमें 'चाटु-वार्ता'-शीर्षक से आपके हास्य-रस से शराबोर लेख निकलते थे। उस समय उन लेखों की बड़ी धूम थी। लोग उन्हें बड़ी रुचि एवं

अभी हाल ही में आपने प्रयोग-पारिजात नाम की एक बहुत उपयोगी पुस्तक लिखी है। इसमें पद्यों में हिंदी के मुहावरों का प्रयोग किया गया है। एक ग्रंथ 'काव्य-लतिका' भी आपने लिखा है। ये दोनों रचनाएँ अभी प्रकाशित नहीं हुईं। शेक्सपियर के कुछ नाटकों का भी आपने हिंदी-अनुवाद किया है। यदि हिंदी के पाठकों ने आपकी इस पुस्तक का यथोचित आदर किया, तो हम बहुत शीघ्र पंडितजी की अन्य कई रचना लेकर उनकी सेवा में उपस्थित होंगे। शर्माजी की संपूर्ण ग्रंथावली को अच्छे रंग-रूप में प्रकाशित करने का हमारा विचार है।

पंडित शिवनाथजी हिंदी के पुराने लेखकों में हैं। स्वर्गीय पं० प्रतापनारायणजी मिश्र, पं० दुर्गाप्रसादजी मिश्र, पं० बालकृष्णजी भट्ट आदि के आप समकालीन हैं। हास्य-रस के तो आप आचार्य ही माने जाते हैं। आप बड़े ही मिलनसार, हँसमुख, मुँहफट, निर्भय और सज्जन हैं। खेद है, इधर आप अर्से से बीमार हैं, और कई साल से हिंदी में कुछ लिखने-योग्य आपकी मानसिक स्थिति नहीं रहती।

हम ईश्वर से आपके बहुत शीघ्र नीरोग होने की प्रार्थना करते हैं। आपके सुयोग्य पुत्र पं० महेशनाथ शर्माजी ही इस समय आनंद का संपादन करते हैं। इस पुस्तक को प्रकाशित करने का सुअवसर प्रदान करने के लिये हम आपके कृतज्ञ हैं।

दुलारेलाल भार्गव

विषय-सूची

मिस्टर व्यास की कथा

प्रथम अध्याय

प्रस्तावना

प्रिय संपादक, जब तक पढ़नेवाले यह न जान लें कि लेखक कैसा है, तब तक वे किसी की लिखी चीज़ को मन लगाकर नहीं पढ़ते। हिंदुस्तान में पढ़नेवालों को यह एक नया रोग चिमटा है। इसकी दवा पहले करके तब लेख लिखने की "बिसमिल्ला" करनी चाहिए। इसलिये कुछ अपनी रामकहानी पहले ही से कह देना ज़रूरी है।

सबसे पहले हमारे नाम की दास्तान सुनिए। इसके पूरे वर्णन में दो-चार पृष्ठ पूरे हो जायँगे। हमारे सैकड़ों क्या, हज़ारों नाम हैं। देवी-सहस्र-नाम, विष्णु-सहस्र-नाम आदि सब मिलाकर भी हमारे नामों से बढ़ नहीं सकते। मा, बाप, जोरू-जाता, सब हमको अलग-अलग नामों से पुकारते हैं। हमने अपने नाम की एक नामावली भी तैयार की है। पर वह सब सुनाकर हम पाठकों का पाप-मोचन नहीं किया चाहते। दो-चार ये हैं—

पंडितो, संन्यासश्च बी० ए०, एम्० ए०, गुरुर्महान्।
शैतानो, सर्वदा शुद्धो, मिस्टर, मुंशी, मुनिस्तथा ॥ १ ॥
शर्मा, बाबू तु, बेशर्मा, बेधर्मा, कर्महीन च।
अखबारी, नावली, बौद्ध, विद्वान्, क़ानूनपारगः ॥ २ ॥
भाषाया वंगवासीनां मुंशीनाञ्च प्रमादिनाम्।
"कॉपी"कर्ता तथा चौर उलूक इव बुद्धिमान् ॥ ३ ॥

हम इस चिंता में पड़े। इसी बीच ज्येष्ठ पुत्र ६ वर्ष का हो गया, और निरक्षर भट्टाचार्य का छोटा नमूना बनने लगा। पर करते क्या? आप पढ़ते कि उसको पढ़ाते? एक दिन समझ-बूझकर लड़के को स्कूल में भर्ती कराने ले गए। हमको अँगरेज़ी की गिट-पिट बड़ी अच्छी लगी, और हम दोनों बाप-बेटे ए, बी, सी, डी में भर्ती हुए।

स्कूल के छोकरों में हम कुंभकर्ण पहुँचे। एक तो भगवान् की दया से हमारा बदन भी गणेशजी के ढंग का था, उस पर दाढ़ी-मूछ के रोब से हम पूरे सूबेदार-मेजर मालूम पड़ते थे। हमारे सामने बालकों की कौन कहे, स्कूल के मरिहल मास्टर तक एक शिकार की बात हो रहे थे। हमारे चेहरे का रंग देखकर हेडमास्टर के चेहरे का रंग उड़ जाता था। ख़ैर, इसी तरह हम बहुत दिन तक लड़कों के साथ पढ़कर फिर कॉलेज पहुँचे। कॉलेज के पुस्तकालय को हम दीमक होकर चिमटे; पर ग़रीबी की फटकार ने वहाँ भी हमको न रहने दिया। लाचार अब घर में पुस्तकों का रस-पान करने लगे।

हम कहाँ-कहाँ गए, किस-किससे मिले, ये सब बातें कथा-प्रसंग में स्वयं ही आ जायँगी; किंतु इतना कह देना अनुचित नहीं कि चीन, फ़ारस, तुर्किस्तान को छोड़कर हम सारी वसुंधरा की किसी-न-किसी प्रकार सैर कर चुके हैं। हमारे इस अनुभव से परम मूर्खों को छोड़कर और सब समझ लेंगे कि हम कैसे कथक्कड़ हो सकते हैं। भविष्य में लोग हमारा नाम लेकर मंगलाचरण करें, इसी अभिप्राय से हम लेखनी की जान मारने को तत्पर हुए हैं। प्राचीन महात्माओं ने चार आश्रम नियत किए हैं। हम ऐसे कंबख़्त समय में सृष्टि में आए कि एक आश्रम का निर्वाह भी न हो सका। हमारे लिये ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ और संन्यासाश्रम, इन चारों में एक मिस्त्राश्रम और बढ़ गया, और हम सब आश्रमों का पूरा पंचामृत पीने लगे।

हमारे मित्रों की उपमा टीड़ी-दल से दी जा सकती है; किंतु अंतरंग मित्र बहुत कम हैं। हम किसी मित्र की हाँ में हाँ मिलाने की मुसाहबत नहीं करते, और इस कारण हमारे भाग्य में मरभुक्खों की सोहबत बदी है। साल में एक दिन भी दावत का सौभाग्य नहीं होता; उलटे मित्रगण घर में आकर ऐसा धक्का देते हैं कि घर के सब बर्तनों को अँगरेज़ी-राज्य की हिंदू-प्रजा बना देते हैं। इस बात में हमको तो कष्ट नहीं होता; पर गृह-लक्ष्मी की क्रोधाग्नि बराबर भड़कती रहती है। एक तो हमने रुपए पैदा करने की विद्या नहीं सीखी, उस पर यह फ़िज़ूल-ख़र्ची हमारे लिये अच्छे सबक़ का काम करती है। कभी-कभी तो घर की देवी इतनी नाराज़ होती हैं कि यदि हम डील-डौल में भीमसेन के छोटे भाई न होते, तो गंजे होकर अमीरी की निशानी बन जाते। सच तो यह है कि यदि मनुष्यता का परम पुरुषार्थ दौलत कमाना है, तो हम मनुष्यता से बिलकुल 'फ़ेल' हुए। इन सब बातों के सिवा हमको एक आज़ार हिंदी की लेखकी का पड़ गया है। जब पहलेपहल हमने एक लेख छपाकर अपने एक मान्य शुभचिंतक को भेजा, तब उन्होंने यह लिखा—"लेख देखकर दुःख हुआ। तुम्हारे समान तेज़ तबियत का आदमी हिंदी-लेखकों में धसा चाहता है। यह प्रारब्ध का कोप है। अरे भाई! क्यों अपने को मिटाने का सामान करते हो? हिंदी-लेखक होकर आजन्म दुःख भोगोगे!"

उस समय भारतेंदु बाबू हरिश्चंद्र और प्रताप मिश्र, दोनों जीवित थे। इन दोनों ने हमारी तबियत हटने न दी। भाई प्रताप के "वाह-वाह" करने से हम लेखकों की सूली पर चढ़ ही तो गए। अब हिंदी और हम इस प्रकार मिल गए हैं कि काटने से भी जुदे नहीं हो सकते।

इति पंचपुराणे प्रथमस्कंधे प्रथमोऽध्यायः

द्वितीय अध्याय

नए बाबू

लिखने में तो मिस्टर व्यास बड़ी सरपट की चालवाली क़लम रखते हैं, पर, आलस्य देवता के परम पुजारी होने के कारण, निरे मरियल टट्टू के सवार से भी कई दर्जे नीचे रहते हैं। इनकी 'आज' कई वर्षों की होती है, 'कल' का हिसाब बहुत हिसाब लगाने से निकलता है, और 'परसों' को तो काग-भुसुंड के सिवा और किसी के भाग्य में देखना ही नहीं बदा। पिछले अध्याय में आप अपनी कथक्कड़ वृत्ति को काम में लाने की प्रतिज्ञा कर चुके हैं; पर अब बहुत तगादा करने पर कुछ-कुछ मिनके हैं, आप फ़र्माते हैं—

एक तो हम किसी के बाप के नौकर नहीं, जो बिना मतलब भी टर्र-टर्र करके अपनी 'एंडीटर' वृत्ति की सूचना देते रहें! दूसरे हम नक़्क़ाल लोगों के गुरु-घंटाल भी होना पसंद नहीं करते, जो इधर-उधर की लेकर येनकेनप्रकारेण अख़बार पूरा करते रहें। नहीं लिखा, तो क्या पाप हो गया? आपके ऐसे 'सरौतों' से भगवान् बचावें। हाथ-पैर कट जाने का डर लगता है। लेना-देना कुछ नहीं, बदनामी का छापा लगाने को आप छापने की कल हो रहे हैं। सच तो यह है कि इधर जग से मेघराज ने अपनी कृपणता को जलांजलि देकर बरसात का रंग जमा दिया है,—तब से कुछ काम करने को जी नहीं चाहता। इधर-उधर बाग़-बग़ीचों की शोभा ही निहारने से अवकाश नहीं मिलता।

हमारे एक बी० ए० मित्र हमको एक नवीन मंडली में ले आए हैं। यहाँ कई शिकार हमारे हाथ लगे हैं। उनका इतिहास पंच-पुराण के किसी पवित्र पाठ का विषय बनेगा, इसमें कुछ भी शंका नहीं। इस नवीन मंडली के अधिनायक अद्दन् बाबू हैं। इन्हीं के

घर में इस महासभा का अधिवेशन होता है। मंडली में दो मास्टर, दो वकील, एक पंडित और तीन महाजनों के सपूत हैं। यों तो ६ या ७ आदमी और भी बैठकबाज़ी में हिस्सा-बाँट करते हैं, पर मुख्य नवग्रह ऊपर ही लिखे हैं। अच्छन् बाबू बड़ी प्रारब्ध के नवयुवक हैं। इनके पितामह कौड़ियाँ बेचते थे, और पिता बड़ी कोठी के कृपण स्वामी थे। लोग कहते हैं, इनके पिता चबेना फाँक-फाँककर रहते थे, और प्रबंधकर्ता इतने बड़े थे कि दाने-दाने को घड़ी के पुर्ज़े के समान चलाते थे; वह गेहूँ के एक दाने को भी व्यर्थ न जाने देते थे; उसको अंगूर का भाई समझते थे। एकादशी के दिन लाला घर-भर को निर्जल कराते थे, और उस दिन चूल्हे को बड़े दिन की छुट्टी दिया करते थे। वह कहते थे—"फ़ाक़ा करके जो बचाया जाय, वह पैदा करने के बराबर है।" इसी नियम के अनुसार उनके ख़ानदान में बहुत व्रत हुआ करते थे। घर-भर में लाला साहब बकरी के समान रहा करते थे, और फ़ाक़ा करने की नसीहत के सिवा बालकों को किसी प्रकार की शिक्षा न देते थे। उन्होंने कभी कोई शौक़ीनी नहीं की, और कभी दूध में शक्कर डालकर नहीं पी। शक्कर का खाना वह ऐसा व्यर्थ समझते थे कि उनके घर में चींटियाँ भी उसके स्वाद को भूल गई थीं। कहते हैं, जब अच्छन् बाबू का जन्म हुआ था, तब वैद्य के कहने से इनको दूध में शक्कर दी जाने लगी थी। लाला साहब ने इसका भी सरल प्रबंध कर लिया था। आप महावीरजी के मंदिर में जाकर उनके मुँह के बताशे नित्य ख़ुरच लाया करते थे, और भक्ति, शर्करा, बालक की आयु, तीनों का फ़ायदा होने से अपने इस काम को त्रिवर्ग के लाभ के समान समझते थे।

लाला साहब की चाल ने किफ़ायत को एक हद पर पहुँचा दिया था। एक अँगरखे में वह पूरा साल काट डालते थे। जूते को

यहाँ तक आदर से रखते थे कि वह पानी में कभी छूने नहीं पाता था। बरसात में वह प्रायः 'उपानह' को अपनी बग़ल में रहने की प्रतिष्ठा देते थे। लाला के घर कभी किसी भिखारी को चुटकी नहीं मिली। हाँ, भिक्षा के बदले काम करने की नसीहत बराबर मिलती रही। वह पुराने ज़माने के अन्न के बाज़ार का भाव सुनाकर अपनी बाल्यावस्था को सत्ययुग बनाने के परम अभ्यासी थे। लाला के घर में एक ही ब्राह्मण को सदा दान मिलता था। इन भूदेव का नाम डुग्गी गुरू था। वह लाला के कुलपूज्य 'प्रोत' अर्थात् पुरोहित थे। घर के लड़के-बाले सब इनको 'परेत' कहकर पुकारते थे। वास्तव में डुग्गी गुरू कलियुगी ब्राह्मणों के गुरू होने के अधिकारी थे। अफ़ीम, गाँजा, चरस, भाँग आदि के तो एक-मात्र आधार ही थे; पर कभी-कभी ताड़ी का सेवन करके अपनी पूरी 'ताड़ी' (समाधि) लगा लिया करते थे। वह डुग्गी गुरू अभी तक जीवित हैं, और लाला की बहुत-सी अलौकिक बातों की कथा सुनाया करते हैं। एक दिन डुग्गी गुरू और लाला में बड़ी गहरी छनी थी। उसकी कैफ़ियत यह है—

लाला के बाप का श्राद्ध था। कोई ब्राह्मण श्राद्ध कराने नहीं आया, तब बड़ी चिंता हुई। अंत में डुग्गी गुरू आचार्य होकर बैठे। इन्होंने कहा—"लाला, पैसा और पानी लेकर संकलप करो।" लाला ने पानी तो लिया, पर पैसे की जगह कुछ नहीं रक्खा।

गुरु बोले—"लाला, पैसा, पैसा!"

इस पर यजमान और पुरोहित का शास्त्रार्थ हो पड़ा।

लाला—"संकलप में पैसा कैसा?"

गुरु—"लाला, पैसा होता है।"

लाला—"नहीं जी, होश की बात करो।"

गुरु—"बिना पैसा संकलप-थंकलप कुछ न होगा।"

लाला—"कुछ ख़बर है वसंत की? हमने तो आज तक कहीं ऐसा नहीं सुना।"

गुरु—"पैसा रक्खो, तो काम चले।"

लाला ने जब देखा कि दुग्गी गुरु भी आधा पागल है, माननेवाला नहीं, तब हाथ की मुट्ठी बंद करके पानी लेकर कहा—"अच्छा, लो, तुम्हारा ही कहना सही।" गुरु ने संकल्प कराकर हाथ से हाथ मिलाया, तो पैसे की जगह कंकड़ हाथ में आया। दुग्गी आचार्य भँग तो छाने ही थे, कंकड़ देखते ही अंगारा हो गए, और वही कंकड़ लाला की खोपड़ी पर खींच मारा। खून बहने लगा। लाला पुरोहित के चिमट गए, और दोनों का "पैसा-पैसा" कहकर द्वंद्व-युद्ध होने लगा। घरवालों ने आकर दोनों को छुड़ाया। दुग्गीजी आचार्य वहाँ से लाला को सरापते चल दिए। इस प्रकार महान् दुःख सहन करके लाला ने सात लाख कई हज़ार रुपए जमा करके यमराज के घर प्रस्थान किया। यह संपत्ति अछनू बाबू को मिली है। अछनू बाबू अपने बाप के बिलकुल प्रतिकूल हैं। यह बड़ी शौक़ीन तबियत के आदमी हैं। इनके यहाँ मित्र-मंडल का बड़ा भारी समागम होता है। रुपए की कुछ क़द्र नहीं समझी जाती और माल ख़र्च करने की कहावतें दिन-भर पढ़ी जाती हैं। इनके एक मित्र अज़मतअलीख़ाँ साहब हैं। उनका क़ौल है—"सिकंदर जब चला दुनिया से दोनों हाथ ख़ाली थे।" इनके परम प्रिय पन्ना बाबू का कथन है—"मीत न नीत गलीत यह जो धन धरिए जोरि।" तीसरे साहब यह कहा करते हैं—"दानं भोगो नाशः तिस्रो गतयो भवन्ति वित्तस्य।" इन्हीं महावाक्यों के आधार पर अछनू बाबू अपना धन ठिकाने लगाने में लगे हुए हैं। शायद उनका विचार मैयाशी-यज्ञ करके दौलत को स्वाहा कर देने का है। इस यज्ञ की अधिष्ठात्री श्रीमती हैदरीजान का आगमन हो चुका है।

ढाढ़ी, कथक, तबलची, चिकारेवाले, कुटने-कुटनी आदि होतृगण भी आ पहुँचे हैं। यज्ञ की सोमलता सुरा के समान शैंपियन, ब्रांडी, बियर, ह्विसकी आदि उड़ने लगी हैं। इसी प्रकार और सब सामग्री प्रस्तुत हो रही है। उसका वर्णन करना असंभव नहीं, तो दुस्साध्य अवश्य है।

अछनू बाबू की बैठक से रात-दिन 'हाहा-हीही' और तान-सुर की आवाज़ आया करती है। कभी-कभी मज़ाक़ में कुछ दर्शनीय दृश्य भी हो जाता है। आज कई दिन हुए, बाबू साहब की नवग्रह-मंडली विराजमान थी। एक-से-एक बढ़कर शौक़ीन लोग उपस्थित थे। हारमोनियम से मधुर शब्द निकल रहा था—"रसीली मतवालियों ने-ए—जादू-ऊ-आ-आ-आ-आ" इतने में गरुड़ की नाक लगाए एक दुबले-पतले बाबू आ पहुँचे। इनको देखते ही हारमोनियम छोड़कर सब लोग "आइए-आइए" कहकर क़हक़हा लगाने लगे। "आइए बिगुलधर," "आ हा! आ फँसे पुराने खूसट!", "आ गए क़ब्र के बाशिंदे!" इत्यादि वाक्यों से कमरा गूँज उठा। एक वकील साहब, जो कुछ कवि होने का भी दावा रखते हैं, बाबू बिगुलधर की आमद में यों शायरी की टाँग तोड़ने लगे—

> आ गए यार मेरे दिल के लुभानेवाले।
> रौनक़ अब पाएँगे महफ़िल के सजानेवाले।
> ज़ागरू, ज़ाग-सिफ़त, लोमड़ी के नातेदार।
> भाँड़-सी रंगतों के खूब जमानेवाले।

इस प्रकार बड़ी देर तक 'हाहा-हीही' होती रही, और अट्टहास मचता रहा। बाबू बंशीधर बड़े आनंदी जीव मशहूर हैं। इनको सब लोग बिगुलधर के नाम से पुकारते हैं। यह एक ऑफ़िस के हेडक्लर्क हैं, और कभी-कभी अछनू बाबू की बैठक को कृतार्थ करते हैं। इनकी तारीफ़ यह है कि यह कभी हँसी में बुरा नहीं

मानने, और एक तरफ़ होकर सब मंडली की दिल्लगी का मज़ा लिया करते हैं। इसका फल यह होता है कि सब लोग तो इनको बनाते हैं, पर यह समझते हैं कि हम सबको बनाते हैं। बाबू बिगुलधर की यह तारीफ़ अवश्य है कि सिवा हँसी-दिल्लगी के बाक़ और दुष्ट आचरणों में शरीक नहीं होते। बिगुलधर जब उक्त "राम-राम" से मुक्त हुए, तब उनसे मिस्टर कोको ने कहा—"बिगुलधर, बहुत दिन से तुमने लेक्चर नहीं सुनाया। आज तो कोई लेक्चर सुनाओ।" सब लोग "हाँ-हाँ, ज़रूर-ज़रूर" कहकर इनको उत्साहित करने लगे। पहले बाबू बिगुलधर ने बड़े नख़रे किए; फिर अधिक कहने-सुनने से अपना लेक्चर यों आरंभ किया—

"प्रिय मित्रगण, आज का व्याख्यान मैं माँग के ऊपर दूँगा। उससे आप माँग की असली कैफ़ियत से वाक़िफ़ हो जायँगे।" (एक आवाज़ आई, भीख माँगते हो) एक अहमक़ कहता है, भीख माँगते हो। उसको मालूम होना चाहिए, और समझना चाहिए कि यहाँ पर भीख का ज़िक्र नहीं है। यह वह माँग है, जो आप लोगों की खोपड़ी पर है, और जिस पर आपकी खोपड़ी है।" (यहाँ पर एक ने कहा—ग़लती है, माँग पर खोपड़ी कैसी?) इस पर बिगुलधर ने कहा—"बस, लेक्चर बंद! इस तरह ग़लतियाँ निकालोगे, तो लेक्चर नहीं होगा।"

अब फिर क़हक़हा मचा। बहुत खुशामद और चुप रहने की प्रतिज्ञा करने से मिस्टर बिगुलधर ने अपना लेक्चर फिर शुरू किया—"जेंटिलमैनो, माँग तीन प्रकार की होती है। एक मर्दों की, दूसरी औरतों की, और तीसरी नपुंसकों या हीजड़ों की। इस युक्ति के वेग से माँग के तीन नाम हैं—एक मर्दानी, दूसरी ज़नानी और तीसरी हीजड़ी। (हास्य) हँसिए नहीं, मर्दानी माँग तो मैं उस हजामत को कहता हूँ, जो गुद्दी से लेकर कपाल तक खुली रहती

और खोपड़ी को दो हिस्सों में तक़सीम करती है। (हास्य) ज़नानी माँग तो सभी ने देखी होगी। उसका लक्षण यह है कि बालिश्त-भर से अधिक ऊँचे बालों में कंघी की मदद से जो सीधी या टेढ़ी रेखा खींची जाय, वह ज़नानी माँग वक्तव्य है। उदाहरण के लिये औरतों की माँग, नव्वाबों की माँग, गोस्वामियों की माँग है। हीजड़ा-माँग वह है, जो छोटे बालों में कंघी करके निकाली जाय। उदाहरण के लिये बाबुओं की माँग, नवीन लेडियों की माँग ज्ञातव्य है।"

यहाँ पर करतल-ध्वनि बहुत की गई, और एक कंकड़ बिगुल-धर की गुद्दी तक पहुँच गया। पर व्याख्याता ने उसकी कुछ परवा न करके फिर अपनी वक्तृता आरंभ की—

"अब आप जानना चाहते होंगे कि इसका नाम माँग क्यों पड़ा? यह सब सवालों का दादा है। इसको हल करते-करते अरस्तू मर गया। सुक़रात का दिमाग़ बिगड़ गया। बेकन घबरा गया, और कणाद का तर्क ख़ाली हो गया। पर कुछ पता नहीं लगा! ओहो! क्या सवाल है! (मिस्टर कोको ने कहा—अबे, जवाब दे, बक-बक क्यों करता है?) सुनो-सुनो, इसका नाम माँग यों पड़ा कि माँगना और माँग निकालना, दोनों एक ही अर्थ रखते हैं। माँगवाले एक क़िस्म के रिफ़ाइंड भिखारी हैं। माँग इन भिखारियों की चपरास है। पूछोगे, क्या माँगते हैं? अजी, ख़ूबसूरती माँगते हैं, बाज़ारू बीबियों के इशारे माँगते हैं, आलिमों से नफ़रत माँगते हैं, समझदारों से हिक़ारत माँगते हैं, और संसार से बदनामी माँगते हैं। ये माँग-वाले एक तरह के बनावटी—" यहाँ पर बाबू बिगुलधर "अरे!" कहकर रुक गए। इन पर एक साहब ने तकिया पटक दिया, और बड़ी 'हाहा-हीही' होने लगी। अब यहाँ से मिस्टर व्यास अपनी पगिया सँभालकर यह कहते हुए उठ भागे—

"मीर साहब, ज़माना नाज़ुक है ;
दोनों हाथों से थामिए दस्तार ।"

इति पंचपुराणे प्रथमस्कंधे द्वितीयोऽध्यायः

तृतीय अध्याय
लाला चकलामल

बरेली में हमारे एक मित्र रहते हैं। वह हमारे समान ही फ़ाकेमस्त हैं। इनकी आमदनी बहुत कुछ है; पर सब भूतों की-सी संपदा हो जाती है। हमारे मित्र का इसमें कुछ अपराध नहीं; क्योंकि भांजे, बुआ, बहनें और कई एक संबंधिनी विधवाएँ, इन सबकी नवग्रह-मंडली इनके घर में विराजमान रहती है, और इनकी आमदनी के ऊपर पूरा टैक्स लग रहा है। मित्र महाशय दिन-भर कोल्हू के बैल की नक़ल करते हैं, और रात को इनकी सब मेहनत घरवालों के पेट में चली जाती है। बस, यह अकाल के मारे किसान के बैल की तरह सूखा भोजन करके पड़ रहते हैं। इनकी शिक्षा का फल यही निकला है। नौकरी की उपासना के कारण मानसिक उच्च भाव इनके शरीर से एक-एक करके सब विसर्जन हो गए हैं। अब यह विद्वानों की सोहबत से हटकर नातदार लाला लोगों की ठकुरसुहाती में पड़े हैं। कुछ लोभ से, पान-तमाखू के सहारे से, या मूर्खता से यह ऐसा करते हैं या नहीं, इसका असली तात्पर्य तो यही जानें; पर इनकी इस धनिक-उपासना में कुछ भी संदेह नहीं।

आजकल यह अपने पड़ोसी लाला चकलामल के पास बहुत बैठते-उठते हैं। लाला साहब इनके पुराने पड़ोसी हैं। उक्त लाला बादशाही में कचालू बेचते थे; पर अब कुबेर के नातेदार हो रहे हैं। इनके पास रुपए बहुत हैं, और सूद की कृपा से वे रुपए प्रति-

क्षण रक्तबीज की तरह बराबर बढ़ते चले जा रहे हैं। इनके पास घर, कोठी, बाग़, गाँव, सब कुछ है ; पर संतान नहीं। संतान के बहाने लाला चकलामल ने कई विवाह किए ; पर कुछ मतलब नहीं निकला। हाल में लाला का सातवाँ विवाह हुआ है। इनकी अवस्था कोई ७५ वर्ष के लगभग है, और उसमें ५ का भाग देने से बीवी की आयु बन जाती है। लाला की सारी विद्या की करामात मुंडे हरफ़ों की चिट्ठी और बात-बात पर "सलाम वंचना"-वाली इबारत तक ही रही है, और ब्याज का फैला लेना ही इनकी विश्वविद्यालय की 'रैंगलर'-परीक्षा का विषय है। लाला को उर्दू बोलने का बड़ा शौक़ है। इस बात में वह लखनऊ और दिल्ली-वालों से बढ़कर अपने में फ़साहत समझते हैं। इनका 'फ़रमाना' को 'फुरमाना', 'वाजिदअली' को 'वादिजअली' कहना ही इनकी उर्दू-गोयाई अर्थात् कथन-शक्ति का पूरा नमूना है।

आज कई दिन हुए, हमारे मित्र हमको चकलामल के मकान पर ले गए। वहाँ जाकर देखा, तो लाला एक बड़े गाव-तकिए के सहारे बैठे हुए थे। सामने रुपयों के ढेर गिने जा रहे थे। मुनीम लोग अपने-अपने बही-खाते, शैतान की आँत के समान, फैलाए हुए रोकड़ की और साथ ही अपने कर्मों की विधि मिला रहे थे। हुंडी-पुर्जे के भुगतान की काँय-काँय भी एक ओर से आ रही थी। लाला साहब बड़ी मौज से हुक़्क़े को गुड़गुड़ाकर मेढक के भाई बन रहे थे। हमारे चित्त में इनका यह ऐश्वर्य देखकर ज्यों ही यह भाव उत्पन्न हुआ कि वास्तव में सांसारिक सुख का मूल कारण 'नगद-नारायण' ही है, त्यों ही एक विचित्र अभिनय देखने में आया। लाला ने नौकर से टके की भिंडियाँ मँगाई थीं। थोड़ी देर में वह तरकारी का पुलिंदा लेकर आ पहुँचा। लाला ने उसको इशारे से अपनी ओर बुलाया, और कपड़ा खोलकर प्रत्येक भिंडी

का पेट दबा-दबाकर नब्ज़ टटोलने लगे । जब पेट दबाकर सबकी परीक्षा कर चुके, तो उन्होंने भिंडी का कपड़ा झिटककर अलग कर दिया, और बोले—"धन्न महाराज, धन्न ! तुम जो काम करते हो, ऐसा ही करते हो ।"

यह सुनकर ब्राह्मण देवता ने जवाब दिया—"क्या हुआ साहब ?"

यह सुनकर लाला ने जवाब तो कुछ नहीं दिया, पर बोले—"भैया तुम्हारा मूड़ ! सड़ी भिंडी उठा लाए !"

यह सुनकर विप्रजी को भी क्रोध चढ़ आया, और वह झपटकर सामने आकर खड़े हो गए । अब लाला और महाराज की यों बहस हो पड़ी—

महाराज—"क्या ये भिंडियाँ सड़ी हैं ?"

लाला—"हाँ, सड़ी हैं ।"

महाराज—"क्या सब सड़ी हैं ?"

लाला—"हाँ, हाँ, सब सड़ी हैं ।"

महाराज—"ले भला और कोई इससे अच्छी ला दे, तो हम उसकी टाँग के रास्ते निकल जायँ ।"

लाला—"अजी जाओ महाराज ! सड़ी भिंडी ले आए, और ऊपर से टर्र-टर्र करते हो !"

महाराज—"लाला, अब आप हैं मालिक, आपको क्या कहें ? और कोई सड़ी कहे, तो हम जानें ।"

लाला—"तो हम झूठे, और तू सच्चा ! क्यों ?"

महाराज—"देखो लाला, तू-तू कहोगे, तो ठीक न होगा !"

लाला—"तो क्या तू कहीं का लाट है ? जा, हट जा सामने से ।"

इस प्रकार लाला और महाराज की कर्कशा लीला दो घंटे तक होती रही । हमारे मित्र और हम इस विचित्र कौतुक को देखते रहे । चित्त में विचारा, लाला और नौकर, दोनों बड़े वहसी हैं । यदि

कहीं ये वकील होते, तो बड़े मालदार हो जाते। और, जो कहीं पुराने पंडित होते, तो नदिया और काशी के पंडितों के कान काटकर बड़े लंबे-चौड़े डबल महामहोपाध्याय बन जाते। इतने में यह कर्कशा-कांड बहुत बढ़ गया। मालिक और नौकर की तू-तू मैं-मैं होते-होते गाली-गलौज पर नौबत आ गई। अब मुनीमों ने हाथ की क़लमों को कानों के हवाले किया, और इस वाक्य-युद्ध को बड़े ग़ौर से देखने लगे। थोड़ी देर में मुनीम-मंडल के गुरू, जो बड़े मुनीम थे, बोले—"पलटूसिंह, बस, चुप रहो। अपना हिसाब लेकर घर चले जाओ। मालिक से कहीं इस तरह लड़ना होता है!"

अब लाला ने मुनीम की टाँग ली, और मुँह चिढ़ाकर बोले—"बस, तुमको हिसाब चुकाना-भर आता है। अजी, इस भलेमानस को क़ायल नहीं करते! चले हुआँ से मुनीम की दुम लेके!"

मुनीम को अपनी दुम सुनकर क्रोध का भूत चढ़ आया, और वह एकदम लाल मुँह करके कहने लगा—"तुम्हारी तरह किसका कुत्ते का मग़ज़ है, जो दिन-भर काँयँ-काँयँ किया करे? नौकर से बनी बनी, न बनी जवाब दे दिया।"

इतनी नसीहत सुनकर लाला चकलामल को शांति कहाँ? अब इनके क्रोध का पारा सौ डिगरी से ऊपर चढ़ गया। लाला अंगारे-सा मुँह बनाकर बड़े ज़ोर से चिल्लाए—"हाय, ग़ज़ब हो गया! अब नौकर सब कुछ, मालिक कुछ नहीं!" इनकी इस बड़ी हाय को सुनकर ऊपर से दासियाँ उतर आईं। पड़ोसी घरों से दौड़ आए। इनका घर थिएटर या नाट्यशाला बन गया। इधर मुनीम को भी जोश चढ़ आया। अब इनकी कड़ाकुड़ी इस प्रकार होने लगी—

मुनीम—"वाह, अच्छे रहे!"

लाला—"चले हुआँ से मुनीम की दुम!"

मुनीम—"अब हम नहीं दबेंगे। मुनीम की दुम, तो लाला की भी दुम।"

लाला—"बराबरी करता है? जूतों से पिटवाऊँगा!"

मुनीम—"जूते तुम आप खाओगे!"

लाला—"निकल जा बदमाश हमारे घर से!"

मुनीम—"बदमाश तुम और तुम्हारा बाप!"

लाला—"देखो, आबरू बिगाड़ डालूँगा!"

मुनीम—"आबरू तुम क्या बिगाड़ोगे?"

अब लाला क्रोध में आकर सन्निपात की-सी बातें बकने लगे—"निकल जा साले मेरे घर से! हरामज़ादा, कुत्ता, बदमाश, लुच्चा, शोहदा!" यह कहकर लाला ने पान की डिबिया मुनीम की ओर फेंकी; पर वह उसके लगी नहीं। अब लोग लाला चकलामल को "हाँ, हाँ" कहकर समझाने लगे। लाला कुछ शांत हुए। इतने में कहार ब्यालू लेकर आया। लाला ने ब्यालू की थाली हाथ में लेकर मोहरी में फेक दी, और बोले—"खायँ मुनीम और महाराज!" लाला के थाली फेकने के साथ ही घड़ी ने बारह की आवाज़ सुनाई। हमारे मित्र चलने को हुए; पर लाला की बकवाद से फिर रुकना पड़ा। लाला और मुनीम की बड़ी देर तक कायँ-कायँ होती रही। अंत को हम वहाँ से उठकर अपने आश्रम को चले आए। हमारे मित्र लाला की हाँ में हाँ मिलाने को फिर भी वहाँ ठहरे रहे। प्रातःकाल यह सुनने में आया कि लाला चकला-मल रात को दो बजे के बाद सोने को ऊपर गए। मित्र के द्वारा यह भी मालूम हुआ कि जब लाला की क्रोधाग्नि किसी प्रकार शांत नहीं हुई, तब ऊपर से दाई ने आकर कहा—"बहू के पेट में दर्द होता है", और, इस मंत्र से लाला चकलामल का भूत बिलकुल उतर गया। किसी कवि ने ठीक कहा है—

काव्य-शास्त्र-आनंद में पंडित के दिन जात ;
मूरख के दिन नींद में कलह,व्यसन,उत्पात ।

इति पंचपुराणे प्रथमस्कंधे तृतीयोऽध्यायः

चतुर्थ अध्याय

टर्र-माहात्म्य

भगवान् के अजायबघर में टर्र करनेवाले जीव विलक्षण हैं। जिनके साथ यह टर्र लगी है, वे सृष्टि के एक कोने से दूसरे कोने तक सबको हिला देते हैं। किसी के स्वभाव में टर्र है, किसी की ज़बान में टर्र है, और किसी के नाम में टर्र है। इस हिसाब से मानव-जाति को भी तीन बड़े भागों में बाँट सकते हैं। उनके नामकरण इस प्रकार किए जा सकते हैं—स्वभाव-टर्री, ज़बान-टर्री, और नाम-टर्री। एक-न-एक टर्र सबमें होती है। सुतरां लेखक टर्र-हीन का प्राणहीनों के ख़ाने में शुमार करता है। स्वभाव के टर्र करनेवालों में मेंढक सबका गुरु है। रात को प्रत्येक नदी के कोने में बैठकर इनकी जातीय कान्फ़्रेंस की मीटिंग होती है, और इनकी टर्र को सुनकर बड़े-बड़े व्याख्यान देनेवालों में वीरता आ जाती है। स्वभाव के अक्खड़ और टर्र सभी ने देखे होंगे। ये ज़रा-ज़रा-सी बातों में लोगों से टर्राने लगते हैं, जिसके कारण कभी-कभी हाथ-पैर चला बैठते हैं, और कभी-कभी इनकी भी पूरी पूजा हो जाया करती है। आज की कथा इन उपर्युक्त टर्र करनेवालों को छोड़कर टर्र-नामधारी जीवों के संबंध में है। अतएव ऊपर के दो समूह केवल प्रस्तावना के निमित्त ही समझने चाहिए।

जब से मिस्टर व्यास की गर्दन का अर्ज़-तूल नापने को बे-मूछ के गोरे लड़के सेकिंड क्लास के दर्जे में तत्पर हुए, तब से आपने

फ़र्स्ट और सेकिंड में यात्रा करना बिलकुल बंद कर दिया है। और, जिस दिन से यह थर्ड के दर्जे में भूसे के समान ठूसे गए, उस दिन से आपने उसको भी प्रणाम कर लिया है। अब आप ड्योढ़े दर्जे का टिकट लेते और वहाँ टाट के गद्दे पर बैठकर अक्सर यह कहते हैं—"चमड़े के गद्दों से बाज़ आइए, जहाँ मुसाफ़िरों को गद्दे मिलते हैं।" आप लिखते हैं—

कई दिन हुए, हम फ़ैज़ाबाद को जा रहे थे। इंटर-क्लास में बैठे थे। पासवाले ख़ाने में कोट, पतलून और ऊन के वस्त्र के प्रेमी एक साहब चुरट का धुआँकश चला रहे थे। पूछने से मालूम हुआ, आप बड़ी टर्र के जीव हैं। आपको लोग बैरिस्टर्र कहकर प्रणाम करते हैं। पास के ख़ाने में एक अजीब सूरत के जीव बड़ी संजीदगी से विराज रहे थे। कुछ देर में मालूम हुआ, आप मास्टर्र हैं। थोड़ी देर में रेल एक स्टेशन पर ठहरी। एक साहब और नमूदार हुए। कंधे पर बिछौना, हाथ में बेग, लंबी नाक, गुलूबंद लपेटे, सरदी में सिसकते, रेल-प्रबंध की शिकायत करते आ पहुँचे, और बातचीत में आप एडीटर्र निकले। एक बाबू साहबी लबास के नवयुवा और बैठे थे। वह कंट्राक्टर्र ठहरे। यह साहब एक दूसरे कोट-पतलून-धारी से बातचीत कर रहे थे। इनके नाम पर डाक्टर्र की टर्र की उपाधि का सौभाग्य विदित हुआ। अब हम पाँच 'टर्रों' के बीच में पड़कर बड़ी बहार देखने लगे। थोड़ी देर में सब लोगों की बातचीत होने लगी। उनमें एडीटर्र साहब सबसे ज़्यादा टर्र करनेवाले सिद्ध हुए। बैरिस्टर्र साहब विलायत के मामलों से परिचित थे, और अपनी क़ानूनी लियाक़त के घमंड में चूर थे। एडीटर्र अपनी क़लम के ज़ोर में मस्त थे। इन दोनों की बातचीत होते-होते बहस हो पड़ी—

बैरिस्टर—"तरक़्क़ी क्या चीज़ है?"

एडीटर—"तरक्की उन्नति को कहते हैं।"

वैरिस्टर—"उन्नति ? उन्नति नहीं, उसका बयान कीजिए।"

एडीटर—"बयान क्या ? देश अमीर हो जाय, तब तरक्की है।"

वैरिस्टर—"अमीर लोग तो शाही ज़माने में थे। तब ?"

एडीटर—"तब तरक्की थी।"

वैरिस्टर—"लाहौलवला कूवत ! तरक्की थी ?"

एडीटर—"हाँ, हाँ, तरक्की थी।"

वैरिस्टर—"तो क्या आप रुपए को तरक्की मानते हैं ?"

एडीटर—"रुपया तो तरक्की है ही, इसमें क्या शक है ? आपको रुपया मिले, तो आपकी तरक्की हो।"

वैरिस्टर—"यह क़ौमी निफ़ाक़, ख़राब रिवाज, सब मुल्क में बने रहें, और दौलत से तरक्की ? वाह साहब, वाह !"

हमारे एडीटर साहब यहाँ पर बग़लें झाँकने लगे, और सबको यह मालूम हो गया कि यह कुछ पढ़े-लिखे वाजिबी-ही-वाजिबी हैं। पर चुप हो जाय, तो एडीटर काहे का ? वह कोट, पतलून और अँगरेज़ी की निंदा कर चला।

अब उसके मुँह से दो-चार शब्द ऐसे निकले, जिनसे वह सबकी हँसी का निशाना हो गया। मास्टर साहब ने उससे हँसकर पूछा—"आपने तालीम कहाँ पाई है ?"

एडीटर—"तालीम रंडियाँ पाती हैं।"

इस हाज़िर-जवाबी पर लोग बहुत खुश हुए। तब वह अपनी पंडिताई यों दिखाने लगा—

"तालीम कोई चीज़ नहीं। एक चाँदनी और दूसरा अंधकार है। जिसने उसको नहीं जाना, वह अंधकार में है। यही काहिली और यही नासमझी है। दुनिया ख़्वाब है, इसकी कुछ असलियत नहीं। जब यह बनी थी, तब भगवान् की आज्ञा से सब परमाणु सिमट

गए। जब विगड़ेगी, सब ख़्वाब मिट जायगा। यह कर्म जीव की प्रकृति है ?"

इसका यह लेक्चर सुनकर मास्टर साहब ने कहा—"वाह, आप फ़िलासफ़ी की ख़ूब खिचड़ी पकाते हैं। दुनिया ख़्वाब है, और मिटेगी। कर्म प्रकृति है। ख़ूब कही !" यहाँ पर बैरिस्टर ने डॉक्टर साहब से कहा—"अगर आप लिक्खाड़ साहब की समझ ठिकाने ला सकते, तो अच्छा होता।" डॉक्टर ने कहा—"तोबा करिए जनाब, इनकी हरएक बात डॉक्टरी हो रही है।" जब चारों तरफ़ से इन पर बौछार होने लगी, तब हज़रत अपनी एडीटरी की हिमाक़त पर कुछ-कुछ पछताने लगे।

इतने में कंट्राक्टर साहब ने यह कहकर एडीटर की गत बनाई— "अजी मेहरबान, यह बेचारे आपकी आला बातों को क्या समझें ? यह तो इधर-उधर की ख़बरें लिखकर पेट भरते हैं। जब कुछ काम न मिला, एडीटर बन बैठे। हमारे पड़ोस में भी एक एडीटर रहते हैं। वह जन्म-भर तो गुदड़ी-बाज़ार की दलाली और मुशायरे में जाने का काम करते रहे। अब इधर एक पेज लिखकर अख़बार-नवीसी करने लगे हैं।"

इतने में रेल एक जगह ठहरी, और एक साहब आकर बैरिस्टर के पास बैठ गए। बैरिस्टर ने उनसे सब दिल्लगी अँगरेज़ी में कह सुनाई। साहब भी ज़िंदा-दिल थे। एडीटर से बोले—

"I am going to run a vernacular paper, will you please accept the editorial chair ?"

सबने कहा—"यह अँगरेज़ी नहीं जानते।" साहब बहुत हँसा, और बोला—"आप एडीटर हैं। युनिवर्सिटी-कमीशन पर आपकी क्या राय है ?"

एडीटर साहब घबरा गए। बोले—"बहुत अच्छी राय है।"

साहब—"पढ़ाई की मुशकिल को तुम क्या जानता है ?"
एडीटर—"अच्छा मानता ।"
साहब—"सर्कार कैसा है ?"
एडीटर—"बहुत अच्छा ।"
साहब—"तुम सर्कार के ख़िलाफ़ तो कभी नहीं लिखता ?"
एडीटर—"नहीं हुज़ूर ।"
साहब—"तुम कांग्रेस-मैन है ?"
एडीटर—"हाँ साहब ।"
साहब—"तुम बाग़ी है !"

एडीटर काँपने लगा । उससे कुछ जवाब नहीं देते बन पड़ा। उसकी बुज़दिली पर लोग मुसकिराने लगे। अब साहब ने बैरिस्टर से जो कुछ अँगरेज़ी में कहा, उसका मतलब यह था कि ऐसे ही कुछ विद्या-विहीन लोग देसी अख़बारों के लेखक हैं, जिनमें बुराइयाँ निकलती हैं। इस पर बैरिस्टर ने साहब को समझाया, और निश्चय दिलाया कि ऐसा नहीं है। देसी अख़बारों के एडीटर बड़े-बड़े लायक़ लोग हैं। ईस एक बेहूदा के नालायक़ और ख़राब होने से सब ख़राब नहीं हो सकते। एडीटर से लोग और भी चुहल करने लगे। किंतु हमारा स्थान आ पहुँचा, और सबको बातचीत करते छोड़कर हम अपने आश्रम को रवाना हुए।

इति पंचपुराणे प्रथमस्कंधे चतुर्थोऽध्यायः

पंचम अध्याय

होली की महफ़िल

पुराने खूसट भी होली के रंगीन मौसम में कुछ बन बैठते हैं। हमारे एक मित्र भी इस अवसर पर अच्छे बनकर दिखाई दिए हैं।

कोचमैन ने लगाम फटाफट करके फिर टिक-टिक का तार लगाया ; पर कुछ फल नहीं निकला । इस मंत्र का जब प्रभाव न पड़ा, तब फिर कोड़े से पीटना शुरू किया । पर वे घोड़े मार खाने में बड़े मज़बूत निकले । इतने कोड़े खाकर कठिनता से दो क़दम चले । अब यह साफ़ ज़ाहिर हो गया कि ये घोड़े अफ़ीमची की डाकगाड़ी के काम के लायक़ हैं, और बग़ीचे तक शायद कई दिन में पहुँचेंगे । चारु मित्र कोचमैन पर खौखिया पड़े, अपनी जवाँमर्दी यों कह चले—

"अबे, घोड़े हैं कि मसख़रे गधे ! चला बेईमान। चल, देख, तेरा अभी चालान करता हूँ ।"

चालान का नाम सुनकर कोचमैन ने घोड़ों पर फिर कोड़ों का चालान किया । अब गाड़ी ने सरांटा भरा, और थोड़ी दूर चलकर फिर अड़ियल नख़रे दिखाने का सामान होने लगा । हमारे मित्र कदाचित् यह समझे कि घोड़ों को गधे कहने से ही गाड़ी चली थी । अब वह फिर गधा-रटन का मंत्र जपने लगे—"अबे, गधे हैं कि घोड़े...गधे हैं कि घोड़े !" यह इन्होंने कई बार कहा ; किंतु कुछ सिद्धि नहीं हुई । एक कोई ख़ुश-मिज़ाज मार्ग में जा रहे थे । वह मित्र को "गधा, गधा" कहते देखकर कहने लगे—"गधे न होते, तो ऐसी गाड़ी से क्यों संबंध रखते ?" इस जवाब को सुनकर मित्रजी का गधानुष्ठान छूट गया ।

इधर गाड़ी रेंगने लगी, और उधर चारु मित्र भी अपना गप्पाष्टक का पाठ करते रवाना हुए । थोड़ी देर के बाद गाड़ी बग़ीचे के फाटक पर जा पहुँची, और वहाँ पहुँचते ही चारु मित्र के स्वागत में "आइए, आइए" की ध्वनि से स्थान गूँज उठा । मैदान में घास के ऊपर एक दरी पड़ी थी । एक ओर कुछ लोग बैठे हुक़्क़ा गुड़गुड़ा रहे थे । सामने कमरे में रोशनी का सामान हो रहा था । जान

पड़ा, अभी संगीत-चर्चा आरंभ होने में कुछ विलंब था, और भाँग-बूटी के सहारे लोग घास पर विराज रहे थे। जब हम लोग वहाँ जाकर पहुँचे, तब घास के ऊपर अच्छा जमाव था, और कभी-कभी बड़ा क़हक़हा मच उठता था। मित्र भी घास के रसिक निकले, और उसी सुभाषित-गोष्ठी में जा डटे। वहाँ पर ज़ेरपाई मिश्र (उर्फ़ लाड़लीप्रसाद या लाड़ले) नाम के कोई परदेशी आए हुए थे, और वह 'ज़िला' अर्थात् 'श्लेष' बोलने में अपने को अद्वितीय समझते थे। इनका मुक़ाबिला करने के अभिप्राय से शहर के प्रसिद्ध ज़िला बोलनेवाले मुंशी बब्बन साहब और आग़ा अब्बासख़ाँ को लोगों ने जुटा दिया था। इन्हीं की कैफ़ियत देखने को उपर्युक्त दरी पर बहुत लोग जमा थे।

"बंदगी, सलाम" के बाद हम दोनों भी इसी मंडली में बैठ गए। थोड़ी देर में लाड़ले ने अपने एक साथी से भंग घोटनेवालों की ओर इशारा करके कहा—"आप मुझे इन 'भंगियों' के जल्से में कहाँ ले आए?" बब्बन साहब ने पूरा जवाब दिया—"घबराइए नहीं, 'पंजा' आपको मिलेगा।" इस जवाब से लाड़ले की ओर देखकर लोग हँसने लगे। अब इसने नवीन श्लेष यों कहा—"बब्बन साहब, देखिए, आपका 'जोड़ा' कोई बदलकर न ले जाय।"

बब्बन ने उत्तर दिया—"यह 'जोड़ा' मिलाने में आपने बड़ी मेहनत की होगी।"

लाड़ले ने फिर कहा—"आप भी अच्छा बनाते हैं।"

अब्बासख़ाँ ने जवाब दिया—"अगर आपके पूरा हो जाय, तो ऐन ख़ुशी की बात है।" यहाँ पर लाड़ले ने दूसरा ग़ोता खाया। फिर कुछ लज्जा का सहारा पकड़कर बोला—"अब तो आग़ा साहब भी आगे आए हैं।"

अब्बासख़ाँ ने कहा—"यह आपके जोड़े की तारीफ़ है।"

इस प्रकार गुप्त श्लेष में लाड़ले बात-बात में मुँह की खाने लगे। तब यह मोटी ज़िलाबाज़ी पर उतारू हुए। बोले—

"अब की हमारे यहाँ भुट्टे बहुत पैदा हुए हैं। आपके शहर में लाए जायँ, तो शायद आपका बड़ा मतलब निकले।"

बब्बन साहब ने कहा—"आपकी छोटी और बड़ी, दोनों जुआरों की यहाँ खपत हो जायगी।"

इस तरह बड़े क़हक़हे और हाहा-हीही के साथ इनके जवाब-सवाल बड़ी देर तक होते रहे।

महफ़िल का सामान दुरुस्त होकर वहाँ नृत्य भी आरंभ हो गया। पर यहाँ ज़िलेबाज़ी में लोग दत्तचित्त थे। अंत में अछनू बाबू आकर खड़े हुए, और सबको नृत्यस्थान में ले गए। नृत्यस्थान या महफ़िल का मकान अच्छा सजा था। झाड़, फ़ानूस, कँवल, लैंप सब एक-से-एक बढ़कर चमक रहे थे। सब लोग जाकर बैठे, और भाँड़ लोगों ने ताल बजा-बजाकर अपना राग छेड़ा। थोड़ी देर तक सब साज ताल के मुआफ़िक़ बजता रहा, और पाँच भाँड़ ताल पर कूदते रहे। फिर एक ने आगे बढ़कर कहा—

"आहाहा! क्या मेरा घोड़ा; खाय बहुत और हगे थोड़ा। अगर इसके कहीं लगे कोड़ा; तो बस, नीचे सवार और ऊपर घोड़ा।"

यह कहकर वह पीछे हुआ, और दूसरा इस 'तरह' पर कह चला—

"पीर मुर्शद टट्टुओं का है मेरा घोड़ा अजब।
एक घंटे में गया लंदन से पेशावर, ग़ज़ब!
हिनहिनाकर भागता घर के मेरे घेरे में अब।
देखकर रोने लगे साहब इसे, लंगूर सब।"

हिनहिना करके तीसरा भाँड़ अपना कथन यों सुनाने लगा—

"घोड़े पे हो सवार, तो मरने में कुछ न शक ;
दिन वह पटक देगा समझ ले इसे अहमक़ ।
वास्ते क़न्नौज का टट्टू लिया ख़रीद ;
में गर रुका, तो बस डंडे करे रसीद ।
दौड़ता है, कूदता, बातें सुनाता है ;
टिक-टिक करो तो ऐंठ के दुलकी दिखाता है ।
आहा मेरे टट्टू, शाबास, शाबास !"

चौथा भाँड़—"टट्टू नहीं जनाब, यह लट्टू-सा घूमता ;
दो-दो क़दम पै चल के ज़मीं ख़ूब चूमता ।
ताक़त है क्या किसी की, जो इससे लगावे दौड़ ;
हो करके शुतुरमुर्ग़ यह दौड़े, करे न मोड़ ।
टट्टू मेरा करता है लो अख़बार-नवीसी ;
लिखता है दूर की, न करे कुछ भी ख़बीसी ।"

"आहाहा ! ओहोहो !" कहकर यह भी पीछे हटा । तब अंतिम भाँड़ ने आकर यों अपनी दास्तान सुनाई—

पाँचवाँ भाँड़—"टट्टू पे चढ़ोगे, गिरोगे चूतड़ों के बल ;
इस वास्ते मैंने निकाली है नई अक़ल ।
ले करके बाइसिकल करो लंगूर की नक़ल ;
थे आदमी, लेकिन बनो पहिए की अब शकल ।
एक दिन जो लगा रास्ते में पेड़ का धक्का ;
गाड़ी गई गड्ढे में, तो छूटा मेरा छक्का ।
टन-टन की जगह अब लगे 'भों-भों' की सुनाने ।"

इस पर सब लोग "भों-भों" करके आपस में फटाफट की मार करके कूदने लगे । पर लाड़ले की ओर इशारा करके बब्बन साहब ने कहा—"हमजिंस को मिलना चाहिए ।" लाड़ले का नाम ज़ेर-पाई होने से यह बड़ी फबती हुई । अब लाड़ले को कुछ जवाब

नहीं सूझा। पर आप बिगड़कर बोले—"ऐसी हँसी किस काम की!" इस पर दूसरे ने कहा—"ज़रूर चाहिए; क्योंकि भाँ-भाँ का तार इधर भी दिखाई देता है।"

अब लाड़ले अपनी ज़िलेबाज़ी की हिमाक़त पर मन में तो बड़े पछताए, पर खिसियानेपन की ख़ुशी ज़ाहिर कर "ही-ही" में शरीक हो गए। भाँड़ों के साथ एक अच्छा गुणी भी था। उसने बड़ी संगीत-दक्षता और भाव के साथ एक पुरानी ग़ज़ल सुनाई। वह ग़ज़ल यह थी—

आह वह दिल को लगी है कि सुना ही न सकें।
लज़्ज़ते-दर्द वो शय है कि बता ही न सकें।
दाग़ कुछ दर्द नहीं, हम जो दिखा ही न सकें;
दर्द कुछ दाग़ नहीं, जिसको छिपा ही न सकें।
तूने वह राह-फ़ना मुझको बताई क़ातिल;
हज़रते-हिज्र से पूछूँ, तो बता ही न सकें।
ख़त में ऐसा उन्हें लिख दे कोई कातिब मज़मून;
कि वह ग़ैरों को किसी तरह दिखा ही न सकें।
दिल न लेना हो, न लें, एक नज़र देख तो लें;
आँख कुछ बोझ नहीं है कि उठा ही न सकें।
उठके पहलू से वह जाने को हैं बेताबिए-दिल;
मुझसे बन जाय कुछ ऐसी कि वह जा ही न सकें।
लाख पर्दों में हैं गो ढूँढ के लाएँगे उन्हें;
बुत ख़ुदा हैं कि किसी नज़र में आ ही न सकें।

इस ग़ज़ल पर बहुत वाह-वाह हुई। कुछ लोग गाने के स्वरों पर मोहित हुए, कुछ भाव बताने की प्रशंसा करने लगे। पर अधिकांश लोग कवि की 'सादगी' अर्थात् साधारण प्रकृति-सूचना पर प्रसन्न हुए। एक बाबू पोशाक से लिपटे, चुरट लिए दूर से

'अगिया बैताल'-जैसे मालूम होते थे। उन्होंने फ़र्माइश की—कोई नई ग़ज़ल सुनाई जाय। इस पर 'सोहनी' की धुन में यह गाना शुरू हुआ—

दिल में है गर मिलें तो प्यार से घर आना कहें।
ख़ौफ़ है मैं जो कहूँ जाना, मुझे जा ना कहें।
दिले-बेताब पे उस वक़्त क्या न गुज़रेगी;
जो यक बहाना मेरे चश्म का बहाना कहें।
रंजोग़म यार उठाने का बस, यही बायस;
कि क्या अजब है इसे दिल का आज़माना कहें?
वादा मिलने का था 'पंडत', अब है पूरा इंकार;
इसको शोख़ी कहें या कहके मुकर जाना कहें?

यहाँ पर दो-एक गुणी लोग भी बैठे थे। उनको अपना गुण दिखाने के अभिप्राय से स्त्री-वेषधारी भाँड़ ने बड़ी कुशलता से यह तराना गाया—

गावे रसिया तान दिर-दिर-तानी रे।
मधुर-मधुर धुन रसिया बजावे, गावे मोहन तानरे।
नादिर दानी नादिर दानी दिर दानी दिर दानी, दानी—
रसिया तान दिरदिर तानी रे—गावे रसिया तान दिरदिर तानी रे।

यह गुण प्रकाश हो ही रहा था कि भाँड़ लोग एक पगिया बाँधे लाला और उनके नौकर मियाँ को लेकर महफ़िल में आ पहुँचे।

नक़ल

स्थान बनिए की दूकान

लाला—अरे काह धमाको भयो?
मियाँ—कुछ नहीं, ललाइन हैं।
लाला—का चोट आ गई? का भयो, का भयो?
मियाँ—ललाइन गिर पड़ीं।

लाला—(चिल्लाकर) अरे को गिरे ? (आड़ से शब्द होता है)।

ललाइन—गिरे नाहीं, रपट पर्यो।

लाला—चोट-ओट तो नहीं लगी ?

ललाइन—चोट तो नाहिं लगी। करिहाऊँ टूट गयो।

लाला—हाय रे हाय। मैं तो बे-मौत मर्यो। अरे मियाँ, जल्दी जा। मेरा यार जर्राह को लवाय ला।

मियाँ—क्या देगा लाला ?

लाला—अबे, जा सारे को सारा।

मियाँ—ए सेठ! गाली देगा; तो टाँग पकड़कर ऐसा पटकूँगा कि खोपड़ी कलाबाज़ी खाने लगेगी।

लाला—ना मियाँ, ना भाई। जा, जर्राह को ले आ। तेरी सौगंध, बड़ो काम है।

मियाँ—फिर गाली देगा ?

लाला—ले कान पकड़तो हूँ (कान पकड़ता है)। जा, देर ना कर मेरा भाई।

(मियाँ का प्रस्थान)

लाला—हरामज़ादा मियाँ, काम निकल जाय, साले मियाँ को निकास दूसरो नौकर लाऊँगो। मियाँ तो काल-सो दीखे है।

(कई आदमियों के साथ म्युनिसिपेल-मेंबरी के प्रेमी बिल-बिलख़ाँ का प्रवेश)

ख़ाँ—"बंदगी अर्ज़ लाला साहब !"

लाला—"सलाम नवाब साहब। घी चाहिए, घी ? बड़ो चोखो औरइया को घी आयो है।"

ख़ाँ—"जी, घी नहीं, आपसे अर्ज़ करने आए हैं।"

लाला—"दावत है, दावत ?"

ख़ाँ—"नहीं जनाब, आपको तकलीफ़ देने आए हैं।"

लाला—"आपको मामलो समझ में नहीं आयो।"

ख़ाँ—(हाथ जोड़कर) "लाला हमको वोट दीजिएगा—हम आपका उम्र-भर, बल्कि मरने के बाद तक, एहसान मानेंगे। लाला, हम बड़े लायक़ हैं। लाला साहब, हमारी बराबरी कोई नहीं कर सकता। हमारे पास बड़ा माल है—बराय ख़ुदा वोट हमको ही दीजिए। हम आपका बड़ा काम करेंगे। मोहरी बिलकुल साफ़ रक्खेंगे। रास्ते में कूड़े की जगह नहीं होने देंगे। अगर मोहरी में पानी न बहे, तो हमारी बीनी (नाक) जड़ से तराश लीजिएगा। ख़ुदा के वास्ते हमें वोट दीजिए। अगर आप मकान बनवाने की दरख़्वास्त देंगे, तो वल्लाह, सरकारी ज़मीन पर आपका चबूतरा बनवा देंगे। पर हमें वोट दीजिए। लाला वोट दीजिए, और क्या अर्ज़ करूँ।"

लाला—"वोट क्या करोगे मियाँजी? क्या खाओगे? वोट देके हल्या कौन लादेगो?"

ख़ाँ—"हर्गिज़ नहीं, जनाब लाला साहब, वोट हमको दीजिएगा।"

लाला—"वोट नहीं मियाँ, मुर्ग़ी खाओ, मुर्ग़ी। वोट में क्या धरो है?"

ख़ाँ—"अजी वह वोट नहीं लाला साहब। काग़ज़ का वोट याने राय का पर्चा आवेगा, उसमें हमारा नाम बिलबिलीख़ाँ लिखा होगा। उसे रहने दीजिएगा, बाक़ी नाम काट दीजिएगा, और गाड़ी आवेगी, उस पर बैठकर पर्चा दाख़िल कर आइएगा।"

लाला—"अब समझो, वह पर्चा, जो थाने पर लियो जाय है।"

ख़ाँ—"हाँ-हाँ! वही पर्चा।"

लाला—"राम-राम! वह थुक्का-फ़जीती को कागद? वामें कौन धक्को खान जाय? वामें क्या नफ़ो धरो है?"

ख़ाँ—"लाला अर्ज़ तो किया कि मोहरी आपकी साफ़ रहेगी।"

लाला—"मोहरी रँड जाय भाड़ में।"

ख़ाँ—"चबूतरा बनेगा।"

लाला—"चबूतरो बना के कोई घर लुटावनो है।"

ख़ाँ—"अच्छा, ब्याह-शादी में आपकी मदद करेंगे।"

लाला—"क्या मदद ?"

ख़ाँ—"महफ़िल में तवायफ़ का इंतज़ाम कर देंगे।"

लाला 'नहीं जी नहीं, यह हँसी करो हो।"

ख़ाँ—"हँसी नहीं लाला, तुम्हारा और भी सब काम कर देंगे।"

लाला—"तो क्या सब काम करो हो ?"

ख़ाँ—"बस, वोट हमको इनायत कीजिए, और हमसे सब काम लीजिए।"

लाला—"तब हमसूँ अभी वोट ले जाओ।"

ख़ाँ—'लाइए।"

(लाला मूसलचंद का प्रवेश)

मूसलचंद—"सलाम सेठजी, जय सीकिशन।"

लाला—"जय सीकिशन लालाजी।"

मूसल—"वोट हमको दीजिएगा।"

लाला—"वोट तो या मियाँ माँग रह्यो है।"

ख़ाँ—"देखो लाला, ज़बान न पलटना !"

मूसल—"हमको, हमको वोट, हमको लाला।"

ख़ाँ—"हमको, हमको।"

इसके बाद सेठ ने वोट का पर्चा निकाला। उस पर बिलबिली-ख़ाँ और मूसलचंद बाज़ की तरह झपटे। अब दोनों की कुश्ती होने लगी। १५-२० मिनट तक ख़ूब कुश्ती होती रही। महफ़िल में हास्य का रंग छा गया। हँसते-हँसते लोगों के पेट में

चल पड़ गए। अब नीचे लिखा गीत गाकर भाँड़ आराम करने पहुँचे—

> अक्कल की भई मोहरी वंद ; दाल-भात में मूसलचंद।
> वोट लेन को इज्जत दए ; सवै ख़ुशामदवाले कहे।
> खीसैं काढ़ भिखारी भए ; तवहुँ न मेंवर जारी भए।
> ये हैं मेंवरी के वस फंद ; दाल-भात में मूसलचंद।
> लट्ठ क़लम ले लेखक वने ; ह्रस्व-दीर्घ को कुछ न गने।
> लिखैं वही, जेहि अर्थ न वने ; भरे घमंड टाट सौं तने।
> रचैं काव्य, संमझैं नहिं छंद ; दाल-भात में मूसलचंद।

इस नक़ल के बाद चिकारे ने 'चीं-चीं' करके दूसरा सुर भरा। तवले ने 'धम-धम' की आवाज़ से दूसरा दृश्य दिखाने की सूचना दी। यहाँ पर लाड़ले ने महफ़िल-भर की निंदा में यह राय ज़ाहिर की—"वाह, यहाँ के क्या सव्य हैं।" प्रारब्ध की मार से वेचारे ने 'सभ्य' की जगह 'सव्य' कह दिया। इस पर एक स्वभाव के आनंदी पंडित बोले—"अजी, भाँड़ का तमाशा देखने आए हो कि वाप का श्राद्ध करने, जो सव्यापसव्य का झमेला लगा रहे हो ?" लाड़ले को क्रोध आ गया। बोला—"तुम नौसिखिए हो, काँ-काँ करके मेरा दिमाग़ खाए जाते हो।" इस पर एक ने हँसकर कहा—"क्या आपके दिमाग़ भी है ?"

अव नाच शुरू हो गया था, इसलिये यह वातचीत आगे नहीं वढ़ने पाई। नाचनेवाली वेश्या वदसूरत होने पर भी वावू लोगों के सम्मान की पात्री थी। इसका कारण केवल उसकी नामवरी ही थी। इनकी गुण-ग्राहकता तो वाजिव-ही-वाजिव थी। नृत्य के वाद वेश्या ने कई अच्छे राग अलापे। दो-एक पुराने लोगों को प्रसन्न करने के अभिप्राय से एक फ़ारसी की ग़ज़ल भी कही, जिसका आरंभ यों था—

सद शुक्र के शुद दौलते वस्ले तो मयस्सर ;
गर दीदए-ख़ुरशेद रुख़े दीद मुनव्वर।

इस पर नवशिक्षित और अर्द्ध-शिक्षित बाबू-दल को कुछ आनंद नहीं मिला ; किंतु नायिका ने इसका कुछ ख़याल न करके पुराने क़दरदानों की वाह-वाह लूटने के इरादे से, उनकी इच्छा के अनुसार, यह हिंदी पद गाया—

प्रभु, मँझधार नाव अटकी।
खेवन कठिन भ्रमरजालन इत उत उठाय पटकी ;
पवन-वेग जल उठत शैल-सम, फिरत लहर भटकी।
घहघहात जल बहत किनारन गिरत भूमि तट की ;
कमलासन यहि बार-बार हित परम ईश रट की।

इस पद को सुनकर फिर ग़ज़ल की फ़र्माइश (आज्ञा) कई ओर से होने लगी। तब यह ग़ज़ल गाई गई—

कूचए-जानाँ को जाते हैं पै जा सकते नहीं।
गो उठाते हैं क़दम, पर दिल उठा सकते नहीं।
मेरे आने की मनादी उसने याँ तक की कि बस—
पास मुझको उसके हमसाए बिठा सकते नहीं।
दम में हो जावे मोहब्बत का तो उसके इम्तिहान ;
दिल की बेसबरी से पर हम आज़मा सकते नहीं।
कोई उनकी और हमारी देखिए सोहबत ज़रा ;
मिल रहे हैं दिल, मगर नज़रें मिला सकते नहीं।
अपने पहलू में दिले-बेताब है वह ग़मज़दा,
जिसके हाथों से कभी आराम पा सकते नहीं।
सूरत अपनी तुम किसी सूरत दिखा जाओ हमें ;
हैं पराए बस में हम, लाचार आ सकते नहीं।

इस ग़ज़ल के बाद लोग महफ़िल से उठ गए।

अब खूबसूरत बीबियों की बारी आई, और अंतरंग सभा भी होने लगी। महफ़िल के कमरे की बग़ल में एक प्राइवेट रूम था। उसमें जा-जाकर लोग बोतल-वासिनी का प्रसाद पाने लगे। इस समय अछनू बाबू के आंतरिक मित्रों के अतिरिक्त दर्शक लोग उठकर चले गए थे। चारु मित्र ने हमारे लिये सहँची में आराम करने को बिस्तर बिछवा दिया था। वहाँ से लेटे-लेटे हम यह कलि-कौतुक देखने लगे।

इस समय बाबू लोगों की सजधज की अद्‌भुत छटा देख पड़ रही थी। एक से बढ़कर एक शौक़ीन जमा थे। हुक्कों की गुड़गुड़ाहट चारों ओर से आ रही थी। चुरुट मुँह में दबाए अनेक आदमी हृदय की कलुषता के समान धुआँ निकाल रहे थे। एक साहब बूट की वार्निश के समान काली पोशाक पहने साक्षात् कलियुग के नातेदार की तरह मसनद के गधे बन रहे थे। दूसरे कंघी से ऐसी माँग बनाए थे कि उनका सिर रेखा-गणित के उदाहरण का 'ब्लैक बोर्ड' हो रहा था। कोई नाचनेवाली की ओर इस प्रकार देख रहा था, जैसे मरभुक्खा भोजन पर नज़र डाल रहा हो। कोई मुँह बाकर ऐसी धज बनाए था, मानो अपनी बुद्धि को विसर्जन कर रहा हो। इस प्रकार ये सब कलियुगी फ़ैशन के लोग विराजमान थे। स्थानाभाव से उनका विशेष हाल नहीं दिया जा सकता। हुक़्क़ा, पान, तमाखू, चुरुट, बोतल-वासिनी, ब्रांडी, इनका तार चल रहा था।

थोड़ी देर के पश्चात् इन सबका रंग यहाँ तक पलटा कि कोई-कोई नशे में बेतुकी बकने लगे। किंतु नाच होता रहा। इस समय जो वेश्या गा रही थी, वह बाबू-समाज की अधिक प्रेम-पात्री थी। अतएव उसकी कृपा-दृष्टि से सात पीढ़ियों को स्वर्ग भेजनेवाले मर्द अधिक दिखाई पड़ रहे थे। उसकी कही हुई ग़ज़ल का एक-एक

मिसरा इनके लिये वशीकरण का काम दे रहा था। अच्छनू बाबू इन सबके सरदार बनकर एक मित्र का सहारा लगाए बड़ी दिलचस्पी के साथ नृत्य देख रहे थे। कई चीज़ों के बाद वेश्या ने कहने से यह गीत गाया—

सखी, मोसे नैनवा लगाए लीन्हो जात।
जब से गए मोरी सुधहू न लीन्ही, तड़पत हूँ दिन-रात।
सखी, मोसे नैनवा लगाए लीन्हो जात।

यह बेतुका गीत बाबू लोगों को बहुत रुचा। सबने फिर "होली, होली" कहकर अपनी इच्छा प्रकाशित की। उसने फिर कई बेतुकी होलियाँ गाईं। पर उनमें उपर्युक्त गीत के सिवा और कोई विशेष बात नहीं थी; किंतु बाबू लोगों को वे बहुत अच्छी मालूम हुईं। उनमें नीचे लिखी चीज़ हमको भी सरस जान पड़ी—

होली

बनवारी तोरी गारी मोहिं प्यारी-सी लगत।
घुँघरारी कारी लट अनियारी-सी लगत।
मनहारी बाँसुरी की धुनि सुनि हारी सब लाज आज;
चितवन न्यारी सो कटारी-सी लगत।
कैधौं ब्रज के हो तुम ही इजारदार;
बरजोरी जो करत रँग डार-डार।
ऐसी दईमारी तोरी होरी कौन काम की;
जो बरबस डारे गर-बाँही हार।

इस प्रकार बहुत कुछ जमाव रहा, बड़ी हाहा-हीही होती रही। अब हमारे ऊपर निद्रा देवी का शांत प्रभाव पड़ने लगा, और बाबुओं की महफ़िल को सृष्टि के भ्रम के समान ठोकर मारकर मन परमानंद की ओर तत्पर हुआ। कई घंटे की लगातार निद्रा के बाद फिर इन बाबुओं की मंडली की ओर नेत्रों को पहुँचने का

अवसर मिला। क्या देखते हैं, अधिकांश दर्शक नशे में चूर हो झूम रहे हैं। कोई तकिए के बल नीचे मुँह किए वहीं से, बिना कुछ देखे, "वाह-वाह" कर रहा है। कोई चित पड़ा है। कोई सिर हिलाकर "ओहो" कह रहा है। कितनों के नेत्र नशे में उबल रहे हैं, और उन पर होली का भूत प्रत्यक्ष सवार देख पड़ रहा है। इनकी यह दशा देखकर होली का रूप सामने आ गया। इनमें दो-चार जो मादकता के प्रभाव से बेहोश नहीं हो रहे थे, उन्होंने जलसा समाप्त करने के अभिप्राय से वेश्याओं को बधाई गाने की आज्ञा दी। वे सब एक-चित्त होकर अपनी फ़ीस की चाह में यों गाने लगीं—

आपको यह ख़ुशी का नाम मुबारक होवे।
सालहा-साल यूँ ख़ुश काम मुबारक होवे।
साल आइंदा में हों चैन की ये ही घड़ियाँ;
ख़ूबरूओं का यूँ पैग़ाम मुबारक होवे।

इसको सुनकर एक मुंशी साहब को अपनी शायरी याद आ गई। आप नशे के आवेश में वेश्याओं के बीच में जाकर खड़े हो कहने लगे—"हम भी गावेंगे, हम भी", और हाथ मटकाकर यह कह चले—

शराब शौक़ से पी लो मेरे प्यारे महबूब;
मुबारक हो तुम्हें यह जाम, मुबारक होवे।

मुंशी साहब की यह चाल कुछ "हाज़रीने-मजलिस" अर्थात् उपस्थित सभासदों के ऐसी मन भाई कि अनेक लोग "मुबारक होवे" कहकर ज़ोर से चिल्ला उठे। अब एक और अमीर के लड़के उठकर वहाँ पहुँचे, और बोले—

फूँक कोठी मज़ा उड़ाया है हमने हज़रात;
अब तो फ़रहाद का-सा नाम मुबारक होवे।

सब लोगों ने फिर बड़े ज़ोर से "मुबारक होवे" कहा। अब एक

पंडितजी, जो अछनू बाबू की मित्र-मंडली में शामिल थे, अपनी राग-माला यों अलापने लगे—

धरम गवा तो ससुर जाय, मजा कुछ तो भवा ;
रंडकाजू तुम्हें परनाम मुवारक होवे ।

उसी प्रकार फिर सबने बड़े ऊँचे स्वर से "मुवारक होवे" कहा । फिर एक डॉक्टर साहब उठकर यों कहने लगे—

पोस्ती लोटता अफ़ीमची गिरता-पड़ता ;
मस्त घूमा नशे मा हाम मुवारक होवे ।

एक नौसिखिए इस मंडली में चेले हुए थे । वह यों अर्थ बताने लगे—

भट्ठी में पी गए यारो, शराब की बोतल ;
छी-छी क्या है ये बुरा काम मुवारक होवे ।

दूसरे चेले यों बोले—

मीठी समझा था, ज़हर की भरी थुः-थुः निकली ;
फँसके अब हो गए बदनाम मुवारक होवे ।

यह सुनकर पंडित फिर उठकर बोला—

रामधौं नर्क की बारूद लगी हिरदे मा ;
छिल गवा हाय मोरा चाम मुवारक होवे ।

इस पर महफ़िल में शोर मचा । एक ने कहा—"हरामख़ोर मुँह पर निंदा करता है !" दूसरे ने पंडित के गुद्दा रसीद किया । अब महफ़िल में हंगामा मच गया । एक के ऊपर एक गिर पड़ा ; मार-धार होने लगी । मिस्टर व्यास नृत्य-मंदिर से बाहर रवाना हुए । वहाँ आकर उनको ये आवाज़ें सुनाई दीं—

"हत्तेरे की, आओ, आओ, मार डालूँगा । हूँ-हूँ, चला गुर्गा कहीं का । ले और ले, धम-धम-धम । दैया रे, कमर टूटी, हाय ! चुप-चुप—अहाहा, ओहोहो । मार, मार, देखा जायगा । धम, दे चपत,

धम, दे लात, धम। हाय कमर टूटी! दोहाई-दोहाई! तौबा, तौबा, क्या करते हो, बेवकूफ़ हो गए हो। अरे मर जायगा। अरे मरा-मरा। दोहाई-दोहाई, तिहाई, हज़ारहाई।"

इति पंचपुराणे प्रथमस्कंधे पंचमोऽध्यायः

षष्ठ अध्याय

कर्कशा देवी

कानपुर शहर में एक पंडित रहते हैं। यह पूर्ण पंडित हैं। व्याकरण, न्याय, मीमांसा, वेदांत और साहित्य, सबमें पारंगत हैं। यह आलस्य के परम उपासक हैं, और दिन-भर आनंद या काहिली में समय को लगाया करते हैं। इनका यह स्वभाव है कि न तो किसी लाला के पास जाकर "जय" की ध्वनि करते हैं, न व्यापार से शरीर को कष्ट देते हैं, और न कुछ परमार्थ की ओर ध्यान लगाते हैं। साक्षात् वेंकवरी की मूर्ति बने घर में लोट लगाना ही इनका पुरुषार्थ है। काम करने से आपको यहाँ तक उदासीनता है कि यदि घर में नोन न हो, तो यह विना नोन ही रोटी खा सकते हैं; पर चार क़दम चलकर नोन ले आने को अधम कार्य समझते हैं।

इनका विवाह चिरकाल तक नहीं हुआ, और जो विलायत की-जैसी स्वयंवरा कन्याएँ यहाँ भी होतीं तो कदाचित् पंडितजी को ब्रह्मचारी-अवस्था ही में प्राण त्याग करना पड़ता। किंतु यह जाति के कुलीन हैं। इनकी कुलीनता की दुम में एक निर्दोष लड़की बाँध ही दी गई। इनके पास रहकर स्त्री को तो सुख से हाथ धोने ही पड़े, पर यह आप भी काम करने से हाथ धो बैठे। रोटी की-कराई मिलने के कारण पंडितराज अब पूर्ण महंत होकर बात-बात में पत्नी से काम लेने में पुलीस के दारोग़ा बन बैठे। यह कुछ दिन में बेचारी के सब

आभूषण भी घर गए, और इनके ये लक्षण या कुलक्षण देखकर वह ग़रीबिन रो-रोकर मर गई।

यह बात इनके मित्रों को ऐसी बुरी लगी कि वे इनसे जब मिले, तो बहुत बुरी सुनाने लगे। किसी ने कहा, पंडित चंडाल है। किसी ने हत्यारा बनाया। किसी ने विद्या लादनेवाला गधा बताया। पर पंडित के कानों में जूँ न रेंगी। यह ही-ही करते रहे, और बोले—"मरणं प्रकृतिः शरीरिणाम्। अरे मित्र, कोई यहाँ बैठा नहीं रहेगा। शोक करना वृथा है।" इनकी इस कोरे वेदांत की बतोलेबाज़ी से ऊब-कर एक साहब ने कहा—

"पंडितजी, शोक तो वृथा है, पर आपके-जैसे बेतुकान को विवाह करने ही की क्या आवश्यकता थी?"

इस पर पंडितजी बोले—"विवाह करना सबका धर्म है।"

पंडित को अपनी विद्या का घमंड था; किंतु मित्र भी उदार आशय के कारण बुद्धि के तीव्र थे। इन दोनों की ख़ूब छनी। बड़ी देर तक शास्त्रार्थ होता रहा। पंडित लोगों की यह शैली है कि वे व्याकरण के सूत्रों से वाक्य को अशुद्ध बताकर वास्तविक विषय से हटकर शब्दों के झगड़े में पड़ जाते हैं। यही चाल पंडित ने भी चली। मित्र ने कहा—"चिरजाततराणां मूर्खाणां न प्रमाणम्।" चिरजाततराणां को अशुद्ध कहकर पंडित झपट पड़े। मित्र भी बड़े धूर्त निकले; वह बोले यह आर्ष-प्रयोग है। इस पर बड़ी बक-झक रही। पंडित कहें, यह प्रयोग अशुद्ध है, और मित्र कहें, यह शुद्ध है। पंडित ने बहुत कुछ कहकर यह सिद्ध किया कि ऋषि-प्रणीत ग्रंथों में जो व्याकरण के विरुद्ध शब्द होते हैं, वे ही आर्ष-प्रयोग कहलाते हैं। मित्र ने कहा—"हम भी ऋषि हैं। हमारा कहना आर्ष क्यों नहीं?" इसी प्रकार ये दोनों बड़ी देर तक सरस्वती-सागर का जल गँदला करते रहे; किंतु कुछ अर्थ न निकला।

प्रतिफल यह हुआ कि पंडित के पास लोगों ने आना-जाना कम कर दिया।

विदेश में आ जाने के कारण कई वर्षों से पंडित के कुछ समाचार नहीं मिले थे। अब की बार पंडित के दर्शनों का सौभाग्य पुनः प्राप्त हुआ। अब पंडित वह पंडित नहीं हैं। महाराज का विवाह एक बड़ी तीखी स्त्री से हुआ है, और वह मदारी की तरह इनको नाच नचाया करती है। हाल में एक दिन हम पूछते-पूछते पंडित के मकान पर पहुँचे। अब यह और मोहल्ले में रहने लगे हैं, इससे इनको ढूँढ निकालने में बड़ी कठिनाई पड़ी। ख़ैर, किसी तरह महाराज के द्वार पर पहुँचे, और आवाज़ दी। भीतर से किसी ने पूछा—"को आय?"

उत्तर में हमने कहा—"हम हैं पंडित के मित्र।"

इस पर अंदर से आवाज़ आई—"अरे घसिटवा, जा दादा से कहि दे, तोर यार आवा है।"

इस बातचीत से यह ज्ञान पड़ा कि पंडित की दूसरी बीबी बड़ी कठिन हैं, और उनके एक पुत्र भी हुआ है, जिसका नाम घसीटा रक्खा गया है। पंडित के पुत्र का नाम घसीटा इस बात की साक्षी देता है कि गृह में पत्नी का प्राबल्य परिपूर्ण है।

अब हमारा नाम पूछा गया। हमारा नाम सुनकर ब्रह्मदेव बड़ी शीघ्रता से बाहर आए, और हमें बड़े प्रेम से अंदर ले गए। अब यह कुछ काम भी करने लगे हैं। जो कुछ लाते हैं, श्रीमतीजी ले लेती हैं, और यह कोरे बने हुए संन्यासियों का अनुकरण करते हैं। थोड़ी देर के बाद पंडित ने कहा—"शरबत पियो," और लड़के को दो पैसे की शक्कर ले आने की आज्ञा दी। लड़का रोता हुआ आया, और बोला—"अम्मा नाहीं देत हैं।"

इस पर हमने पंडित से कहा—"जाने दो, शरबत का कुछ काम नहीं।"

वह बोले—"नहीं जी, अभी कल तो ४) रुपए हमने दिए हैं।"

अब ब्राह्मण देवता को कुछ क्रोध आ गया। प्रिय पत्नी से उनकी बातें होने लगीं। उनकी सरल भाषा यों है—

पंडित—"अरे पैसे क्यों नहीं देती ?"

पत्नी ने कुछ नहीं कहा। जब उन्होंने कई बार यह प्रश्न किया, बहुत चिल्लाए, तब ऊपर से उत्तर मिला—"पैसा नहीं है।"

पंडित—"अभी कल तो हमने चार रुपए दिए हैं।"

पंडिताइन—"पैसा नहीं है।"

पंडित—"अरे कल तो दिए थे !"

पंडिताइन—"ख़र्च हो गए !"

पंडित—"काहे में ख़र्च हो गए ?"

पंडिताइन—"किसी में ख़र्च हो गए।"

पंडित—"काहे में ?"

पंडिताइन—"भाड़ में।"

ये शब्द कुछ ऐसे करारे निकले, जिनसे मालूम हुआ कि पंडिताइन क्रोध में आ गई हैं।

अब ब्राह्मण देवता कुछ मुलायम पड़े, और दीनता-पूर्वक निवेदन करने लगे—

पंडित—"अरे पैसे दे दे, हमारे मित्र आए हैं।"

पंडिताइन—"पैसे नहीं हैं।"

पंडित—"अरी दे दे।"

पंडिताइन—"नहीं हैं।"

पंडित—"अच्छा नहीं हैं, तो रुपया फेंक दे, हम भुनाय लावें।"

पंडिताइन—"रुपया भी नहीं है."

पंडित—"अरे कल तो दिए थे।"

पंडिताइन—"अब नहीं हैं।"

पंडित—(क्रोध से) "अरे देती काहे नाहीं ?"

पंडिताइन—"क्या तुम्हारे बाप जमा कर गए थे ?"

पंडित—"फिर ठीक करूँ आके ?"

पंडिताइन—"तुम तो दिन-भर ठीक किया करते हो।"

यहाँ पर हमारे मित्र को क्रोध आ गया। पत्नी को सास और सास की बेटी, अयोग्य की संतान आदि कहने लगे। ऊपर से चंडिका देवी ने भी कलह-शास्त्र में पूर्ण अभ्यास सूचित किया, और एक-एक गाली का सूद-दर-सूद देना शुरू किया। पंडित का क्रोध भी भभक उठा। अब दोनों ओर से गालियों के गोले चल पड़े। बड़ी देर तक कहा-सुनी होती रही। हमारे मित्रवर लकड़ी पटककर पटेबाज़ी की धमकी दिखाने लगे। श्रीमती ने ऊपर बर्तन पटक-पटककर क्रोध का प्रत्यक्ष रूप दिखाना शुरू किया। यह युद्ध बोअर-युद्ध की तरह बढ़ चला। फिर गालियों की बाण-वर्षा बड़े वेग से होने लगी।

एकाएक "ले दाढ़ीजार, ले" कहकर पंडिताइन ने ऊपर से लुटिया दे पटकी। पंडित की पीठ पर बड़ा धमाका हुआ। पर मार खाकर मित्र को और क्रोध चढ़ आया। आप लकड़ी लेकर ऊपर पहुँचे। हमने कई बार कहा—"अरे मित्र, हम शरबत से बाज़ आए, दया करो"; पर मित्र ने एक न मानी। चटपट लकड़ी पटकते ऊपर के खंड में पहुँच ही तो गए, और आते ही आपने चौंची को दो-तीन डंडे अर्पण ही तो कर दिए।

अब पूरी चमचख मची। घसीटे मिश्र भी रोने लगे। दैया-मैया की आवाज़ आने लगी। पंडित ने फिर लकड़ी तानी। इतने में श्रीमती पंडिताइन ने उनकी लकड़ी छीनकर तीन-चार तमाचे तेहे में ऐसे जमाए कि उँगलियों के निशान बन गए। पंडित कुलीन ठहरे, तमाचों से क्यों डरने लगे ? फिर लकड़ी लेकर उठे। अब पंडित की

प्रियतमा ने चूल्हा-शस्त्र का प्रयोग किया, और जलती लकड़ी इनके तानकर मारी, पर लगी नहीं। अब दूसरी लकड़ी और तानकर निशाना लगाया। यह महाराज के चरण-कमलों पर आकर गिरी। पैर जल गया। ब्राह्मण देवता के होश डाकगाड़ी हो गए। अब यह नीचे को चले। इतने में एक लकड़ी और खींचकर चलाई गई। पंडित मारे डर के भागे, और सीढ़ी में रपटकर सिर के बल लद से हमारे सामने आ गिरे। "अरे! अरे!" कहकर हम खड़े हो गए। एक जलता अंगारा आँगन में और आकर गिरा। हम भी प्राण लेकर बाहर आए।

फिर क्या हुआ, यह नहीं मालूम हो सका। किंतु हमने उस दिन से यह प्रतिज्ञा कर ली कि जिस मित्र के घर जायँगे, शरबत का नाम न लेंगे।

इति पंचपुराणे प्रथमस्कंधे षष्ठोऽध्यायः

सप्तम अध्याय

कनागत की लागत

लाला मोटेमल के बाप का श्राद्ध भी एक दर्शनीय नाटक के 'सीन' का काम कर जाता है। इनके घर में धन और जन की कमी नहीं है, अतएव रोज़ ही खाने-पीने की भीड़ रहती है। पर श्राद्ध के दिन यह भीड़ एक बड़ी दावत की धूम का रंग जमा देती है। इसका एक कारण यह भी है कि मोटेमल के दादा मरकर भूत हो गए थे, और उनके भूत होने से घर-भर को चिरकाल तक बड़ी कठिन यातना भोगनी पड़ी—घर में ईंटें, रोड़े, मल-मूत्र आदि की महीनों वर्षा होती रही। मोटेमल के पिता थे तो बिलकुल शीतला-वाहन के चचाज़ात, पर भूत की कृपा से इतने समझदार ज़रूर हो गए

कि मरते समय उन्होंने अपनी वसीयत में श्राद्ध पर बड़ी श्रद्धा प्रकट की, और यह साफ़ लिखवा दिया कि अगर ख़ानदान में कनागत व सालाना वफ़ात के दिन सराध मौक़ूफ़ कर दिया जाय, तो कोठी से ५० हज़ार रुपए की रक़म निकालकर किसी मंदिर के वक़्फ़ में मिला दी जाय।

इस धमकी से कनागत का ब्रह्मभोज बराबर हुए जाता है।

बिचारे मोटेमल श्राद्ध के दिन बड़ी तैयारी करते हैं। पर मिज़ाज में किफ़ायत देवी की उपासना होने के कारण खीर में बालू डालने के समान सब सामान किरकिरा हो जाता है। दूध में पानी मिलाना तो कुछ बात ही नहीं; अव्वल दर्जे का चरबी-मिला घी, जुआर के मेल से पवित्र किया हुआ आटा, सड़ी हुई सस्ती तरकारी और अभक्ष्य पदार्थों से धोई हुई शक्कर इत्यादि से लाला के घर दुर्गंध का ख़ज़ाना खुल जाता है। उस पर जब गीली लकड़ियों से निकला हुआ धुआँ चारों तरफ़ ज़ोर करके फैलता है, तब श्राद्ध के 'हाज़िरीन' लोगों की नाक और नेत्र किसी बरफ़ की पहाड़ी के झरने की नक़ल करने लगते हैं। उस कैफ़ियत को देखकर यही बोध होता है, मानो कनागत की लागत से संतप्त होकर लाला के मित्रगण मोहर्रम की उपासना कर रहे हैं।

यह सब तमाशा तो हर साल ही होता है; किंतु अब की साल ब्राह्मणों की विदेशी शक्कर के त्याग की प्रतिज्ञा से मामला और भी खराद पर चढ़ गया था। हमारे भूलोक के देवता लोगों की निमंत्रण खाने और दक्षिणा टेंट में करने की परंपरा संसार में विख्यात है। और, जब से महँगी, अन्न-कष्ट तथा नास्तिकता ने देश में ज़ोर पकड़ा है, तथा कलिराज ने ब्राह्मणों को सत्ययुग का नातेदार समझकर, इन पर ज़ोर-शोर का धावा कर दिया है, तब से ये बुद्धि को इस्तीफ़ा देकर "टका हि परमं पदं" का गुरुमंत्र जपने लगे हैं। ब्राह्मणों

की नेचर अर्थात् खसलत शुद्ध है। इसलिये धर्म-कार्य में दौड़ तो उठते हैं, पर लोभ की मित्रता से पछाड़ खा जाते हैं। लोभ की कृपा का क्या फल हुआ, सो सुनिए।

लाला मोटेमल ने अपने पुरोहित डंडे गुरू को विलायती शक्कर का महाप्रसाद खाने पर राज़ी कर लिया, और यह तरकीब निकाली कि ब्रह्मभोज में सबको धोका देकर शक्कर खिला दी जाय; क्योंकि देसी मिठाई में ज़्यादा धन लगाकर वह कनागत की लागत बढ़ाया नहीं चाहता था। यह काररवाई बड़ी गुप्त रीति से की गई। घर-भर के सब 'मेंबरों' से कह दिया कि यह गुप्त रहस्य "गोपनीयं गोपनीयं गोपनीयं प्रयत्नतः" रक्खा जाय। पर पाप कब छिपता है? धीरे-धीरे ख़बर फैल गई। सबको तो नहीं मालूम हुआ, किंतु लाला के घर निमंत्रण में जाकर एक पंडितराज को यह सब वृत्तांत मालूम हो गया। पंडितजी बड़े आनंदी स्वभाव के आदमी थे। जब ब्राह्मणों की पंक्ति बैठी, और लाला पूरी-कचौड़ी आदि सामान लेकर दान करने आए, तब महाराज ने यह संकल्प पढ़ा—

"अद्य खुदापरवरदिगारस्य सृष्ट्यारंभे ईशावतारे मोहम्मदपैगंबरस्य धर्मशासनाधिकारे इंडियादेशांतर्गत आगराअवधप्रोविंसप्रदेशे हाईकोर्टादिलोर्थसन्निकटस्थस्थाने लखनविति इस्लामनगरे मासोत्तमे मासे सेप्टंबरमासे पक्षहीने सप्तमतारीखे फ्राइडेवासरे अष्टगोत्रस्य लालामोटेमलस्य पितुर्लाला खल्वाटरायवर्म्मणः गौरंडलोकवासप्राप्ति-कामः इदं चर्म्यादिमिश्रितघृतपक्वान्नं शोणितमूत्रादिशोधितं शर्क-रान्वितं होटलमांसवाक्सादिपरित्यक्तलवणयुतं प्रविश्य परिवेक्ष्यमाणं नानानामगोत्रेभ्यो "बाँभन"-उपाधिधारियाचकेभ्यो परमलोभोपास-केभ्यो दातुमहमुत्सृजे।"

इस संकल्प के 'सिगनेल' को सुनकर कुछ ब्राह्मण खड़े हो गए। बड़ी काँय-काँय होने लगी। लाला सबके हाथ जोड़कर

मनाते थे; पर कोई न मानता था। बड़े झमेले के बाद विचारवान् ब्राह्मण तो चले गए, पर डंटे गुरु अपने ढंढे बजानेवालों को साथ लेकर भ्रष्ट पदार्थ खाने को पत्तल बिछाकर बैठ गए। इस झगड़े ने सब मज़ा बिगाड़ दिया। लाला मोटेमल ने बड़े दुःख के साथ यह श्राद्ध का दिन काटा। रात को दिन-भर का थका लाला जब सोया, तो उसका पिता खल्वाटराय मुँह खोले हुए स्वप्न में दिखाई दिया, और अनेक मुँह-बाए साथियों को लेकर मोटेमल के आगे "भूखे-भूखे" कहकर चिल्लाने लगा। उसके साथी पितर भी "भूखे" कह-कर चीख़ मारने लगे। घबराकर लाला की नींद खुल गई। यह मालूम पड़ा कि भूखे पितर मोटेमल को खाने के लिये दौड़ रहे हैं। लाला की 'अक्ल' का दिवाला निकल गया।

प्रातःकाल इस स्वप्न की चर्चा नगर-भर में फैल गई। भयभीत लाला को फिर बड़ी लागत लगाकर शुद्ध पदार्थ से श्राद्ध करने पर संबंधियों ने लाचार किया। रोता हुआ मोटेमल कनागत की लागत का विलाप करने लगा, और उसकी हिचकियों के साथ यह अध्याय भी समाप्त हुआ।

इति पंचपुराणे प्रथमस्कंधे सप्तमोऽध्यायः

अष्टम अध्याय

बुद्धि का रोगी

जहाँ सैकड़ों रोग हैं, वहाँ बुद्धि का रोग भी है। यह रोग जिसको लगा, बस, समझिए, वह परम पद को पहुँच गया। जहाँ इसका दौरा आया, वहाँ आदमी अपने को बुद्धि का पुतला समझने लगता है। वह अपने मांस और शरीर, को भी बुद्धि में गिनता है। इस रोग के रोगी लाला चोंचमल देखने ही योग्य हैं। लंबी नाक होने के कारण, या पक्षियों के पालने से चिड़ियों के प्रेमी होने के सबब,

या अमीर वन के बैठने के विचार से, लोग इनको चोंचमल कहते हैं। यह चोंचमल सव मलों के मल हैं, यह कहना अत्युक्ति नहीं। किसी कवि ने आपके विषय में कहा है—

"मलमल में एक मल, खटमल छः मल;
चोंचमल में तो मल-ही-मल रहत हैं।"

चोंचमल के लिये ही मानो यह मसला बनाया गया है—

"ओ ना मा सी धम्, बाप पढ़े ना हम्।"

इनके पूर्व पुरुषों में किसी ने अलिफ़्बे पढ़कर मौलवी साहव के मकतब में ख़ालिक़बारी पढ़ने का सौभाग्य प्राप्त किया था। ज्यों ही थोड़ा-सा पढ़कर चिरंजीवि ने यह शेर पढ़ा—

"सीना छाती, पिस्ताँ चूँची, पीनी नाक़"

—बस, वालक की नाक में ऐसा दर्द होने लगा कि नाक़ काटने की ज़रूरत पड़ी, और उस दिन से घर-भर में यह रीति चल गई कि ज़्यादा पढ़ना नाक कटाने के बरावर है। इसी आधार पर ख़ानदान में कुंदेनातराश, वछिया के ताऊ, अक्षर के शत्रु और कोरे संठ बरावर होते चले आए हैं। इनके पिता-पितामह के अगले कोई ऐसा काम कर गए, जिससे पुराने नव्वाबों से इस ख़ानदान का कुछ घरेलू संबंध हो गया, और उसी संबंध से यह कुछ माल पा गए। फिर क्या था? सूद, कृपणता और वेईमानी, इन तीनों की कृपा से यह पूरे महाजनों के गुरु वावा महाजिन्न हो गए।

इनके घर में कभी कौड़ी का दान नहीं हुआ। सव दानों की जगह पीकदान के समान प्रयोग होता रहा, याने सिवा लेने के देने का नाम घर-भर ने नहीं जाना। इनके एक पूर्व-पुरुष थे, जिनके स्वभाव का यह स्वयं फ़ख़्र के साथ वर्णन करते हैं। वह स्वभाव यह था कि जब लालाजी वाहर जाते थे, तो फ़क़ीरों में बैठकर कौड़ियाँ माँग लाया करते थे। यह-वड़े लाला रैदास के वड़े भक्त थे, और उनके

बनाए भजन भी इनके घर में रक्खे हैं। लाला चोंचमल ने कई बार उन भजनों को छपाने का विचार किया, पर कोई प्रिंटर इनको नहीं मिलता। यह चाहते हैं कि उनको छापकर नोन-तेल का सहारा किया करें, और छपाई न देनी पड़े, तो ठीक। पर कोई ऐसा ज्ञानवान् इनको आज तक नहीं मिला। पुराने लाला की भजनावली में से थोड़ा-सा नमूना यहाँ उद्धृत किया जाता है—

(१)

अरे मन, राम-राम भज रे;
बगलाभगत बनो निसि-बासर, लोभ न कछु तज रे।
करि किरपनता जनम सफल कर, धन से घर सज रे;
लंबो तिलक फटाको फाटक, रचि नित कर कज रे।

(२)

वाकी सफल कमाई।
जिहि धन गाढ़ि-गाढ़ि धरि राख्यो, जानै सुत न लुगाई।
चोर-चार लै सकत नाहिं तिन, बसुधा सुधा जमाई;
धनि वे नर, जे खरचत कछु ना, नित माया लपटाई।

(३)

जय जगनायक आनँददायक नगदनरायनमीशं;
सूद देत नित धनिक कहत सब यासों अधिक न ईशं।
जाकी कृपा चैन से बीतत मर के होत फनीशं;
भज नारायन, नगदनरायन, नगदनरायनमीशं।

इनके बुज़ुर्गों में एक साहब कृपणों के बादशाह हो चुके हैं। उनका यह कथन था कि 'ख़र्च' शब्द 'ख़र' से संबंध रखता है। ख़र्च करनेवाले ख़र होते हैं। उनकी बानियाँ भी घर में गाई जाती हैं, और लाला चोंचमल भी बड़ी देर तक ठाकुरजी के सामने उनका पाठ किया करते हैं—

(१)

जात-पात जावै चली, माया कछु न सिराय ;
लाला कहत विचार के, धन न कछुक छूटि जाय ।

(२)

जोरू जाय तऊ फिर आय ; हा-हा धन न कछुक लै जाय ।

(३)

गाड़ धरो अरु जोड़ो रक़म, करके सबकी माया हज़म ;
यामा करो सफल सब जनम, खावौ कौड़ी की नाहिं क़सम ।
जो चाहे मैं पाऊँ रक़म, करे सबै इच्छा को भस्म ;
औरत चहे करे नित खसम, मर्द खाय पुनि झूठी क़सम ।

इस तरह की वानियों से लाला के पाठ का गुटका भरा हुआ है, और उसी के अनुसार घर के आबाल-वृद्ध सब आचरण करते हैं ।

इति पंचपुराणे प्रथमस्कंधे अष्टमोऽध्यायः

नवम अध्याय

दिवाली की मिठाई

यों तो हज़रते कलियुग ने चिरकाल से अपनी कृपा का विस्तार इस देश में फैला ही रक्खा था, किंतु जिस दिन से यहाँ के निवासी लंगूरी चाल में दीक्षित होकर बाप-दादे को "बेवक़ूफ़" कहने का मंत्र सीखने लगे, उस दिन से देश में पूरा आनंद छा गया है । दिन-पर-दिन अकाल, ग़रीबी और अनावृष्टि की लीला होने पर भी इन पर से बुरे ग्रहों की दृष्टि नहीं हटी, इनकी कमज़ोरी और डरपोकपन देखकर श्रीमती प्लेग ने भी इनको बिलकुल बिल का चूहा ही समझ लिया, और वह बिल्ली की नातेदार बनकर ग़रीब देशियों का शिकार करने लगी ।

इस समय को लोग बड़ा ख़राब बताते हैं सही, पर हमारे बाबू

लोगों पर इस कथन का कुछ प्रभाव नहीं। उनको अपनी शराव, कवाव, और रंडी-मुंडी के आगे त्रैलोक्य में कुछ और नहीं जचता। इसी प्रकार के वेश्या के उपासक एक वावू साहव की आज रहस-लोला देखने में आई है। इनका नाम चाहे कुछ हो, पर काम पूरे शैतान के हैं। वाप का पेट काट-काटकर जोड़ा हुआ धन रंडिका-यज्ञ में लगाकर ढाढ़ी-तवलचियों को दक्षिणा-स्वरूप दे दिया गया। माता का स्त्रीधन लुटा दिया गया। घर में चूहे निर्जला एकादशी का सामान करते डंड पेलते हैं। पर वावूगीरी एक इंच भी कम नहीं हुई। अभी तक सितार, तंबूरे तथा टूटे हारमोनियम की तानारीरी आपकी वैठक में हुए ही जाती है। पान-तमाखू का ख़र्च घर के लुटिया-लोटों को सूदख़ोर महाजनों की हवालात में भेजने से चला जाता है। इनके यहाँ दिवाली का उत्सव पूरे दिवाले का काम दे देने योग्य हो गया था; पर एक वात इनके हाथ लग गई, जिससे दीपमालिका की मिठाई का तार कुछ वनता नज़र आने लगा।

वावू की वधुआइन एक अमीर की छोकरी है। विवाह होने के समय से वह ग़रीव शीघ्रवोध के काशीनाथ को कोसती विधवा के समान समय व्यतीत कर रही थी। वाप के वही वेटी है, घर में उसका वड़ा दुलार है। हाथ-पैर की भी सुंदर है। वावू साहव की सूरत वेश्या की जूतियों से पिटकर कोरी वन गई है, और उनको देखने से यह ज्ञात होता है कि क़व्रस्तान के निवासियों से इनका संवंध हुए थोड़ी देर हुई, या थोड़ी देर में हुआ चाहता है। आज दिवाली की मिठाई का रंग जमाने को वावू ने सुसराल में प्रस्थान किया। उधर कई मास से एक टोना जाननेवाला स्त्री-पुरुष का मेल कराने के लिये अनुष्ठान कर रहा था। वावू के अनायास वहाँ जाने पर पंडित की वात वन गई, और वावू को "असारे खलु संसारे सारं श्वशुरमन्दिरम्" का पूरा अनुभव होने लगा।

सुसराल का सम्मान संसार में प्रसिद्ध है। फिर ऐसी सुसराल, जहाँ माल की उत्तराधिकारिणी केवल एक कन्या ही हो, तो स्वर्ग में भी दुर्लभ है। जान पड़ता है, सुसराल के तत्त्व को महादेव और विष्णु के अतिरिक्त और कोई देवता भी नहीं समझ पाया; क्योंकि इनके अतिरिक्त किसी की इतनी दूरदृष्टि नहीं हुई कि वह सुसराल में निवास करता। किसी कवि ने ठीक कहा है—

"असारे खलु संसारे सारं श्वशुरमन्दिरम् ;
हरो हिमालये शेते विष्णुश्शेते महोदधौ ।"

आजकल कलिकाल के प्रसाद से देवता और मनुष्यों का परस्पर संबंध छूट गया है, यह कुछ कम शोक की बात नहीं। यदि ऐसा न हुआ होता, तो महादेव और नारायण के पास 'डेपुटेशन' भेजकर इस बात का पूरा अनुसंधान कर लिया जाता।

इसके सिवा यह भी कुछ कम शोक की बात नहीं कि जहाँ इलाहाबाद और बनारस के माहात्म्य के सैकड़ों गीत गाए गए हैं, वहाँ सुसराल-माहात्म्य का एक श्लोक भी नहीं मिलता, और जहाँ रेल, तार और वाइट साहब के स्टीम एंजिन की रिपोर्ट वेद भगवान् की थैली में भरी गई- वहाँ सुसराल की बात को छोड़कर नवीन आचार्यों ने भी अर्थ-वसीटी में बिलकुल पस्त-हिम्मती का काम किया है।

भविष्य में जब सब लोगों का वैज्ञानिक मत हो जायगा, जब शूद्र लोग आचार्यत्व के पद पर पहुँचकर ब्राह्मणों को दीक्षा देने लगेंगे, जब स्त्रियाँ व्यापार करेंगी और पुरुष घर में बैठेंगे, तब लोग सुसराल के माहात्म्य को समझें तो समझें। बिना उस उन्नति के परम पद पर पहुँचे लोग इस सूक्ष्म वार्ता को कदापि नहीं समझ सकेंगे। अतएव इस माहात्म्य को छोड़कर अन्य कथा पर ध्यान देना चाहिए।

बाबू साहब दिवाली में तंग होकर अपनी सुसराल में गए।

अब क्या था, चारों तरफ़ धूम मचने लगी। जमाई बाबू के आने के संवाद से अड़ोस-पड़ोस तक के लोग प्रसन्न हो गए; क्योंकि लाला झक्कड़शाह के ख़ानदान में एक लड़की ही शाखा-स्वरूप बची थी। बाल-विवाह के प्रसाद से पति-पत्नी में कुछ ऐसी अन-बन हुई थी कि वह बेचारी विधवा के समान काल व्यतीत करती रही। बाबू साहब उधर वेश्याओं की उपासना के समाज में भरती रहे, और झक्कड़शाह सपत्नीक कलप-कलपकर कभी जन्म-पत्री के ग्रहों की मूर्खता और कभी पंडितों की पत्री मिलाने की भूल का नाम ले-लेकर मोहर्रम का रोदन-व्रत करते रहे। ऐसे पड़ोसी की पतिपरित्यक्ता कन्या के पति का अनायास आ जाना सुनकर अनेक भले आदमी प्रसन्न हुए।

बाबू साहब की ख़ातिर में लाला झक्कड़शाह ने कोई कसर नहीं उठा रक्खी। साबुन मल-मलकर उनका विलायती कुत्तों का-सा स्नान, श्राद्ध में आए हुए मथुरा के चौबों-सा भोजन और बिस्तर पर लोट लगाकर करवट बदलना बिलकुल शीतला के वाहन के समान होने लगा। हुक्क़ा, पान, तमाखू लिए नौकर-चाकर और झक्कड़शाह की लड़की बराबर अभ्यागत बाबू की सेवा करने लगी। इस तरह की ख़ातिर का हाल सुनकर बहुत-से पेटार्थू लोगों के मुँह में पानी भर आना संभव है। पर शौक़ीन बाबू को सुख का अजीर्ण हो गया। दो दिन के बाद ही उनको अपनी उपास्य देवी याद आने लगीं। पहले चरस का आवाहन हुआ, फिर गाँजे की भक्ति बढ़ी, बीच-बीच में भंग का पंचामृत उड़ने लगा, और अंत में बोतल-वासिनी की प्रतिष्ठा होने लगी। कहते हैं, अभ्यास भी प्रकृति का दूसरा रूप बन जाता है। यह बात प्रत्यक्ष देखने में आई। प्राकृतिक सुंदरता से भरी अपनी पाणिगृहीती पत्नी से उसे उदासीनता होने लगी, और वह ऐयाशी-पंथ का वैरागी बनकर

जन्म को निरर्थक बनानेवाली बाज़ारू सुंदरता का भजन करने लगा।

दिवाली की रात को झक्कड़शाह ने जमाई बाबू को बहुत कुछ नगदी और मिठाई देकर उत्सव मनाया, और प्रसन्नचित्त होकर शयन करने गया। रात को एक बजे के लगभग उसकी कन्या बड़े ज़ोर से रोने लगी। नौकर-चाकर सब जाग उठे। वह बेचारी निरपराध स्त्री को मद्य के नशे में मारने लगा। सबको साथ में लिए हुए झक्कड़शाह कमरे में आया, कन्या को छुड़ाकर छाती पीटने लगा। बाबू नशे में अस्त-व्यस्त बकने लगा, और नाराज़ होकर बोला—"चलो, यहाँ नहीं रहेंगे।" इतना सुनकर एक स्त्री उसके साथ उठ खड़ी हुई। मालूम हुआ, छिपाकर किसी वेश्या को वह कमरे में कई दिन से रक्खे हुए था। इस बात को देख-सुनकर झक्कड़शाह ने और ज़ोर से छाती पीटना शुरू किया।

इस पीटने की कृपा से बाबू अपनी दुम-स्वरूप वेश्या को लेकर भागा। म्लेच्छ-संसर्ग-दूषित मिठाई कूड़े पर फेंकी गई। घर-भर में शोक मच गया। बाबू को सब बुरा कहने लगे। पर किसी समझदार ने लीक पीटने के प्रेमी लाला के बाल-विवाह करने की प्रथा को ज़रा भी नहीं दोष दिया।

पीछे से सुनने में आया कि बाबू शराब के नशे में मोहरी में गिर पड़ा, वेश्या अपने घर भाग गई, और पुलीस ने बाबू का मजिस्ट्रेटी कचहरी में चालान कर दिया। उसके चूतड़ों पर बेंत पड़े, और वह उन्नीसवीं शताब्दी का नवीन मजनूँ होकर इधर-उधर गलियों में घूमने लगा।

इति पंचपुराणे प्रथमस्कंधे नवमोऽध्यायः

दशम अध्याय

सहालग की रिपोर्ट

वर्तमान संवत्सर का नाम रौद्र रक्खा गया था। इस रौद्र की भयंकरता बाल्य-विवाह के ऊपर ज़रा भी नहीं पड़ने पाई; क्योंकि अंध-परंपरा-शास्त्र के अनुगामी अपने बालकों के गले में विवाह का घंटा बाँधने ही को परम कर्तव्य या फ़र्ज़ समझते हैं। विद्या, धन, योग्यता और बल चाहे लड़के में हों या न हों, किंतु विवाह अवश्य हो। यही अंध-परंपरा की उपासना का मूल-मंत्र है। इस मंत्र के आगे किसी 'रिफ़ार्म' की दाल नहीं गलती। बड़े-बड़े कोट-पतलून-धारी बाबू लोग सभा-समाज में चाहे जितनी कल्ले-दराज़ी करके हाथ-पैर पटकें; किंतु जब घर की चूल्हा-यज्ञ की अधिष्ठात्री से काम पड़ता है, तब सब शेख़ी निकल भागती है।

अबकी सहालग-पर्व पर मिस्टर व्यास मसानी देवी के मंदिर में एक दिन पहुँचे। इस प्रांत की यह चाल है कि विवाह-कृत्य से निवृत्त होकर वर-कन्या को मसानी और शीतलादेवी के आगे पेश करके उनका पूजन कराया जाता है। तेंतीस करोड़ देवतों के ब्रिगेड के होते हुए भी शीतलादेवी की यह उपासना फ़िलासफ़ी से ख़ाली नहीं है। शायद इस विचार से कि शीतलादेवी बालकों को अपनी चेचक का प्रसाद देकर सुंदरता का नमूना न बना डालें, किसी बाल्य-विवाह के प्रेमी ने यह रिशवत देने की पूजा निकाली है। अथवा इस प्रकार की लीक-पीटन-लीला से नाराज़ होकर किसी तबियतदार पंडित ने एक दिल्लगी चला दी हो, तो कुछ आश्चर्य नहीं; क्योंकि ऐसे विवाह के करनेवाले शीतला-वाहन की उपाधि के अधिकारी तो अवश्य ही होते हैं। सरकारी गज़ट में इस उपाधि को स्थान न मिलता देखकर शीतला के पास भेजने की चाल कुछ अनुचित नहीं कही जा सकती। ख़ैर, जाते ही क्या देखा, एक छोटे-

से बालक के पीछे कपड़े से बँधी हुई एक बालिका चली आती है। वर-कन्या, दोनों की नाक से बलग़म बह रहा है। बेचारों को अपने कपड़े लेकर चलना कठिन हो रहा है। पसीने में लथ-पथ चले आते हैं। पीछे स्त्रियों का समूह कुछ बेढंगे गीत गाता हुआ चल रहा है। काशीनाथ की "अष्टवर्षा भवेद् गौरी" की आज्ञा की पूरी पाबंदी दृष्टिगोचर हो गई। शीतलादेवी के मंदिर के बाहर पानी भी छिड़का जाता है। कीचड़ की अमलदारी अच्छा आतंक जमाए रहती है। वहाँ पर आते ही बालक का पैर फिसला; आनन-फ़ानन में वह पैर की ग़लती से मुँह के बल आ पड़ा, और कपड़ा घसिटने से कन्या ने भी एक लोट लगाई। दोनों कीचड़ का महा-प्रसाद पा गए। "अरे! अरे!" करके स्त्रियाँ दौड़ीं, और दोनों को गोद में लेकर काँयँ-काँयँ-राग की धुन में पड़ीं; किंतु वर और कन्या, दोनों ने रो-रोकर ऐसा धुरपद अलापा कि ताल-सुर का कुछ ठिकाना नहीं रहा।

दूसरे नंबर पर एक लंबे अरबी ऊँट की नक़ल के समान दूलहा दिखाई पड़ा। उसकी लंबाई ७२ इंच से कम न होगी, और उसके लंबे दुपट्टे के साथ बँधी हुई एक ७ या ८ वर्ष की बालिका को देख-कर कोई प्रचलित उपमा तो न याद पड़ी, किंतु हाँ, उत्प्रेक्षा की क़तार तार बाँधकर सामने अवश्य खड़ी हो गई। जैसे लंगूर के साथ ख़रगोश, ऊँट के साथ बकरी, भैंसे के साथ चुहिया की शादी हो, वैसे ही इस अप्राकृतिक जुगलजोड़ी के दर्शन हुए। दूल्हा के शुतुर्मुर्ग़-सी चाल के डग बेचारी बालिका की दौड़ के बराबर नहीं हो सकते थे, अतएव दूल्हा साहब की नकेल थामने के अभिप्राय से साथियों ने कई बार "धीरे चलो" की आज्ञा दी; पर फल कुछ न निकला। अंत को बालिका थककर बैठ गई, और दूल्हा साहब रुक-कर खड़े हो गए। इस झमेले में कुछ ऐसी घसीटा-घसीटी हुई कि

वर-पक्ष की स्त्रियों ने कन्या की निंदा की, कन्या की तरफ़ से वर पर दोषारोपण किया गया, और स्त्रियों का कच-कच-युद्ध आरंभ हो गया। अपने दल की कुमक पर वरजी भी कुछ कह चले थे; पर करारा जवाब पाने पर सिसक-सिसककर रोने लगे।

तीसरे नंबर पर लंबी गाय के गले में घंटी के समान लटकते हुए दूल्हा साहब नमूदार हुए। इस विचित्र जोड़ी को देखकर चलनेवाले बिना हँसे नहीं रहते थे; पर साथवाले कहते थे—"बड़ी बहू बड़े भाग; छोटी बहू छोटा भाग।" इस प्रकार कई बार सुन-कर एक मरैठी के शायर हँसकर यों कहने लगे—

बड़ी बहू से भागा भाग, घर आई तब फूटे भाग;
या जावेगी वर से भाग, यामें झूठ न एको भाग।

चौथे नंबर पर ६० वर्ष के बूढ़े वर के दर्शन हुए। आपने मारे बड़प्पन के, या लज्जा के, बालिका के साथ लंबा वस्त्र बाँधकर चलने से इनकार किया; पर साथ-साथ चलने लगे। बूढ़े के लिहाज़ से स्त्रियाँ भी चुपचाप मातमी चाल से चल रही थीं। इतने में एक फ़क़ीर आकर दूल्हे से बालिका पत्नी की ओर इशारा करके बोला—"लाला साहब, यह पोती सलामत रहे।" यह सुनते ही लाला जामे से बाहर होकर ऐसा चिल्लाया कि उसका दम उखड़ गया। फ़क़ीर तो भय के मारे दूर तक भागा चला गया, किंतु लाला "खों-खों" की उपासना करता गर्दन नचाने की लीला में लिप्त हुआ।

इस प्रकार जितने वर-कन्या शीतलादेवी के मंदिर में दिखाई पड़े, उनमें दो-एक को छोड़कर सभी ऐसे थे। वरों की गणना में काना, बहरा आदि देखकर यह सिद्धांत अवश्य मानना पड़ा कि विवाह करने के विषय में हिंदू-संतान बिलकुल बिना सींग-पूँछ के जानवर होने की लियाक़त रखती है।

इति पंचपुराणे प्रथमस्कंधे दशमोऽध्यायः

एकादश अध्याय

पंचायत का श्राद्ध

लाला चकोतरामल अपने समाज के चेयरमैन या सरपंच हैं। इनके घर का बड़ा नाम है, और कुटुंब की गिनती एक छोटे-से टीड़ी-दल की उपमा के योग्य है। औरों की दावत इनके घर की रसोई के बराबर होती है। जिस प्रकार ब्रिटिश-राज्य किसी समय सूर्य के प्रकाश से शून्य नहीं होता, उसी प्रकार लाला के घर से चूल्हे का प्रकाश कभी हट नहीं सकता। उस उच्च घराने के वंशधर होकर लाला चकोतरामल सब मलों के मल हो रहे हैं। सारी बिरादरी से इनका किसी-न-किसी प्रकार संबंध लगा हुआ है।

लाला साहब की शिक्षा की दौड़ केवल मोहर-वट्टों की परा काष्ठा ही तक पहुँचने पाई। फिर यह अपने कारोबार की लादी लेकर चलने के अभ्यासी बनने लगे। प्रारब्ध की ख़ूबी कि नगदनारायण पूर्ण रूप से प्रसन्न हो गए, और चारों तरफ़ से लक्ष्मी ने घेरकर इनको दौलत का कीड़ा बना दिया। अब क्या था, "एक तो करेला, दूसरे नीम-चढ़ा।" लाला हर तरह से लालोलाल हो गया। जब घर के बूढ़े एक-एक करके स्वर्ग या नरक की अदालत में बुला लिए गए, और चकोतरामल अपने बड़प्पन की गद्दी पर बैठा, तब उसने अच्छी तरह से नाम पैदा कर लिया। पुत्र के विवाह में नगर-भर की बाज़ारू औरतों को बुलाकर 'इश्क़'-यज्ञ किया। सोहगी लुटा-कर उसने शोहदों और भिखमंगों का परम भोज कर डाला। दावत की धूमधाम करके वह उच्छिष्ट फैलाने के परम पुण्य का भागी बना। इस प्रकार नाम फैलाकर मनुष्य को समाज की सरपंची मिल जाने का प्राकृतिक नियम है। यह नियम सदा से चला आया है। पूर्व काल में द्रव्य को सुकर्म में व्यय करने से चौधराहट मिलती थी; पर अब केवल रुपया ख़र्च करने से मिलती है। सुकर्म और

दुष्कर्म सब बराबर ही समझे जाते हैं। संभव था कि नवीन शिक्षा से परिमार्जित नवयुवक अपने चिर-प्रचलित सामाजिक 'स्वराज्य' को हस्तगत करके पंचायत को ठीक क्रम पर लाते। पर यह नहीं हुआ। कोट-पतलून की दीक्षा ने उनको, सनातन से प्राप्त स्वराज्य पर लात लगवाकर, सरकार से स्वराज्य माँगने का भिक्षुक बना दिया। फल यह निकला कि नवीन शिक्षित लोगों की ओर से पंचायत मूर्खों की मंडली समझी जाने लगी, और पुराने लोग नई बाबू-मंडली को बंदरों के चचाज़ात सुग्रीव की पार्टी समझने लगे।

समय के फेर से अब पंचायत की चाल उठ-सी गई है! अतएव लाला चकोतरामल के यहाँ पंचायत का 'श्राद्ध' हर साल होता है। इस श्राद्ध में ब्राह्मण-भोजन के अतिरिक्त पंचायत का मर्सिया भी पढ़ा जाता और अनेक प्राचीन और नवीन आचारादि पर आलोचना करनेवाली रिपोर्ट भी सुनाई जाती है। अब की इस श्राद्ध का अच्छा समारोह हुआ, और रिपोर्ट का भार एक ऐसे आनंदी पुरुष के हाथ में दिया गया, जिसने निष्पक्ष रीति से समय का चित्र ही खींच दिया—

रिपोर्ट

"पंचायत का मामला जब तक वीर पुरुषों के हाथ रहा, प्रत्येक समाज का क्रम ठीक-ठीक चलता रहा। मुनासिब था कि बदले हुए ज़माने को देखकर लोग जाति में परिवर्तन करते; पर पुराने कुंदेनातराश लोगों ने लकीर पर फ़क़ीर होना ही मुनासिब समझा। नतीजा यह निकला कि जिस बरफ़ को छूकर लोग हाथ धोते थे, वह श्राद्ध में ब्राह्मणों को मिलकर पितरों को स्वर्ग या नरक में पहुँचाने लगी। भैरवी-चक्र का गुण रखनेवाली सोडावाटर की बोतल का महापंचामृत ब्राह्मण और क्षत्रियों को पवित्र करने लगा। डॉक्टर के बधने का पानी लंबे सींग के समान तिलकधारी आचारी

तक के खाने योग्य हो गया। कहिए अब बाक़ी क्या रहा ? यही नहीं, एक ने रेल पर बैठकर मुसलमान के एकासन पर भोजन किया, तो दूसरे ने बोतल-वासिनी को पेट के अर्पण किया; तीसरे ने यहाँ तक उन्नति की कि साक्षात् स्वर्ग-सुख का अनुभव करानेवाले होटलरूपी उच्छिष्ट अनुष्ठान का मार्ग पकड़ा।

इन सब बातों को पंचायत ने लाचार होकर स्वीकार किया। पंचों की फिस-फिसी कार्यवाही की ख़बर फैली, और समाज में विप्लव या ग़दर मच गया। बाल्य-विवाह की कार्यवाही बुरी तरह से फैल ही रही थी, जिसकी कृपा से घर-घर मियाँ-बीबी में कर्कशाकांड हो रहा था। बुद्धि का अजीर्ण हर तरफ़ फैला था। सपिंडा कन्या से विवाह जारी होकर धर्म-कर्म सबको तिलांजलि मिल गई। इस प्रकार के मेल से बुद्धिहीन वेश्या की उपासक, निर्जीव, साहसहीन संतान उत्पन्न हो गई, और पंचायत को सदा के लिये क़ब्रस्तान का निवास मिला।

अब पंचायत हो गई लड़कों का खेल। "पंच कहें बिल्ली तो पंच बिल्ली।" पंचायत के नियम जिन उसूल या सिद्धांतों पर क़ायम हैं, वे ये हैं—एक यह कि "अंधा बाटे स्योड़ियाँ फिर-फिर अपने को दे।" दूसरा यह कि "चारों कोने कीचड़ में भरे हैं, किसी को बुरा न कहो।" तीसरा यह कि "ग़ैराँ नसीहत ख़ुदरा फ़ज़ीहत।" या "परोपदेशे पाण्डित्यं।" इसी के अनुसार पंचायत के वादी-प्रतिवादियों ने भी यह नियम रक्खा है—"पंचों की राय सिर पर, पतनाला यहीं बहेगा।" इस क़ानून पर चलनेवालों की सभा, समाज या सोसाइटी कितने दिन की आयु रख सकती है, इसका हिसाब लगाना कुछ कठिन नहीं। अतएव पंचायत को सर्वदा के लिये गया समझना चाहिए, और उसके नाम का यह शोक-काव्य पढ़कर ही संतोष मानना उचित है।"

शोक-काव्य या मर्सिया

एक दिन भारत में घर-घर पंचायत देवी थापी थी ;
उन्नति धर्म-कर्म में सब विधि पूर्ण रूप से व्यापी थी।
ऐक्य परस्पर की सहायता से सब लोगों ने पाई ;
परमानंद-लता, जिससे नित यहाँ रही सुखमा छाई।
जाति-भार दे बूढ़ों पर, सब उनकी मति पर चलते थे ;
दुख-दारिद्र-विहीन मौज से अरिगन को नित दलते थे।
राम पिता की परम आज्ञा मान चले, वनवास लहे ;
पांडव मान बड़ों का कहना निर्जन वन में जाय रहे।
थी समाज पर पूज्य बुद्धि जिनकी, वह पुजते सदा रहे ;
मान्य प्रतिष्ठित-पद-धारी हो कीर्तिमान पद नित्य गहे।
उन्हीं कीर्तिमानों के वंशज कलह-फूट में पड़े यहाँ ;
ढुलके उन्नति-शिखर दिव्य से गिरे भूमि पर जहाँ-तहाँ।
पंचायत का किया नाश, वर्ते मनमानी करते हैं ;
जान-बूझकर अवनति के गड्ढे में जाकर गिरते हैं।

इति पंचपुराणे प्रथमस्कंधे एकादशोऽध्यायः

द्वादश अध्याय

भूल-महत्त्व

पंडित चुक्कंदर मिश्र की लेखनी और कैंची, दोनों सहोदरा-सी जान पड़ती हैं। इनको सिवा काटने के और बात से सरोकार नहीं। कहते हैं, चुक्कंदरजी बाल्यावस्था में दाँत काटने के बड़े अभ्यासी थे। विद्यार्थी-अवस्था में यह पुस्तकों को काटते रहे, और अब बड़े-बड़े ग्रंथकारों को काटने का काम करते हैं। इनकी इस कटही प्रकृति से लोग इनसे बोलना कम पसंद करते हैं। किंतु पंडितजी इसमें अपनी नामवरी की डिग्री का पारा बिलकुल थर्मामीटर की खोपड़ी

की ख़बर लानेवाला समझते हैं, और हर बात में अब 'कटिंग-मेशीन' के सगे भाई हो जाने की सूचना देने लगे हैं। चुक़ंदरजी महाराज कई एक साथियों को लिए हुए चंपूजी के स्थान पर पहुँचे। उस समय चंपूजी अपनी आनंद-भरी प्रकृति के अनुसार बैठे हुए लोगों को कुछ उपदेश दे रहे थे। मित्र-गोष्ठी सहित चुक़ंदरजी भी वहाँ बैठकर उपदेश सुनने लगे। चंपूजी बोले—"बुराई बुरे में नहीं, बल्कि बुरा कहनेवाले में रहती है। जो हर बात में सबको बुरा कहता है, उसकी हर बात में बुराई आ जाती है। तुम कहोगे, बुराई एक 'आइडेंटिटी' अर्थात् स्थित वस्तु है। वह उसी में रहती है, जो बुरा है। यह भूल है। जिसको तुम बुरा मान रहे हो, वह वास्तव में बुरा नहीं है। जिसको जो बुरा नहीं जानता, उसको रखने पर वह दोषी नहीं हो सकता। देखिए, बालक नंगे घूमते हैं। उनमें नंगेपन की बुराई नहीं आती।" इतना कहकर चंपूजी हँसने लगे, और फिर कहने लगे—

"दहन पर हैं उनके गुमाँ कैसे-कैसे ;
कलाम आते हैं दरमियाँ कैसे-कैसे।
न ग़ोरे-सिकंदर, न है क़ब्रे-दारा ;
मिटे नामियों के निशाँ कैसे-कैसे।"

चंपूजी एक प्रेमी पुरुष हैं, और वह प्रायः इस प्रकार के पद पढ़कर भक्ति में गद्गद हो उठते हैं। इसके बाद बोले—

"कठोर और तुम्हारा-सा तो बस, कम देखा ;
विनय में बीत रही, प्रेम का रस कम देखा।
प्रेम की कौन कहे, चक्षुपात तक इधर न हुआ ;
दया के सिंधु में हा ! हंत ! तरस कम देखा।
जी में आती है, कृपण तुमको सरासर कह दें ;
बात बनती नहीं कंजूस का यश कम देखा।"

यह कहकर बाबाजी महाराज प्रेमाश्रु-पूरित नेत्रों को बंद करके "वाह, क्या छटा है !" कहकर स्थिर हुए। चुक़ंदर मिश्र की कटही प्रकृति ने ज़ोर मारा, और वह बोला—"बाबाजी, आपके पद्य में तुकांत नहीं बनता। एक पद में 'रस' और दूसरे में 'यश' आया है।"

बाबाजी ने उत्तर दिया—"आप इसको तुकांत-हीन समझ लीजिए।"

चुक़ंदरजी ने कहा—"भूल तो है।"

बाबाजी ने उत्तर दिया—"प्रथम तो यह भूल ही नहीं; दूसरे विवाद-समाप्ति के अभिप्राय से जब उसका तुकांत-हीनत्व स्वीकार कर लिया गया, तब तर्क कहाँ हो सकता है ?"

चंपूजी की इस बात को भी चुक़ंदर मिश्र ने भूल ही समझा, और कहा—"जो भूल है, वह शुद्ध कैसे हो सकती है ?"

इस पर चंपूजी ने उनको बताया कि वास्तव में भूल कोई चीज़ नहीं है। जब भूलकर जीव इस शरीर की 'शरारत' में फँसा है, तो प्रत्येक बात भूल बताई जा सकती है।

चुक़ंदर को अपनी विद्या की पूँजी का अभिमान आ गया, और वह बोला—"मैंने बेकन की फ़िलासफ़ी महाराष्ट्री अनुवाद से मिला-मिलाकर ख़ूब पढ़ी है। कहीं पर भूल नहीं पाई।"

चंपूजी ने कहा—"यह आपकी तारीफ़ है कि आपको भूल नहीं मिली। यदि समालोचकी चक्री का चश्मा लगाकर देखते, तो सब भूल-ही-भूल दिखती।"

यहाँ पर चुक़ंदर मिश्र ने "रीडिंग मेक्स ए फ़ुल मैन" (Reading makes a full man) से आरंभ करके एक वाक्य पढ़ा, और कहा—"देखिए, क्या अखंडनीय अर्थ है।"

यहाँ पर बाबाजी ने हँसकर चुक़ंदर की बुद्धि को ठिकाने लाने

की कोशिश से बहस छेड़ी। दोनों की बातचीत यों होने लगी—

बाबा—"आपने बेकन के ग्रंथ पढ़े हैं ?"

चुक़ंदर—"हाँ पढ़े हैं।"

बाबा—"अच्छा, यही जो वाक्य आपने कहा है, उसी में भूल का महत्त्व देखिए।"

चुक़ंदर—"वह कैसे ?"

बाबा—"सुनिए ! आपने जो कहा, उसके पहले वाक्य का अर्थ होता है—पढ़ना मनुष्य को पूर्ण बनाता है।"

चुक़ंदर—"हाँ, ठीक है।"

बाबा—"अब देखिए यह कट गया। 'पढ़ना मनुष्य को पूर्ण बनाता है' इसको ध्यान से समझिए। ख़राब पुस्तकों का पढ़ना मनुष्य को पूर्ण नहीं बनाता। तत्त्ववेत्ता ने जो कहा, वह 'यूनीवरसल' अर्थात् सर्वव्यापक अर्थ में कहा है, और यहाँ मुख्य अर्थ में वही नहीं लगा, सुतरां भूल है। उसको यह कहना चाहिए था कि अच्छे ग्रंथों का पढ़ना मनुष्य को पूर्ण बनाता है।"

चुक़ंदर—"तो क्या बेकन भूल करता था।"

बाबा—"हम किसी को बुरा नहीं कहते; पर मतलब यह कि यदि भूल की दृष्टि से देखो, तो स्थल-स्थल पर भूल बताई जा सकती है।"

चुक़ंदर—"कैसे ?"

बाबा—"ऐसे कि दुनिया का वजूद भूल ही पर स्थित है। इस की कोई बात भूल से ख़ाली नहीं है। यह शरीर की 'शरारत' है।"

चंपूजी की इस वार्ता को औरों ने चाहे जो कुछ समझा हो, पर चुक़ंदरजी ने बिलकुल अपने विरुद्ध समझा, और उनको जवाब देने का भूत सवार हो गया। वह अपनी चिरपरिचित बुद्धि की

पूँजी का दिवाला देखकर बोल उठा—"शरीर की शरारत, यह तो मसख़रापन है।"

चंपूजी ने कहा—"जब किसी ने 'मसख़रापन' कहा, और उत्तर-प्रत्युत्तर की बात में कहा, तो समझना चाहिए कि वह हारा। यह बहस की हार की पहचान है, शिकस्त का सर्टीफ़िकेट है। 'मसख़रापन' कहकर भगोड़े बनना चाहते हैं। यह हास्य-रस की बड़ी बेढब पकड़ है। यह बहस के दंगल की पटकान है। इस 'मसख़रा' साहित्य-शास्त्र का 'हास्य' स्थायी रस है। यदि हास्य 'मसख़रापन' है, तो बड़े-बड़े नामी लिक्खाड़ मसख़रे हैं, और यह माना जाय, तो मसख़रापन एक गुण हो गया।"

इतना कहकर चंपूजी बोले—"शेक्सपियर का मसख़रापन देख। ओथेलो में एक स्त्री पूछती है—Where does the general lie? इसका उत्तर पहरेवाला देता है—He lies no where *। उसी महाकवि की "मिड समर नाइट्स ड्रीम" मसख़रेपन से भरी है। भवभूति का मसख़रापन देख, "हुं वासिट्ठो वग्गो वा वूको वा", जिसका अर्थ है—क्या यह वसिष्ठ है, यह तो बाघ या भेड़िया है। लैंब का मसख़रापन देखना चाहता है, तो "लैंबूस एसेंस ऑफ़ इलिया" को पढ़, पेट में चूहे कूदने लगेंगे। महाकवि कालिदास भी मसख़रेपन से भरा हुआ है। "काव्येषु नाटकं श्रेष्ठं नाटकेषु शकुन्तला।" पढ़ने का सौभाग्य हुआ है, तो देखा होगा। वही अंक रोचक है, जिसमें हास्य का प्रकाश है। डिकेंस, जॉन फ़िक्ज़ट, स्कॉट, सब इसी मसख़रेपन के अंतर्गत हैं!"

---

* अँगरेज़ी में 'लाइज़' के दो अर्थ हैं—एक झूठ बोलना, दूसरा पड़ा रहना। स्त्री पूछती है—जनरल कहाँ सोता है? वह उत्तर देता है—वह कभी झूठ नहीं बोलता।

यह सुनकर चुकंदर मिश्रजी के होश हवाई का अनुकरण करने लगे, और उनकी कटही प्रकृति कुछ कुंठित-सी हो गई।

वह चंपूजी से पूछने लगे—"क्या मसख़रापन और हास्य एक ही बात है?"

बाबाजी ने उत्तर दिया—"हास्य एक स्थायी रस है। जब वह लेखकों की क़लम के पेच से किसी को हास्य का पात्र अर्थात् 'आबजेक्ट ऑफ़ रिडीक्यूल' बनाता है, तब आनंददायक होता है। मसख़रापन एक ऐसे मनुष्य का स्वभाव है, जिसकी मूर्खता पर हँसी आती है। हास्य-रस में दूसरों की मूर्खता और मसख़रेपन में मसख़रे की मूर्खता होती है। जिसने हास्य का आक्षेप करके पढ़नेवालों को प्रसन्न कर दिया, वह एक काम कर गया, और उसको मसख़रापन कहनेवाला अपनी बुद्धि की कमज़ोरी दिखाकर भागा चाहता है।"

इसके बाद बाबाजी ने बड़े-बड़े फ़िलासफ़ी के ग्रंथों में हास्य का प्रयोग दिखाने की प्रतिज्ञा करके अपनी कचहरी को बर्ख़ास्त किया।

इति पंचपुराणे प्रथमस्कंधे द्वादशोऽध्यायः

त्रयोदश अध्याय

अक्खड़ पंडित

लोग कहते हैं, अमेरिकावाले बंदरों को तालीम देकर आदमी के समान काम करने का अभ्यास डलाने का यत्न कर रहे हैं। पर हमारे देश में क़िस्मत के खेल देखिए कि पढ़े-लिखे बंदर के चचाज़ात होने का सामान दिखाने लगे हैं। प्राचीन काल के विद्वान् और आजकल के पंडित बिलकुल गंगा-मदार हो रहे हैं। जो उस समय

के गुण थे, वे अब अवगुणों में गिने जाते हैं। किसी समय शांति विद्वानों का चिह्न थी। अब शांतिदेवी के बदले जो जितना चलता-पुर्ज़ा है, वह उतना ही पंडितराज है। सहिष्णुता किसी समय बड़ा उत्कृष्ट गुण थी, अब उसकी गद्दी घमंड को मिली है।

हमारे ग्राम के निकट एक पंडितजी महाराज रहते हैं। यह कृपा-निधान आजकल पूँछदार पंडितों की पल्टन के नमूने हैं। पहले जब इनके पिता जीवित थे, तब वह शैतान की उपाधि पाकर बस्ती-भर की नाक में दम किया करते थे। इनके पिता बेचारे जन्म-भर रेलवे की झंडी दिखा-दिखाकर पेट पालते रहे, और उनके बाद पंडित की गद्दी पर हमारी कथा के नायक छोटे पंडित विराजमान हुए। यह शैतान पंडित झंडी दिखाने में भी बड़े मन-मौजी थे। झंडी दिखाने के समय रेल के स्थापक लोगों की समालोचना करके अपनी तेज़ तबियत की झलक दिखाया करते थे। यह कहते थे कि लाल रंग शहाना रंग है, उसको भय की सूचना में दिखाना एक बड़ी भारी बेवकूफ़ी की पताका फहराना है। इसी शुमार में एक दिन प्लेटफ़ार्म पर से ज्यों डाकगाड़ी छूटी कि आपने अपना मुबारिक झंडा दिखाकर दूसरी गाड़ी को भी उसी लाइन पर बुला लिया, और मालगाड़ी की टक्कर लड़ाकर मेल और माल की कुश्ती करा दी।

इस दंगल का फल यह हुआ कि कितने ही निरपराध ग़रीबों की खोपड़ियाँ टूटीं, कितनों ही के भयंकर चोटें लगीं, और कई ग़रीबों के प्राणों पर बीती। पर युवा पंडित ने इसका ज़रा विचार नहीं किया, और कहने लगा—"कुछ डर नहीं, यही तो विज्ञान की उन्नति का लक्षण है। जब तक लोग इस प्रकार नहीं मरेंगे, तब तक देश की तरक़्क़ी न होगी।"

पंडित की इस फ़िलासफ़ी का कुछ असर न पड़ा, और पुलीस

की पल्टन के नायक ने आकर हथकड़ियाँ डालकर पंडितराज को पुलीस के हवाले किया। हथकड़ियाँ पहने हुए महाराज को मार्ग में देखकर एक संबंधी ने उनके हाल पर शोक प्रकट किया। पर पंडितजी ने उसको कमज़ोर तबियत का आदमी समझा, और कहा—"कुछ परवा नहीं, न्यूटन और गेलीलियो ने जब विज्ञान की खोज की थी, तब उनको भी यही कष्ट भोगने पड़े थे। अब हमको क्यों न हो?"

इस बातचीत से पंडित की तबियत का कुछ पता लगता है। मिस्टर ह्यूम ने अपनी एक पुस्तक में लिखा है कि अभिमान की उत्पत्ति संतोष से होती है, अर्थात् जब आदमी यह समझने लगता है कि मेरे पास एक पदार्थ आवश्यकता से अधिक है, तब उसको उस पदार्थ का अभिमान हो जाता है। इस युवा के चित्त में अपनी वैज्ञानिक विचार-शक्ति की अधिकता का बोध समा गया, और वह इस प्रकार की बातें करने लगा। अभिमानी पुरुष की बुद्धि वास्तविक पदार्थ पर ध्यान न देकर अपनी अधिकता के नशे में मस्त रहती है, और यही कारण है कि घमंडी लोगों पर उपदेश "प्रकोपाय न शान्तये" की कहावत को ठीक ठहराते हैं।

अब पंडितराज का चालान किया गया, और आप अकड़ते हुए थाने पर पहुँचे। वहाँ से हवालात के यात्री हुए, और पेशी के दिन एक बड़ी भीड़ के सामने कचहरी में इनकी प्रदर्शिनी बनाई गई। नगर-भर में भूदेवजी की इन बातों की धूम थी। बहुत कम आदमी इनके थोथे घमंड को समझते थे। कुछ इनको पागल और ख़फ़क़ानी जानते थे; पर मूर्खों और साधारण में इनकी डींग की बड़ी पुकार पड़ी, और भारतवर्ष की सीधी-सादी प्रजा महाराज को साक्षात् बुद्धि का अवतार समझकर दर्शनों को उठ धाई! इस भीड़ का एक कारण था। मूर्खों में किसी ने यह किंवदंती फैला दी थी कि एक ब्राह्मण

के लड़के ने मंत्र के प्रभाव से दो खड़ी हुई गाड़ियों को लड़ाकर दंगल करा दिया।

महाराज का चंद्रानन देखने को हज़ारों लोग एकत्र हुए, और उन सबके सामने आपने एक बड़ा कड़ेफाड़ लेक्चर दे डाला। इनके कथन का तात्पर्य यही था कि तरक़्क़ी बग़ैर हथकड़ी पहने नहीं हो सकती। यह दास्तान हो ही रहा था कि कचहरी में महाराज की पुकार हुई, और बड़ी भीड़ के साथ आप न्यायाधीश के सामने पहुँचे। वहाँ पर दावा पढ़ा गया, और इनसे तथा वकील से यह बातचीत हुई—

प्रश्न—"क्या आपने गाड़ी लड़ाई?"

उत्तर—"लड़ाई को हम गाड़ नहीं सकते।"

प्रश्न—"क्या आपने गाड़ियों से टक्कर लड़ाई?"

उत्तर—"हमारी खोपड़ी आपने क्या मुँडने की समझ ली है? भला हम गाड़ियों से टक्कर क्यों मारने जाते?"

प्रश्न—"आपने मालगाड़ी की लाइन पर दूसरी गाड़ी को क्यों बुलाया?"

उत्तर—"निर्जीव पदार्थ का बुलाना क्योंकर हो सकता है?"

प्रश्न—"ठीक-ठीक जवाब दो।"

उत्तर—"आप मेरे कुछ नौकर नहीं हैं, जो मैं आपको जवाब दूँ।"

प्रश्न—"देखो, तुम इस चाल से बच नहीं सकते।"

उत्तर—"मैं एक क़दम नहीं चलता; चाल कैसी?"

महाराज की इस बातचीत पर न्यायाधीश अँगरेज़ बहादुर बिगड़कर बोले—"चुप रहो सूअर!" अब क्या था, महाराज ने मौन-व्रत धारण कर लिया। जब इनसे कुछ पूछा जाता, यह मुँह पर तर्जनी रखकर वकील से इशारा करते कि चुप रहो, और अदालत की तरफ़ उँगली उठाकर भय दिखाते। इसी प्रकार बहुत देर हो

गईं; पर पंडितवर का मौन नहीं खुला। वकील और कोर्ट-इंस्पेक्टर की नाक में दम आ गया। साहब बहादुर ने कहा—"हम टुमको जेलखाने भेजेगा।" बस, इतना सुनकर यह अदालत से चले। "बस, जेलखाना हो गया"—यह वाक्य कहकर बड़े प्रसन्न हुए। चपरासी इनको फिर पकड़ लाए। महाराज की इस मुक़दमेबाज़ी से कचहरी-भर में गुल मच गया। लोग हँसी के मारे लोटने लगे। अब इनसे साहब से यह बातचीत हुई—

सा०—"टुम कुछ पागल है?"

पं०—"दुनिया-भर पागल है।"

सा०—"टुम?"

पं०—"हम नहीं है।"

सा०—"टुमने बड़ा लोक्सान कीया।"

पं०—"आपको बोलना नहीं आता। तुमको टुम, नुक़्सान को लोक्सान, किया को कीया बोलते हो।"

इस तरह पंडित का मुक़दमा कई दिन तक हुआ; पर कुछ निश्चय न हो सका। अंत को पागल समझे जाने के कारण महाराज अदालत से साफ़ बचकर चले आए। साधारण लोगों में यह जनश्रुति फैल गई कि महाराज अपने मंत्र-बल के प्रभाव से बच गए।

ऐसी-ही-ऐसी बातों से कितने ही लोगों ने संसार में ख्याति प्राप्त कर ली है। हमारे पंडितराज की ख्याति के प्रथम दृश्य के साथ ही आज की कथा की समाप्ति का अवसर है। अब इनकी जीवनी का शेष भाग किसी आगामी कथा का सब्जेक्ट होगा।

इति पंचपुराणे प्रथमस्कंधे त्रयोदशोऽध्यायः

चतुर्दश अध्याय

वर्षा की वहार

इस सुहावनी वर्षा-ऋतु में जब सुरेंद्र-सेना के वीर बादल अपने दल-समेत चारों ओर से संपूर्ण दिशाओं को श्यामायमान करते हुए, घोर गर्जन से बड़ी तोपों की-सी ध्वनि सुनाते हुए, विलक्षण झमक और चमक से अग्न्यस्त्र के बराबर चंचल चंचला द्वारा नेत्र झपकाते हुए, पूर्व-वायु के झकोरों से वियोगिनी अबलाओं के हृदय को समुद्र की तरंगों के समान बलात् बनाते हुए आते हैं, वह समय अलौकिक आनंद देनेवाला होता है । जब प्रचंड ग्रीष्म से संतप्त संसार के प्राणियों पर अनुग्रह कर भगवान् पुरंदर अपने विराट् जलधरों द्वारा संपूर्ण महीतल को शीतल कर देते हैं, वह काल सुकाल-प्रचारक जगदीश की वंदना करने का है। इसी आशय से प्राचीन आर्य-कुल-मुकुट महात्माओं ने श्रावण के महीने में शिवार्चन और हिंडोलोत्सव के समारोह स्थापन किए हैं । किंतु समय बदल गया है। आजकल के नवीन युवाओं के रसिक स्वभाव में जड़ता-देवी की उपासना के प्रभाव से वास्तविक प्रेम के भाव का बिलकुल अभाव हो गया है। अतएव हिंदू-समाज में शिवार्चन और कृष्णा-र्चन के स्थान में अब कामदेवार्चन आरंभ हुआ है। इस पूजा के परम भक्तों के उत्सव का वृत्तांत यह है—

शशीमोहन शर्मा नाम के हमारे एक मुलाक़ाती हैं । यह कलकत्ता-विश्वविद्यालय के पुराने खूसट (ग्रेजुएट) हैं । लघु कौमुदी और मैक्समूलर की ग्रामर पढ़कर आपने संस्कृत-साहित्य की खूब चटनी पीसी है । षड्दर्शन, महाकाव्य और दो-चार नाटकों को पढ़कर अब यह संस्कृत और अँगरेज़ी के 'डबुल' पंडित हो रहे हैं। इनमें स्वतंत्र विचार की शक्ति बहुत कम है, और यही कारण है कि 'पस्तहिम्मत' होकर यह बिलकुल तोता-रटंत का नमूना हो

रहे हैं। इनका स्वभाव पुराने ढर्रे के पंडितों का-सा है, और प्रायः इनका समय पंडितों से कलह करने या पुरानी फक्किकाओं की धूल फाँकने में व्यतीत होता है। इनको विद्या पढ़ने की शांति ने तनिक भी कृतार्थ नहीं किया, और भाँग-बूटी, अमीरों की ठकुरसुहाती, द्रव्य के लोभ और स्वार्थ-परता आदि ने अपना परम सहायक बना रक्खा है।

एक दिन पानी की फुहारें पड़ रही थीं। ठंडी हवा चल रही थी। वर्षा का मनोहर दृश्य उपस्थित था। ऐसे समय मार्ग में हमसे इनसे भेंट हुई। यह अपनी मित्र-मंडली में 'ज्वाइन' होने जा रहे थे। "साथ चलिए मित्र व्यासजी, आपको आज बड़ा आनंद दिखावें" कहकर आप हमको भी अपने साथ घसीट ले चले। थोड़ी दूर चलकर एक इक्का किराए का किया गया, और हम दोनों उस पर लदे। पर घोड़ा भी उसी चाल का मिला, जैसा किसी कवि ने कहा है— "सूरज के रथ लाग्यो रह्यो, याके आगे भयो कईवार कन्हैया।" हमारे साथी 'आनंद' की लालसा से शीघ्रता करने के जोश में आकर खुद इक्का हाँकने लगे। पर वह घोड़ा क्या था साक्षात् ज़िद की मूर्ति था। क़दम-क़दम पर ठहरता था। पंडित शशीमोहन कोड़ा हाथ में लेकर "टिक-टिक" करने पर उतारू हुए, और टट्टू ने दुलत्तियाँ चलाकर पंडितजी को पिछली सलामें करना शुरू किया। वह इक्के को उलटकर प्रलय के समान दृश्य दिखाने को उद्यत हुआ। तब तो पंडित महाशय 'पुच-पुच' करके फिर 'टिक-टिक' का मंत्र जपने लगे। हम 'राम-राम' कहने लगे। इसी प्रकार घंटा-भर के "टिक-टिक" और "राम-नाम" मंत्रों के अनुष्ठान के बाद सवारी अपने इष्ट स्थान पर पहुँची, और म्युनिसिपलटी की कृपा से हर तरफ़ सड़क की कीचड़ के अभिषेक से कृतार्थ होकर हम दोनों ने काल की वागुरा से मुक्ति पाई।

हम लोग एक बाग़ के फाटक पर उतरे। पंडित शशीमोहन लंबे क़दम बढ़ाकर आगे-आगे उचकते चलने लगे। भीतर जाकर देखा, बाग़ बहुत सोफ़ियाना था; पर हमारे पंडितजी को कहाँ ताब कि इस समय नैसर्गिक सुंदरता देखने को ठहरें। जब कभी हम किसी पुष्प की विचित्र बनावट देखने के लिये ठहर जाते, तभी आप "आइए, आइए" कहकर ध्यान के शत्रु बन जाते। ख़ैर, हम भी इनके पीछे मालगाड़ी-से ढिकलते हुए चले गए।

कुछ मिनटों के बाद सीधे एक बड़ी कोठी में घुसे। यह मंदिर सब प्रकार के झाड़-फ़ानूसों से सजा हुआ था। सफ़ेद फ़र्श पर रोशनी पड़कर अद्भुत छटा दिखा रही थी। एक ओर नाच के भक्त लोग अपनी पोशाकें डाटे बैठे थे, दूसरी ओर वेश्या के सहचर चिकारा, तबला, मँजीरा, पानदान आदि लिए नृत्य के यज्ञ की सामग्री सजा रहे थे। ज्यों ही हम लोग पहुँचे, पंडितजी को देखकर लोग "आ-हा हा, ख़ूब आए!" कहकर मुँह बाने लगे। हमको शशीमोहन-जी ने "गुणी और आनंदी" बनाकर अपनी मित्र-मंडली के हवाले किया। हमारे साथी का दिल्लगी का लेन-देन प्रायः सभी लोगों से निकला, और इनके पहुँचते ही व्यंग्य और दिल्लगी के हुंडी-पुर्ज़े चारों ओर से भुगतने लगे। एक ने कहा—"शशीमोहन आज अपने 'बाबा' को साथ लेकर आए हैं।" दूसरा बोला—"अब पंडित अपना 'आश्रम' बदलेंगे।" तीसरा कह उठा—"अँगरेज़ी पढ़ने से इस 'वृत्ति' में फ़ायदा रहेग ।" चौथा खुली कह चला—"जोरू के कलेस से बैराग लिया चाहता है।" इसी प्रकार लोगों ने अनेक बातें कहीं; पर पंडित ने अकड़कर उत्तर दिया—"तुम्हारे पेट भरने के लिये सब कुछ करना पड़ेगा।" पंडित की हाज़िर-जबाबी अच्छी रही, और अब काम-चेरी ने अपना सुर छेड़ा। "सब तज हर भज" के सिद्धांत के अनुयायी बनकर सब

लोग वेश्या को टकटकी बाँधकर देखने लगे, और हम उन सबको देखने लगे।

एक बाबू साहब नुकीली टोपी चढ़ाए अपने आपे से ऐसे बाहर थे कि जान पड़ता था, बिलकुल पत्थर के होकर भविष्य संतान के लिये उपदेश का उदाहरण बनेंगे। उनके पास एक नंगे सिरवाले नायिका की तान के समझने में इस प्रकार कान लगाए थे, मानो कान के रास्ते उनका दम रेखा-गणित की सीधी रेखा का अनुकरण करके निकला चाहता है। साथ में एक काने राजा अपनी एक आँख झपकाते हुए इस शान से बैठे थे, मानो नाम के आदि में ककार होने से कामदेव की सुसरालवालों में यही एक बचे थे। एक कोने में तोंद की टेबुल के सहारे एक मटकामल की 'अदा' देखकर यह कहना पड़ता था कि यह वेश्या से अपनी तोंद फुड़वाने की मनोकामना से ध्यानावस्थित हो रहे हैं।

इसी प्रकार अनुमानतः दो दर्जन नवयुवक मजलिस में डटे अपने जन्म को कृतार्थ कर रहे थे। इसके बाद जब तांडव और लास्य पूरा हुआ, तब यह ग़ज़ल गाई गई—

मैं तो करता हूँ प्यार की बातें।
आप करते हैं ख़ार की बातें।
कौन कंबख़्त तुमसे मिलता भी;
क्या करूँ दिल की हार की बातें।
ज़ुल्फ़ों-पेचों को जो बढ़ाते हैं;
इसमें हैं पेचो-मार की बातें।
साक़िया, क्यों न मै पिऊँ बेख़ौफ़;
ताक पर रख शुमार की बातें।

इस राग ने शराब पीने के 'सिगनेल' का काम किया, और एक-एक करके सब उठकर मदोन्मत्त होकर आ डटे। अब मारे

दुर्गंध के मस्तक फटने की नौबत आ गई। थोड़ी देर के बाद धक्का-धुक्की होने लगी। वेश्या बैठी हुई भाव बता रही थी, इतने में एक साहब "ही-ही" करते उठे, और उसके घुटने पर सिर रखकर लोट गए। दो आदमी उठकर उनको घसीटने लगे। वह बाबू साहब नायिका को चिमट गए। इस पर बड़ी "हा-हा हू-हू" शुरू हो गई, और अँगरेज़ों तथा आइरिश लोगों की फटकेबाज़ी का सामान दिखाई देने लगा। पंडित शशीमोहन शायद हमारे लिहाज़ से इस दंगल में शरीक नहीं हुए। हम उठकर बाहर आए, और कुएँ की जगत पर बैठकर वायु-स्नान से पवित्र होने लगे। कुछ समय के बाद पंडितजी भी हमारे पास आकर बैठे, और "और कुछ गाने" की फ़र्माइश बड़े विनीत भाव से करने लगे। लाचार हमने उनको स्वरचित ये श्लोक गाकर सुनाए—

लोचनैस्त्रिभवतापमोचनैः
हारिणा प्रलयकारिणा त्विषा ;
मीनकेतन अचेतनः कृतो
येन तेन सुकृतीकृतोस्म्यहम् ।
वीतरागमिह रागमण्डली
सद्मनि प्रचुरछद्मनागतम् ;
चारयोषिदनिवारकाद्‌बलात्
शैलिमारचतनीललोहितः ।

यह सुनकर हमारे साथी पंडित अपनी व्याकरण-कर्कश प्रकृति के वशीभूत होकर बोले—"रचना तो अच्छी है, किंतु इसमें व्याकरण की भूल है।" "टिड्ढाणञ् की चटनी चाटकेभ्यो लंठशंठपतिभ्यश्च नमः" कहकर हम भी नौ और दो ग्यारह हुए।

इति पंचपुराणे प्रथमस्कंधे चतुर्दशोऽध्यायः

पंचदश अध्याय

घरेलू ग़दर

यहाँ के एक प्रसिद्ध लाला अँगरेज़ कर्मचारियों के बड़े भक्त थे। यह हर रोज़ प्रातःकाल साहबों को सलाम करने की नित्यक्रिया के बिना भोजन हराम समझते थे। इसमें नाग़ा होने के दिन उन्हें बड़ी चिंता रहती थी। बड़े दिन की संक्रांति को इनके घर का डाली-प्रदान का सामान देखकर लोगों को चकित हो जाना पड़ता था। यह अपने घर के बालकों को चाहे एक फल खुशी से न दें, पर साहबों को आदरपूर्वक, आदाब बजा लाकर, सब सामान अर्पण कर आया करते थे। इस तपस्या का फल भी इनको मिला। यह कमिश्नर, मजिस्ट्रेट बहादुर आदि उपाधियों के अधिकारी बन गए। इनके लड़के ठेकेदार, हाकिम और ख़ज़ांची बने। एक बात और यह हुई कि अदालत में इनका सरासर झूठ बोलना भी सत्य समझा जाने लगा।

शास्त्रीय यज्ञों का फल मानने में आपत्ति हो सकती है, आर्य लोगों का हवा साफ़ करनेवाला म्युनिसिपलटी-हवन संदेहयुक्त हो सकता है; पर यह डाली-यज्ञ और सलाम-अनुष्ठान ख़ाली नहीं जा सकता। यह प्रत्यक्ष फलप्रद है। इसको न करनेवाला अभागी पाप का भागी होकर नानाराव के साथियों में परिगणित किया जाना चाहिए। इस आशय का कोई ग्रंथ किसी महामहोपाध्याय को अवश्य बनाना चाहिए; क्योंकि देवतों की संख्या तैंतीस करोड़ है, और उनमें पाँच करोड़ गोरों का खप जाना गणित-शास्त्र की कोई कठिन समस्या नहीं है।

इस कथा के नायक लाला इस प्रकार के हाकिमार्चन में बड़े पारंगत थे। साहबों के कथन को यह ब्रह्म का वाक्य समझते थे। एक दिन म्युनिसिपलटी के कार्य का विरोध करने के लिये नगर में

बड़ी भारी सभा हुई। किसी साहब ने लाला से कह दिया कि नगर में विद्रोह या ग़दर की आग भड़कने लगी है। उसी क्षण से लाला को ग़दर का भूत सवार हो गया। वह नगर के प्रत्येक व्यक्ति को संदेह से देखने लगे। अपने 'हुज़ूर' के बँगले से आते हुए इन्होंने रास्ते में दो स्त्रियों को लड़ते देखा। उनकी बातचीत इस प्रकार हो रही थी—

एक औरत—"हो हाँ तुमार भतरा हमका सहर-बदर कै देई !"

दूसरी औरत—"वह बिचारा गरीब का करि है, तोर खसम तो लाट साहब का नातिए ठहरा ; वह हमका सहर-बदर करि है।"

एक औरत—"साहबन औ गोरन की औलाद तो तुम ही हौ।"

दूसरी औरत—"ओ भतराकाटी ! रहौ तुहार सब साहेबी निकसि जै है।"

इस बात को सुनकर रायबहादुर लाला के पसीना आ गया। उसने समझा, पूरा ग़दर है ! औरतें साहबों का नाम लेकर सड़क पर लड़ें, इससे बढ़कर और क्या ग़दर हो सकता है ?

आगे बढ़कर एक फ़क़ीर साईं मिला। वह यह कहकर भीख माँग रहा था—

> जिसने इस हाथ से ज़रा न दिया ;
> उसका परलोक में जला न दिया।
> देख, झट मौत आके घेरेगी ;
> यार, पछतायगा, भला न किया।

रायबहादुर लाला ने इस साधु का "मौत आके घेरेगी" कहना बग़ावत का पूरा सामान समझा। अब उसकी समझ इस बात पर पूरे तौर से जम गई कि नगर में ग़दर होने का सब प्रबंध हो गया है। लाचार लाला घर पर पहुँचा, और बग़ावत की ख़बर नगर के उपास्य देवता को देने की तदबीर सोचने लगा। इतने में बाहर

से फल वेचनेवाले की आवाज़ आई—"क्या मीठे संतरे ! ले लो, फिर नहीं मिलेंगे।"

इस बात का अर्थ बहादुर महाजन ने यही लगाया कि नगर में ग़दर फैला है। यदि ऐसा न होता, तो "फिर नहीं मिलेंगे" यह क्यों कहता ? इसने यह भी समझा कि यह अच्छा मौक़ा है। पहले ही से बलवे की ख़बर दे दें, तो और भी नामवरी होगी। स्वार्थ के वशीभूत लाला ने अपने 'हुज़ूर' को लिख भेजा कि शहर में ग़दर की आग भड़क उठी है। इसका प्रबंध होना चाहिए।

दूसरे दिन प्रातःकाल नित्य-नियम के अनुसार लाला अपने इष्ट-देव साहब के दर्शनों को पहुँचा। लाला तथा हुज़ूर की बातचीत यों हुई—

हुज़ूर—"वेल, टुम बलवे का बाट लिखा, सो ठीक ?"

लाला—"जी हाँ, बिलकुल ठीक है।"

हुज़ूर—"कौन-कौन लोग बलवा करना माँगटा ?"

लाला—"शहर के फल बेचनेवाले, मज़दूर, देहाती औरतें, ये सब बलवा करने को तैयार हैं।"

हुज़ूर—"यह बोलो, कौन महाजन बलवा करटा ?"

लाला—"नहीं हुज़ूर, महाजन कोई बलवा नहीं करता।"

यहाँ पर लाला के 'हुज़ूर' ने लाल मुँह बनाया, और डपटकर कहा—"अलबट महाजन बलवा करटा।"

लाला बोला—"हुज़ूर, ऐसा नहीं हो सकता।"

हुज़ूर ने कहा—"नाई करटा ! पुलिस ने टोमारा नाम बलवाई लीखा।"

यह सुनकर लाला के सिर से पैर तक पसीना निकल आया। वह काँपने लगा। उसे मालूम हुआ, ज़मीन से पैर उठे जाते हैं। बहुत गिड़गिड़ाकर लाला ने हाथ जोड़कर फिर कहा—"हुज़ूर, ग़ुलाम का नाम किसी ने झूठ लिख दिया।"

साहब ने डाँटकर कहा—"जूट काबी नहीं लिखा। जाओ, हाम टुमको डेकना नहीं माँगटा।"

कहते हैं, इस डाँट से लाला का पेट पानी हो गया, और उस दिन से वह घर में आकर चारपाई का भक्त बन गया। बलवा और ग़दर तो कुछ भी नहीं हुआ, पर लाला उसी ग़म में परलोक सिधार गया। बहुत दिनों बाद उसके 'हुजूर' को इस बात का अनुभव हुआ कि अक्षर-शत्रु और दौलत के कीड़े महाजनों तथा परकटी उड़ानेवाले 'ख़ुफ़िया' लोगों की बातें और अफ़ीमचियों की गपें, सब एक ही ख़ानदान में उत्पन्न होती हैं।

इति पंचपुराणे प्रथमस्कंधे पंचदशोऽध्यायः

षोडश अध्याय

जानवरों में रिफ़ार्म

बीसवीं शताब्दी के एक नवीन धर्म-प्रचारक नमूदार हुआ चाहते हैं। यह बड़े दिमाग़ के आदमी हैं। इनकी बातों के आगे आर्य-समाज और ब्रह्म-समाज, सबके प्रतिभाहीन हो जाने का भय है। सुनते हैं, थोड़े दिन के बाद लोग अपनी रिफ़ार्म-पार्टी का समारोह एकत्रित करके तरक़्क़ी का भूत घर-घर नचा डालेंगे। इस जमात में भारत-भर के जानवरों की तरफ़ से एक सोशल कानफ़्रेंस का मसला छेड़ा जायगा, और पूरी उम्मेद की जाती है कि कामयाबी क्या, कामयाबी की नानी तक पर हाथ साफ़ किया जायगा; क्योंकि इन दिनों मंतव्य पास करने ही पर सारा दारोमदार है, और यह धर्म-प्रचारक के रिज़ोल्यूशन की उड़ान में तो अपनी सानी आप ही हो रहे हैं।

तमाम जानवरों को निमंत्रण भेज दिया गया है, और सबको सादर लिखा गया है कि वे अपने-अपने प्रतिनिधि या डेलीगेट चुनकर

नियत समय पर भावी समाज को कृतार्थ करें। सभापति का आसन श्रीमान् लंगूर स्वामी को दिया जायगा; क्योंकि जब से डार्विन साहब ने आदमियों को बंदर की औलाद क़ायम कर दिया है, तब से हक्सली, स्पेंसर और मेटीरियलिस्टिक सिद्धांतों के भक्त समाज के पीर-मुर्शद यही स्वामी महाराज हैं। उपसभापति का पद ब्रह्मचारी घोड़ानंद को मिलने की बातचीत है; क्योंकि इनके समान परोपकार में रत रहकर ब्रह्मचर्य-व्रत का पालन और किसी से नहीं हो सकता। इस समाज के महामंत्री मुंशी खच्चरराय साहब इस विचार से तजवीज़ किए जाते हैं कि वह सृष्टि के समय के बाद कर्म के बल से घोड़े की पदवी लिया चाहते हैं।

समाज के मंतव्य देखकर बड़े-बड़े रिफ़ार्मरों के छक्के छूटते हैं, और नाम चाहनेवालों की ज़बान में पानी भर आता है। यदि इस समाज को सफलता हुई, तो इसमें संदेह नहीं कि सृष्टि का क्रम ही बदल जायगा, और जिस प्रकार आर्यसमाज की कृपा से शूद्र लोग आचार्यत्व को पहुँचने का दावा करने लगे हैं, उसी प्रकार जानवर भी कुछ कर दिखावेंगे।

सभापति साहब की स्पीच का मसविदा तैयार हो गया है। उसका कुछ हिस्सा यह है—

"महाशय, पशु लोग अनेक बातों में रिफ़ार्मरों के 'क़िब्लेगाह' होने का दावा कर सकते हैं। जिन बातों को मंतव्य बनाकर सुधारक लोग आज तक ज़बानी जमा-ख़र्च कर रहे हैं, वे पशुओं में कभी की क़ायम हैं। सुनिए, विधवा-विवाह चलाकर पतिहीना अबलाओं की काम-वेदना मेटने की ओर इस देश के बुद्धिमानों का ध्यान आकर्षित हो रहा है। अमेरिकावाले नियत समय तक विवाह का ठेका लगाकर बीबियों को आज़ाद करने की सोच रहे हैं, और पशुओं के उन्नति-प्राप्त समाज में विवाह की प्रथा ही नदारद

है। 'न रहेगा बाँस, न बजेगी बाँसुरी'—न विवाह होगा, न कोई राँड़ ही होगी। इस उच्चतम अवस्था के परमपद पर रिफ़ार्म पार्टी के पहुँचने में अभी देर है; पर जानवर-समाज कभी का पहुँच बैठा है।

"और देखिए। हमारे 'नौ चूल्हे आठ कनौजिए'-वाली कहावत के भक्त अभी तक इतना भी नहीं कर सके कि बाज़ार की नमकीन चीज़ों को छिपाकर खाने की चाल को प्रकट में प्रचलित करते; आर्य-संतति की शुद्ध सभा में अशुद्ध के हाथ का भोजन बनाकर खाने में आनाकानी है; बाबू लोग होटल में 'परदा-सिस्टम' की अधिष्ठात्रियों के समान पत्तल बिछाते हैं; वेश्यादल की उपासना करने-वाले रात के उड़नेवाले पक्षियों की नक़ल करके छिपाकर बोतल का महाप्रसाद पाते हैं; पर परमोन्नतिशाली पशुगण 'एकमेवा-द्वितीयम्' के सिद्धांत पर सबको समान समझकर कबीरदास के इस कथन को सत्य ठहराते हैं—

सबै जाति गोपाल की, यामें अटक कहा;
जाके जी में अटक है, सोई अटक रहा।

"शराब का अर्थ है शर अर्थात् शैतान और आब याने पानी। इस पानी की चाट संसार में चिपटी है। लंबे तिलकधारी महोदयों से लेकर साधारण लोग तक इसके प्रेम में आबद्ध हैं।

"तमाखू की कृपा से घर-घर मांस के धुआँकश बन गए हैं। भंग की उपासना से चौबे महाराजों के पेट दुंदुभी के नातेदार बनने लगे हैं, और 'नमक' की शत्रुता उनकी रग-रग में समाने से अबे-तबे की विद्वत्ता की डॉक्टरी का पद उनको मिलने में कसर नहीं रही। अफ़ीम की उपासना से लोग जीवित मुर्दे बनकर सृष्टि का आनंद लूटने के बहाने तन, मन, धन, सब 'ओपियम-डिपार्टमेंट' के अर्पण कर रहे हैं। गाँजा और चरस का प्रेम लोगों को उस अवस्था

पर लिए जाता है, जहाँ पहुँचकर समझदारों को जड़ और जीव का भेद नहीं दिखाई पड़ता। इसके सिवा कोकेन, धतूरा और पोस्ता, ये तीनों मिलकर शौक़ीनों को अजायबघरों के पिंजड़ों का नमूना बनाए डालते हैं। इन सबको दूर करने के लिये मनुष्य-समाज की रिफ़ार्म-सभाएँ आज तक फटफटा रही हैं। पर जानवर-समाज के आचार्य लोग कुछ ऐसा मंत्र दे गए हैं कि उसके प्रभाव से यह समाज अभी तक मादक वस्तुओं के प्रभाव से बिलकुल अलग है। रिफ़ार्मर कहते हैं, मूर्ति-पूजा हटने से देश में सभ्यता फैलेगी। यह सभ्यता पशु-समाज में तशरीफ़ रखती है। वह चाहते हैं, स्त्री-समाज स्वतंत्र हो। यह बात भी वहाँ मौजूद है। नियोग की प्रथा मनुष्यों में चलाने पर कलेदराज़ी हो रही है; किंतु पशु-समाज में देवर की कौन कहे, सभी से नियोग करना क़ानून से सिद्ध है। सारांश यह कि आजकल के रिफ़ार्मर जिन बातों को चलाया चाहते हैं, वे सब जानवरों में प्रचलित हैं। फिर भी इस उन्नतिशाली समय में पशुगण क्यों रिफ़ार्म से अलग रहें? इसलिये उनमें भी धर्म-प्रचार का उद्योग होना लाज़िमी है।"

इस प्रकार यह बड़ा लंबा-चौड़ा व्याख्यान सुनाकर पशु लोग अपनी कानफ़्रेंस का महोत्सव करनेवाले हैं। यह भी ख़बर है कि घोड़ों की तरफ़ से यह मंतव्य पेश होगा कि उनका गाड़ी और इक्के में जोता जाना बिलकुल ज़ुल्म की बात है। चूहे प्लेग के बारे में अपनी क़ौम का 'क़त्लेआम' करने के विरुद्ध आंदोलन करेंगे। मच्छड़ों की हिमायत में कलकत्ता-म्युनिसिपलिटी पर अपराध लगाया जायगा। बकरों की शिकायत मांस-पार्टी के आर्यों और बलिदान-प्रेमी सनातनधर्मी दल की प्रतिष्ठा के ख़िलाफ़ होगी।

कुत्तों की ओर से यह मंतव्य उपस्थित होगा कि रूपगर्विता

साहब-ललनाएँ उनको गोद में लेती हैं, अतएव अपुत्र धनिकों की गोद का अधिकार उन्हीं को मिलना चाहिए।

एक प्रस्ताव यह भी होनेवाला है कि जब शूद्रों को कर्म के अनुसार यज्ञोपवीत-संस्कार का अधिकार है, तो 'उन्नतिशाली समय में पशुओं को क्यों ख़ाली छोड़ दिया जाय ? इसलिये यह बहुत ज़रूरी है कि पशुओं के गले में कंठी बाँधने की चाल निकाली जाय, और तन-मन-धन अर्पण करने के लिये किसी समाज के पंडित को पशु-गोस्वामी के सिंहासन की प्रतिष्ठा अर्पण की जाय।

इति पंचपुराणे प्रथमस्कंधे षोडशोऽध्यायः

सप्तदश अध्याय

अहंकारावतार

बुरे और अच्छे कर्मों के प्रभाव के अनुसार इस संसार में फल मिलता है ; किंतु रेल के थर्ड क्लास के यात्री बनने का दुर्भाग्य किस पाप से होता है, इसका पता अभी तक कुछ ठीक-ठीक नहीं लगा। अनुमान से इतना अवश्य कहा जा सकता है कि यदि धर्मराज की अदालत में हमारी फ़ौजदारी कचहरियों के समान कोई हवालात या हाजत का नियम होगा, तो उसकी कठिनता हमारी रेलवे कंपनी के प्रबंध से शायद कुछ कम ही निकलेगी। हमारी भाषा में एक कहावत प्रसिद्ध है कि "मलाई-की-मलाई देनी और बाँस-के-बाँस खाने", इसका ठीक अर्थ रेल देवी के पुजारियों पर घटित होता है ; दाम-के-दाम देने पड़ते हैं, और अपमान तथा धक्का-धुक्की जितनी सहन करनी पड़ती है, उसका पूरा वर्णन करना जिह्वा की सामर्थ्य से बाहर है।

रेलवे कंपनी की ओर से एक रेल-धर्म-शास्त्र प्रकाशित होता है। इस शास्त्र में रेल की उपासना के प्रेमियों को प्रसन्न करने के निमित्त

जहाँ बहुत-सी बातों का वर्णन है, वहाँ उस रेल-माहात्म्य में यह भी लिखा जाना चाहिए कि थर्ड क्लास के यात्रियों को टाँग पकड़कर घसीटने के सिवा आराम से सवारी देना बी रेल साहबा की शान के ख़िलाफ़ है, या मेले के समय मालगाड़ी में जीवों को जड़वत् फूस या भूँसे की तरह भरना रेलवे फ़िलासफ़ी से सिद्ध है, अथवा टिकट बेचकर जगह देने में मौनावलंब करना रेल देवी की व्यापार-नीति में दूषित नहीं है। इसके सिवा रेलवे प्लेटफ़ार्म पर सड़ी पूरी कचौड़ी और मिठाई के महाप्रसाद का बिकना और अहंकार तथा लापरवाही के साक्षात् दर्शन होना, इन सब बातों का वर्णन भी होना चाहिए। मालूम होता है, इस प्रकार की सत्य-परंपरा का समय आने में अभी देर है; और जब तक वह समय नहीं आता, तब तक रेलवे-भक्तों के परित्राण के निमित्त रेलवे की कथा कह देना परमावश्यक है।

पाप को धोने के प्रार्थी हिंदूगण अब की माघ में इधर-उधर सभी तीर्थों में एकत्र हुए थे; सुतरां हमारे निकटवर्ती प्रयागराज क्यों ख़ाली रहते! आप तो तीर्थराज ही ठहरे। चारों तरफ़ से लोग पापों का विनाश करने के निमित्त उठ धाए। इसी भीड़ के एक स्थल की घटना इस कथा के एक 'रिपोर्टर' ने यों लिखी है—

"जिस समय हम लोग टिकटघर के पास पहुँचे, वहाँ की भीड़ देखकर जी घबरा गया। छोटी गुमटी के अंदर टिकट बेचनेवाले थे, और बाहर ख़रीदनेवाले, जो चारों तरफ़ से टीड़ीदल के समान घेरे खड़े थे। जिस प्रकार गुड़ के ढेले को देखकर चींटे दौड़ते हैं, शक्कर पर मक्खियाँ पहुँचती हैं, मूर्ख अमीर छोकरों के घर ख़ुशामदी जा डटते हैं, उसी प्रकार तीर्थ-प्रेमी टिकट-याचना में नियुक्त थे। रेल के नौकरों की बोल-चाल और 'नाज़ो अंदाज़' सब मानिनी नायिका के ढंग का हो रहा था। यदि कुछ कसर थी, तो चूनर और लहँगे की।

यात्रियों के हरएक प्रश्न के उत्तर में गर्दन मटकाकर मुँह मोड़ लेना, उनको सहायता के बदले संदेह में डालना और बात-बात में ग्राम-कुक्कुर की तरह झपट दौड़ना तो रेलवे के नौकरों की पुरानी ही चाल है। पर वहाँ कभी-कभी वे ऐसी हालत में पहुँच जाते थे, जिससे उनके आदमी होने में भी कुछ ख़लल या आरज़ा मालूम पड़ता था।

"टिकटघर की विकट भीड़ की कैफ़ियत देख रहे थे कि इतने में एक साहब भी टिकट की याचना के अभिप्राय से आ पहुँचे। आपकी सजधज में आधी अँगरेज़ी और आधी देसी बोली थी। उसमें भी आधी उर्दू आधी हिंदी को देखकर आपकी दुरंगी खिचरी चाल पर सब लोगों का ध्यान आकृष्ट हो गया। जिस तरह "नीम हकीम ख़तरे जान" की श्रेणी के वैद्य फड़फड़ाते हैं, जिस प्रकार बँगला-गुजराती की चोरी करनेवाले लेखक ग़ीट उड़ाते हैं, और जिस प्रकार शिखंडी की श्रेणी के बहादुर अपने मुँह से अपनी करामात अलापते हैं, ठीक उसी ढंग के यह बाबू साहब भी थे। भीड़ देखकर इनको भी अपनी नानी याद आ गई। पहले इन्होंने अपनी बाबूगिरी के सहारे टिकट की खिड़की तक पहुँचना चाहा; पर फल कुछ न हुआ। तब आप झपटकर बुकिंग ऑफ़िस से दरवाज़े में जाकर अँगरेज़ी में टिकट माँगने लगे। आप बोले—"प्लीज़ गिव मी ए टिकट फ़ॉर बनारस"

"टिकट-बाबू भी एक ही बदज़ात था, बोला—"हिंदी बोलिए, हिंदी।" अब ख़िचरी स्वाँग के बाबू ने बहुत सिर पटका; पर उसने इसका हर बात में यही जवाब दिया—"हिंदी बोलिए, हिंदी।" लाचार ग़रीब को हिंदी बोलनी पड़ी, और तब टिकट बाँटनेवाला कहने लगा—"खिड़की के पास आकर टिकट माँगिए।"

"इस प्रकार एक भले आदमी की दुर्दशा देखकर आगे बढ़े, तो

एक देहाती रोता हुआ मिला। उससे रुपया लेकर बाबू ने पैसे ही नहीं फेरे! यह देखकर रेलवे के प्रबंध की तारीफ़ करने का मौक़ा आया भी न था कि दूसरे ने अपना कानपूर का टिकट दिखाया, जो अमौसी के स्टेशन तक ही का था। अब रेलवे कंपनी की इस डकैती प्रथा को छोड़कर उसकी मेले की स्पेशल ट्रेन देखने चले। वाह क्या स्पेशल है! समझा था, नई गाड़ी छूटेगी, पर वहाँ मैली-कुचैली, कोयले से भरी मालगाड़ी के दर्शन हुए। ठीक, हिंदुस्तानियों के लिये यही स्पेशल होनी चाहिए। थोड़ी देर में यात्रियों के झुंड बिना 'पुल्लिंग-स्त्रीलिंग' के विचार के अँधेरी कोठरी में भरे जाने लगे। मालूम हुआ, रेलवे कंपनी भी जड़ जीव के समान जानेवाले किसी 'पंथी' की कंठी धारण किए है, या सब स्त्री-पुरुषों में भाई-बहन का नाता माननेवाली जमात की मेंबर है; नहीं तो इस प्रकार पाशव रीति से मर्द-औरत सब एक ही ख़ाने में क्यों भरती किए जाते? भीड़ की दौड़-धूप में प्यास सभी को लगती है। यात्री "पानी-पानी" कहकर चिल्लाने लगे। पानी-पाँड़े ऐसी बातें सुन लें, तो रेलवे कंपनी की बात में फ़र्क़ आ जाय। वह अपनी नवाबी चाल से रेंगने लगे। इतनी भीड़ में उनकी डोलची क्या हक़ीक़त रखती, आनन-फ़ानन में ख़ाली हो गई। उधर शहीदों या नास्तिकों के पुरखों के समान यात्री "पानी-पानी" करते ही रहे, और इधर रेल महारानी अपनी पटड़ी पर रेंगने लगीं, और अहंकार के अवतार बाबुओं और साहब लोगों की तबियत पर उसका कुछ भी असर नहीं पड़ा। इस प्रकार पाप का बोझ लादे हुए गाड़ी प्रयाग को रवाना हुई, और अपने राम घर की तरफ़ चल पड़े।"

इति पंचपुराणे प्रथमस्कंधे सप्तदशोऽध्यायः

अष्टादश अध्याय

महफ़िल की रिपोर्ट

लाला फूहरचंद की दौलत और बदनामी ये दो सगी बहनें हैं। उनकी बदनामी के साथ रुपया और रुपए के साथ बदनामी बढ़ रही है। यदि यों कहिए कि लाला को बदनामी ने गोद लेकर इतनी दौलत दे दी है, तो कुछ अत्युक्ति नहीं। लाला का विवाह माता का दूध छोड़ने के बाद ही हुआ था, और इनकी बीबी कुछ ऐसी अंदाज़ की तजवीज़ की गई थीं, जिसकी उपमा प्रकृति में तो काहे को मिलने लगी? किंतु पुराने लोग कहते हैं कि यदि कोई भैंस के साथ हिरन की पत्नी मिलावे, या बिल्ली के साथ चूहे की शादी करे, या मोरनी के साथ कबूतर को मिला दे, तो फूहरचंद की जोड़ी की कुछ-कुछ समता हो सकती है। इस विवाह के प्रसाद से ललाइन जब पूरी युवती हो गईं, तब तक फूहरराम को धोती बाँधने की 'तमीज़' ने कृतार्थ नहीं किया था। लाला फूहरचंद जिन दिनों 'फूरे' के नाम से विख्यात थे, और बात-बात में गुद्दबाज़ी के परम पात्र हो रहे थे, उन दिनों श्रीमती किसी की पितामही नहीं, तो माता होने की लियाक़त तो ज़रूर ही रखती थीं। पर लाला निरे बछिया के ताऊ, गोबर-गणेश और खड़ी बोली के बेतुके शायर हो रहे थे। बड़े होने पर फूहरचंद बाप की जायदाद के मालिक हुए, और रुपए का लेन-देन करके "गंगा कसम" और बगड़ेबाज़ी की उपासना से और भी मालदार हो गए। बीबी से इनकी क्योंकर पटी, इसका हाल छोड़कर शादी के महापरसादी स्वरूप जो पौन दर्जन लड़के-लड़कियाँ इनको मिले हैं, उन्हीं का हाल कहना ठीक होगा। संतान की वृद्धि के बदले लाला सबको मार डालने की प्रार्थना भगवान् से कई बार कर चुके हैं। कारण, लड़कों के जन्म के साथ ही लाला

फूहरचंद इस बात की फ़िक्र में थे कि लड़के बड़े होंगे, तो अन्न ज़्यादा खायँगे; पर बड़े होकर तो वे लाला ही को खाने लगे हैं। लाला की संतान का आँवा-का-आँवा ही बिगड़ गया है, और कबूतरबाज़ी, बटेरबाज़ी आदि सब बाज़ियों का सामान वहीं देखने में आता है।

फूहरचंद के लड़के बाप के मरने के वादे पर हुंडियाँ लिखते हैं। क़र्ज़ लेकर रंडी-मुंडी के यज्ञ में जायदाद स्वाहा किए देते हैं। और, इसी बात पर फूहरचंद और उनके सपूतों की ऐसी तू-तू-मैं-मैं, ऐसा युद्ध होता है कि सुननेवाले भौचक्के रह जाते हैं। कभी-कभी तो कोई बेटा बाप को ऐसी-ऐसी खरी सुनाता है कि देखनेवाले को बेटे के बाप होने का भ्रम हो जाता है। अब की होली में फूहरमल का माल बहुत लुटा। एक बेटे ने घर का ज़ेवर चुराया, दूसरे ने अफ़ीम खाने की धौंस देकर पाँच सौ ऐंठे, और तीसरे ने बाप के मरने की दर्शनी हुंडी लिखकर सात सौ जमा किए। यों तो ये भाई परस्पर जूती-जात का लेन-देन नित्य ही रखते हैं; पर अब की होली के अवसर पर सबने मिलकर रंडियों की एक कानफ़्रेंस कर डाली। सभा-मंडप किराए के सामान से सजा गया, और बाबू-मंडल चेहरों पर तेल-पानी चुपड़कर आ डटा। कैफ़ियत देखने ही लायक़ थी। बिना मूछ के छोकरे क्योंकर प्रेमलीला के 'मकतब' में 'सबक़' लेते हैं, इसका महफ़िल में प्रत्यक्ष अनुभव हो रहा था।

ख़ैर, सबके पहले एक बाज़ारू बीबी नाचने खड़ी हुई। बाबू-मंडल गर्दन उठाकर देखने लगा। वारवधू ने लास्य आरंभ किया। केवल बाजे पर नाचने और इशारे से प्रेम भाव प्रदर्शित करने को लास्य कहते हैं। पर लास्य किस चिड़िया का नाम है, इसको किसी ने नहीं समझा। एक बड़े शौक़ीन बाबू से कहा गया—"लास्य की द्रुत गति ठीक नहीं हुई।" आप बोले—"इश्क़बाज़ों की लाश की हमेशा दुर्गति होती है।"

मालूम हुआ, 'लाश' की दुर्गति कराना ही वारवनिता-विला-

सियों का इष्ट-साधन है, और किसी गुणाधिकार ने बाबू लोगों की समझ में जगह नहीं पाई है। इसके बाद गणिका ने कई एक पुरानी ग़ज़लें कहीं। उनमें कुछ पद इस प्रकार थे—

काकुलें यार की देखी हैं जो तनवीर सफ़ेद।
हो गया सकता मुझे बन गई तस्वीर सफ़ेद।
दोनों रुख़सारों पर यह अक्स नहीं मोती का;
गिर्द ख़ुरशेद के यह खींची है तहरीर सफ़ेद।
बोसा लेते, तो लिया, फिर जो थी त्योरी बदली;
हो गया रंग मेरा बायसे तकसीर सफ़ेद।

इस प्रकार कई एक अच्छे शेर सुनने में आए। मगर बाबू-समाज साहित्य और गान, दोनों की गुण-ग्राहकता से ख़ाली निकला। जब गायिका तान लगाती, तब ये पद का अर्थ समझने में बेकली ज़ाहिर करते, और जब कोई पद सुनते, तब अर्थाभाव से मुँह बा देते। उस समय किसी कवि का यह वचन कई बार स्मरण आया—"बात सुने कविराजन की बबुआ मुँह बाय रहे तबला-से।" ख़ैर, कुछ देर तक ये इसी प्रकार बौखलाहट का नमूना दिखलाते रहे, और फिर इनके इष्टदेव भाँड़ों की बारी आई।

भाँड़ों ने आकर अपना घोड़े का मंगलाचरण इस प्रकार किया—

एक भाँड़—

अहा! देखो ज़रा मेरा घोड़ा;
कहीं इसका नहीं मिला जोड़ा।
अगर कभी भूल से लगे जोड़ा;
उसी दम हो सवार पर घोड़ा।

दूसरा भाँड़—

टट्टू जनाब, देखिए लट्टू-सा घूमता;
पाकर रक़म हराम निखट्टू-सा घूमता।

लेता हैं ऐंड़ जब तो न सुनता है किसी की ;
दे मारता सवार को चौखट को चूमता ।

इस प्रकार भाँड़ों ने अपना मंगलाचरण समाप्त करके एक कृपण की अच्छी नक़ल दिखाई, जिसमें सूम की यह होली सुनने लायक़ थी—

देखिए, आज होली लला की ।
पेट काट वसुधा नित जोड़ी
कर-कर अधिक चलाकी ;
मार दिवाला बनेंगे लाला
तोंद लोंद सम ताकी ।
बिना कुछ रोक पलाकी
देखिए, आज होली लला की ॥ १ ॥
देश-अर्थ कौड़ी नहिं खर्चा,
हिंदी कबहुँ न ताकी ;
बाप-सराध करत सत्तू से
दान-कथा अंब काकी ।
रहीं सब कीरति खाकी
देखिए, आज होली लला की ॥ २ ॥
माया पूत लुटावन लागे
घर मा रंडी झाँकी ;
पूत कपूत लगे खुल खेलै
रोवत बनत न बाकी ।
यही गति है कमला की ।
देखिए, आज होली लला की ॥ ३ ॥
आगे नाथ न पीछे पगहा
ऐसे जौन हलाकी ;

उनको ध्यान तान की यह सब
बातें अजब बला की ।
धरोहर यों हीं चला की
देखिए, आज होली लला की ॥ ४ ॥

यह सब नाच-कूद हो रहा था कि महफ़िल के शराबी अस्त-व्यस्त बकने का सामान दिखाने लगे । संभव था कि होली का पूरा दृश्य बन जाता ; पर लाला फूहरचंद लड़कों के इस ख़र्च की ख़बर पाकर रोने लगे, और बिलखते-बिलखते ज़मीन पर हताश होकर गिर पड़े ; हिचकियों के ज़ोर से कंठावरोध होने लगा ।

इस समाचार की तारबर्क़ी के आने से महफ़िल छोड़कर लाला के सपूत माल पाने की लालसा से घर की तरफ़ मित्र-मंडली-सहित उठ दौड़े ।

इति पंचपुराणे प्रथमस्कंधे अष्टादशोऽध्यायः

एकोनविंशति अध्याय

कविता-वागीश

यहाँ से थोड़ी दूर के अंतर पर पंडित कविता-वागीशजी रहते हैं । आपकी कविता-शक्ति सब बेतुकी सृष्टि में विख्यात है । हाल में महाराज की शारदा-उपासना की 'नुमाइशगाह' का मेला था, उस-में दूर-दूर से श्रोतागण उपस्थित थे । दैवयोग से इन महात्मा की 'दरगाह' पर प्रारब्ध-वश जाने का सौभाग्य या दुर्भाग्य प्राप्त हुआ । जाकर क्या देखा कि बहुत-से बड़ी-बड़ी लंबी दाढ़ीवाले भट्ट लोगों का ठट्ट लगा था, सैकड़ों लावारिस छोकरे चिल्ल-पों मचा रहे थे, और यह साक्षात् जान पड़ता था कि प्रजापति की कलियुगी दुनिया का आरंभ यहीं से होनेवाला है । बड़ी हाय-

नृत्य के बाद मीटिंग बैठी, और वागीशजी ने अपनी शायरी का यह नमूना सुनाया—

मर गए कालिदास-से उस्ताद ;
फिर नहीं कुछ रहा था उनके बाद ।
नाम तुलसी बिहारी आदिक का ;
हो गया कुछ जहाँ में धोखे का ।
शायरी के मज़ार पर जाकर ;
सभी रोने लगे थे ढाढ़ें मार ।
तब तो कोविद समाधि से बोले—
"जाओ बेटा, सुनाओ सबको तान ।"
ले तँबूरा चला वहाँ से झट ;
होके वागीश फिर करी खटपट ।
देखिए, काव्य क्या सुनाता हूँ ;
सींपों-सींपों की धुन मचाता हूँ ।

इस कविता से प्रसन्न होकर वागीशजी के नाम पर बड़ी तालियाँ पिटीं । चारों तरफ़ वाह-वाह होने लगी । महाराज की यह भूमिका सबको पसंद आई, और आपने अपना नवीन काव्य इस प्रकार सुनाया—

दुलहिन-विलाप—

दहज लैके बुढ़ऊ मरिगे, औ ठहरौनी लै गई सास ;
अब कुलीन के फंदे परिके जग मा कौन हर्ष की आस ।
पढ़े-लिखे बौरहा बने सब, पंडित नाम लगावैं पाप ;
अहंकार को रूप धरे नित मानहु यह कलियुग के बाप ।
दिन-भर दासी-कर्म करावैं, चकिया रात पिसौनी हेत ;
छन-छन खौंखियाय कै दौरें मुँह में तापर तालो देत ।
हमसों रंडा राँड़ भली, सब कन्या भली, भली पति-हीन ;
हे भगवान, न काहु बनावहु इन कुलीन की नारी दीन ।

गहना बेंचि मलाई चखिगे, कपड़ा बेंचि बने महराज ;
घर की पूँजी सब चरि डारी, तबौ न आई तनिकौ लाज ।

कविता-वागीशजी का यह महाकाव्य समाप्त न होने पाया था कि मंडली के एक सभ्य महोदय खड़े होकर अपनी काव्य-गुण-ग्राहकता यों दिखाने लगे—

"हे सभ्यगण, यह कविता-वागीश बिलकुल खबीस है। विधवा-विलाप की जगह दुलहिन-विलाप करवाता है।"

इस समालोचना पर बड़ी आलोचना होने लगी । वागीश और सभ्य, दोनों कहा-सुनी करने लगे । अंत में कसरत-राय से यह तय पाया कि दोनों महात्माओं का कविता में शास्त्रार्थ हो जाय । काव्य-विशारदों के दंगल में इस प्रकार बहस होने लगी—

कविता-वागीशोवाच—

जो कविता समुझै नहीं वाको है धिक्कार ;
हम सबके उस्ताद हैं करैं सबै फिस्सार ।

सभ्योवाच—

वे नहीं हैं कुछ, जो अपने को बताते हैं बड़े ;
तुमको तो वागीश हैं उपनाम के लाले पड़े ।

वागीशोवाच—

सर्वेषामेव वर्णानां सृष्टिकर्ता हि मां वद ;
एकां लज्जां परित्यज्य त्रैलोक्यविजयी भवेत् ।

सभ्योवाच—

एक भाषा में बातें कीजे ;
पंडिताई की धुन को धर दीजे ।
यह तो पहचान भागने की है ;
और बग़लों के झाँकने की है ।

वागीशोवाच—

हमारी बातों को कौन समझे, सरोत विद्या का बह रहा है ;
हमें अनारी, लपोड़शंखी कहे ज़माना जो कह रहा है।
मगर यँ समझे रहो यहाँ तुम यँ बोखलों की भविष्य महफ़िल ;
हमीं को उस्ताद कह चलेगी, इसी को साहित्य गह रहा है।
हो हिंदीवालों में देववाणी, व बाबुओं में कवित्त-रचना ;
महान पंडित से फ़ारसी हो यही तो वागीश चह रहा है।

सभ्योवाच—

यदि तव ऐसी बुद्धि तव, कविता की कह बात ;
धन्य अहो ! वागीश, तुम विद्या विधि के नात।

इस बातचीत के बाद कविता-वागीश के चेलों ने "जय गुरु की, जय !" कहकर घोर नाद आरंभ कर दिया । दूसरी ओर से जय के विरुद्ध शब्द का प्रयोग हुआ । जान पड़ा, कलियुगी पंडिताई की इति-कर्तव्यता का दृश्य हुआ चाहता है । कुशल यह हुई कि दो-चार सज्जनों ने बीच में पड़कर बीच-बचाव करा दिया। कहा, दूसरी दर्गाह के मेले पर कविता-वागीश और सभ्य महोदय का एक समस्या देकर मुक़ाबला करा दिया जाय। आज की सभा की समाप्ति के साथ ही इस दिन की कथा का अध्याय भी पूरा हुआ ही कहना चाहिए ।

इति पंचपुराणे प्रथमस्कंधे एकोनविंशातितमोऽध्यायः

विंशति अध्याय

पतलून मिश्र

मिस्टर पतलून मिश्र एक होनहार सुधारक हैं। यह अपने कुल में भाँग में तुलसी का पौदा होने की उपमा के योग्य हैं। इनके पूर्व-पुरुषों की समाज में जितनी प्रतिष्ठा थी, उससे इनकी प्रतिष्ठा एक

रखती हैं कि उनका कोई उत्तर नहीं हो सकता। उनकी पहली वहस यह है कि जो लोग भारतीय समाज को पुराने ढंग पर लाया चाहते हैं, वे नेचर या प्रकृतिदेवी के महत्त्व को नहीं समझते। मनुष्य ने वन्य अवस्था से सभ्यता का पद पाया है। सुतरां सभ्यता से गिरकर जो जाति चलती है, उसको वन्य अवस्था तक फिर पहुँचना चाहिए। यही प्रकृति का नियम है। अतएव विधवा-विवाहादि के प्रस्ताव केवल वन्य अवस्था के परम पद पर पहुँचने की एक सीढ़ी हैं। पूरी उन्नति तभी होगी, जब मनुष्य पशुओं के समान स्वतंत्रतापूर्वक समाज में वर्तने लगेंगे। यह कहने की आवश्यकता नहीं कि पतलून मिश्रजी की सब कहावतें कबीर-दासजी की बानियों के समान सुधारक-समाज में मानी जाती हैं। अतएव दिन-पर-दिन इनकी प्रतिष्ठा ज़ोर पकड़ती जाती हैं। किंतु महाराज के घर के आदमी सब पुराने दल के हैं। इस कारण बाहरी प्रतिष्ठा उनको ज्यों-ज्यों ऊँचा करती हैं, घर का विरोध त्यों-त्यों और भी दृढ़ होता जाता है। एक बार मिश्रजी किरानी होने लगे थे, गिर्जाघर की दीक्षा की सामग्री का सब प्रबंध हो चुका था। जब यह ख़बर उनके पिता को लगी, तो वह मुहर्रम का अनुकरण करते हुए मिश्र के गुरु पादड़ी के पास पहुँचे। बड़ी हाय-हूय की लीला के बाद साहब के शिष्य होने की पुण्यतमा शोभा पतलून मिश्र ने त्याग की। उनके पिता इसी शोक में स्वर्ग सिधारे। माता अभी जीवित हैं। अब रात-दिन माता और पुत्र की लड़ाई होती है।

इनकी माता पवित्र ब्राह्मण की पवित्र धर्मपत्नी हैं। रात-दिन भगवत्-भजन में व्यतीत करती हैं। वह भगवान् से पतलून मिश्र को सुबुद्धि होने की प्रार्थना करके हाथ जोड़कर कहती हैं—"हे प्रभो, ऐसा पुत्र किस काम का, जो मरने पर पिंड भी न दे?" पतलून

इंच कम नहीं हुई। यह अब भी विवाह में टट्टू के समान नीलाम किए जाते हैं, और जो इनके दाम ज़्यादा लगाता है, उसके घर वेलगाम के पहुँच जाते हैं। इतिहासों में लिखा है कि किसी समय आफ्रिका में ख़रीदे हुए हवशी विदेशों में गुलाम बनाकर बेचे जाते थे, और उनसे कुली का काम लिया जाता था। हमारे ठहरौनी की ख़रीदारी में बिके हुए कुलीन हवशी कुलीगन के केवल बिकने में तो बराबर हैं, पर और सब विषयों में श्रेष्ठतर हैं। पर सुधारक पत-लून मिश्र इस श्रेष्ठत्व को अच्छा नहीं समझते। उनका कथन है कि जब ठहरौनी के व्यापार में बिका, तो न्यायतः जोरू का गुलाम ही हुआ, और जो अब उस गुलामी को स्वीकार नहीं करता, तो वह समाज से बग़ावत करता है। ऐसे कृतघ्न गुलाम को दंड देना चाहिए। अतएव ताजीरात हिंद की एक दफ़ा यह भी होनी चाहिए कि ठहरौनी में बिका हुआ पुरुष यदि श्रीमती रसोई-घर की अधिष्ठात्री गृहिणी की आज्ञा न मानेगा, तो दंड का भागी होगा।

इसके अतिरिक्त मिश्रजी रोटा-पूरी की लीक-पीटनी लीला को भी एक स्वाँग समझते हैं। इसके विषय में उनके दार्शनिक विचार बड़ी अकाट्य और अखंडनीय युक्तियों से परिवेष्टित हैं। उन-का यह कहना कि स्त्रियों का केवल शूद्रवर्ण है, उनके हाथ की रोटी खाना शूद्र की रसोई जीमना है, सुनकर बड़े-बड़े रोटी-धर्म के उपासक मूक बन जाते हैं, और जब वह वर्तमान ब्राह्मणदल के लइया-चिड़ुए और अन्न की छुई हुई बरफ़ी उड़ाने पर आक्षेप करते हैं, तब हमारे चोटाधारी और जन्म के कट्टर भूदेवों की कट्टरता पर ज़ंग-सा लग जाता है।

महाराज पतलून मिश्र की सुधारक बातें इतनी ही होतीं, तो कुछ कहने की जगह न थी; पर हमारे पंडितराज की बातें वह करामात

रखती हैं कि उनका कोई उत्तर नहीं हो सकता । उनकी पहली वहस यह है कि जो लोग भारतीय समाज को पुराने ढंग पर लाया चाहते हैं, वे नेचर या प्रकृतिदेवी के महत्त्व को नहीं समझते। मनुष्य ने वन्य अवस्था से सभ्यता का पद पाया है । सुतरां सभ्यता से गिरकर जो जाति चलती है, उसको वन्य अवस्था तक फिर पहुँचना चाहिए । यही प्रकृति का नियम है । अतएव विधवा-विवाहादि के प्रस्ताव केवल वन्य अवस्था के परम पद पर पहुँचने की एक सीढ़ी हैं । पूरी उन्नति तभी होगी, जब मनुष्य पशुओं के समान स्वतंत्रतापूर्वक समाज में वर्तने लगेंगे । यह कहने की आवश्यकता नहीं कि पतलून मिश्रजी की सब कहावतें कबीर-दासजी की बानियों के समान सुधारक-समाज में मानी जाती हैं । अतएव दिन-पर-दिन इनकी प्रतिष्ठा ज़ोर पकड़ती जाती हैं । किंतु महाराज के घर के आदमी सब पुराने दल के हैं । इस कारण बाहरी प्रतिष्ठा उनको ज्यों-ज्यों ऊँचा करती हैं, घर का विरोध त्यों-त्यों और भी दृढ़ होता जाता है । एक बार मिश्रजी किरानी होने लगे थे, गिर्जाघर की दीक्षा की सामग्री का सब प्रबंध हो चुका था । जब यह ख़बर उनके पिता को लगी, तो वह मुहर्रम का अनु-करण करते हुए मिश्र के गुरु पादड़ी के पास पहुँचे । बड़ी हाय-तूय की लीला के बाद साहब के शिष्य होने की पुण्यतमा शोभा पतलून मिश्र ने त्याग की । उनके पिता इसी शोक में स्वर्ग सिधारे । माता अभी जीवित हैं । अब रात-दिन माता और पुत्र की लड़ाई होती है ।

इनकी माता पवित्र ब्राह्मण की पवित्र धर्मपत्नी हैं । रात-दिन भगवत्-भजन में व्यतीत करती हैं । वह भगवान् से पतलून मिश्र को सुबुद्धि होने की प्रार्थना करके हाथ जोड़कर कहती हैं—"हे प्रभो, ऐसा पुत्र किस काम का, जो मरने पर पिंड भी न दे ?" पतलून

माता की सब बातों को मूर्खता का चिह्न समझता है। उसने अपने घर की देव-मूर्तियाँ नदी में प्रवाहित कर दीं, श्राद्ध एकदम बंद कर दिया, और सब जातीय उत्सवों को तिलांजलि देकर वह विधवा-विवाह-प्रचारक मंडली का मेंबर हो गया।

पहले वह अक्षता की शादी के पक्ष में था, फिर कमसिन क्षता पर भी कृपा करने लगा, और अब तो विधवा-मात्र को ख़सम करा देने का पूरा पक्षी है। पतलून मिश्र के-जैसा कुलीन ब्राह्मण इस कलिकाल में विधवा-विवाह का सहायक है, इस बात से सुधारक-दल बड़े प्रसन्न हैं। वह उसको स्वर्गीय जीव समझते हैं, और वह स्वर्गीय जीव सब स्त्रियों को सधवा ही रखना चाहता है।

एक दिन एक संबंधी के दामाद का देहांत हुआ। लोग शोक करते हुए वहाँ पहुँचे। पतलून मिश्र ने जाकर अपने दुखिया संबंधी को विधवा-विवाह का उपदेश देना आरंभ किया। संबंधी ने क्रोध में आकर पतलून मिश्र के दो तमाचे ऐसे लगाए कि महाराज की आँखों में पानी आ गया।

इस मार खाने पर मिश्रजी की और भी कीर्ति बढ़ी, और सुधारक-दल में इनकी चपतगाह-मरम्मत का माहात्म्य बन गया। अब क्या था! मिश्रजी को सुधार का भूत सवार हो गया।

एक दिन वह अपनी विधवा-ख़सम-कारिणी-सभा में बैठे थे। मेंबर लोग इनके साहस का गुण-गान कर रहे थे। सभा के मंत्री ने प्रसन्न होकर कहा—"मेंबरगण, आज परम हर्ष का विषय है कि एक ब्राह्मण-रमणी-रत्न ने एक पत्र सभा में पुनर्विवाह के निमित्त भेजा है।" वह पत्र पढ़कर सुनाया गया। उसके सुनते ही पतलून मिश्र के वदन में पसीना आ गया। वह पत्र मिश्रजी की माता ने लिखवाकर भेजा था। उसमें प्रार्थना की थी कि "मेरा पतलून इस समाज का मेंबर है, अतएव मुझ बूढ़ी का भी पुनर्विवाह होना

चाहिए।" सभासद लोग "धन्य-धन्य" कहने लगे। पतलूनजी की पतलून ढीली पड़ गई। वह वहाँ से पाख़ाने का बहाना करके भागे, और ऐसे भागे कि फिर सभा में कभी उनके दर्शन नहीं हुए।

पतलून मिश्र का यह भगोड़ापन इस बात की साक्षी है कि विधवा का पुत्र बनने की परम पदवी को अभी सुधारक भी बुरा समझते हैं।

इति पंचपुराणे प्रथमस्कंधे विंशतितमोऽध्यायः

एकविंशतितम अध्याय

मुंशी पिलपिली

ख़ुशामद-शास्त्र में पारंगत मुंशी पिलपिली साहब ने एक पुस्तक लिखी है। इस महाग्रंथ को वह मुर्ग़ी के अंडे की तरह छिपाए रखते हैं। मुंशी साहब के कथनानुसार यह पुस्तक बड़ी ही अनुपम वस्तु ठहरती है। इसको पढ़ने से बंदर के समान लाल मुँह किए हुए साहब लोग प्रसन्न होकर क्रोध को त्याग देते हैं; "वंदे मातरम्" शब्द से चिढ़कर हाथ-पैर पटकनेवाले हाकिम संतुष्ट हो जाते हैं। लायल्टी का तमग़ा तो इसके पढ़ने-भर से ही मिल जाता है, और नौकरी मिलने की तो यह परीक्षित अनुष्ठान-विधि है। कहते हैं, इस शास्त्र को जानकर अनेक तोता-ख़ानदान के वंशज परम पद पर पहुँच गए। जिनकी गुद्दी मास्टरों और मौलवियों की टीप का निशाना बनती रही, और जो तोता-रटंत की महिमा से युनिवर्सिटी की डिगरी पाने में "येन केन प्रकारेण" कृतार्थ होने पर भी बद-लियाक़ती के तिलक से अलंकृत रहे, वे सब इस पुस्तक की कृपा से मुंसिफ़ी और जजी के प्रतिष्ठित पदों पर पहुँचकर कुरसी की सवारी कर रहे हैं।

निदान ऐसी पुस्तक को छिपाकर रखना मुंशी पिलपिली का एक आवश्यक कार्य होना कुछ नवीन बात नहीं है। वह सर्वदा अपनी इस लिपि को "गोप्यं-गोप्यं महागोप्यं" के सिद्धांत के आधार पर हवा के दर्शन भी नहीं कराते थे, और सूम के माल की तरह, या विषय-वासना को परमतत्त्व समझनेवाले नवाबों की बेगमों की तरह, पर्दे में छिपाए रखते थे। इस परम प्रत्यक्ष फलप्रद ग्रंथ की प्राप्ति की लालसा से अनेक लोग मुंशी साहब के शागिर्द भी बने, उनको सीरनी भी चढ़ाई गई, पर कुछ हाथ नहीं लगा; क्योंकि पिलपिली साहब जिस चेले को उस विद्या का पात्र समझते थे, उसी को इस महाग्रंथ का तत्त्व समझाकर कृतार्थ करते थे। हाल में उस पुस्तक की कॉपी एक चतुर चेले ने बड़ी चातुरी या चोरी से प्राप्त करके सर्व-साधारण में प्रकाशित करने का विचार किया है। संपूर्ण ग्रंथ का विषय महाभारत की लंबाई या शैतान की पूँछ का सहोदर होने का दावा रखता है। अतएव उसमें से कुछ आवश्यक बातों का वर्णन यहाँ पर समुचित समझा गया है। ख़ुशामद-शब्द की व्याख्या ख़ुशामद-शास्त्र के आरंभ में बड़े विस्तार के साथ दी गई है। लिखा है, ख़ुशामद की उत्पत्ति कपट और स्वार्थ से हुई है। ये दोनों इस-के माता-पिता हैं। जिस प्रकार टट्टू और गधे के वंश के परस्पर गांधर्व विवाह की कार्यवाही से ख़च्चर उत्पन्न होता है, ठीक उसी प्रकार कपट और स्वार्थ के संबंध से ख़ुशामद की उत्पत्ति होती है। यह हिसाब ठीक भी मालूम पड़ता है; क्योंकि ख़ुशामद का फल भी ख़ुशामद करनेवाले को टट्टू और जिसकी ख़ुशामद की जाय उसको गधे के समान बना देता है, जिसके कारण "जी हुज़ूर, हाँ-हाँ-हाँ" करके जहाँ ख़ुशामद-शास्त्र का प्रयोग किया गया कि बस, हुज़ूर की आँखों में चर्बी छा जाती है, और ख़ुशामदी पर टट्टू के समान प्रतिष्ठा, पद और माल के बोरे लदने लगते हैं।

खुशामद की दूसरी उपमा वशीकरण मंत्र से दी गई है, और बताया गया है कि जैसे उल्लू का मांस, मसान की राख आदि खिलाकर कुलटा स्त्रियाँ अपने पति को अधिकार में रखकर बंदर की तरह नचाया चाहती हैं, ठीक यही हाल खुशामद का है। भेद इतना ही है कि वशीकरण औरतों द्वारा किया जाता है, और खुशामदी दाढ़ी-मूछ के जीव होते हैं। इस पर मुंशी पिलपिली साहब व्याख्या करते हैं कि खुशामदी की दाढ़ी-मूछ भी फ़र्ज़ी समझना चाहिए; क्योंकि खुशामद का जामा पहनने के पहले मर्दानगी या पुरुषत्व को इस्तीफ़ा देना ही पड़ता है।

शाब्दिक व्याख्या को छोड़कर खुशामदी दल का वर्णन इस पुस्तक में बड़ी पटुता से किया गया है। एक स्थल पर लिखा है कि खुशामद मनुष्यता को स्थापित कर दूसरों को वश में करके कार्य सिद्ध करनेवाला प्रधान गुण है। खुशामदी की पूर्ण प्रशंसा तभी है, जब वह दूसरे को मूर्ख बनाकर अपना इष्ट-साधन कर ले। इस शास्त्र की पूर्ण अधिष्ठात्री भारतवर्ष के चौक और प्रसिद्ध बाज़ारों के कमरों से ताकनेवाली वेश्याएँ हैं, जिनकी खुशामद में पड़कर अमीरों के छोकरे अपने को मिटाकर धन, यौवन और बुद्धि को खुशामद के प्रलय में डालकर बिलकुल लय कर देते हैं।

दूसरे नंबर पर वे महाशय हैं, जो "जी हुज़ूर" का बीज-मंत्र जपकर छोटे हाकिमों की बुद्धि को दुर्बल बना लेते हैं। और, उनके-जैसे शिक्षित और प्रसिद्ध चतुर जाति के लोग भी "जी हुज़ूरों" की चाल से अपनी बुद्धि को तिलांजलि देकर, खुशामदियों के फेर में पड़कर, सुग्रीव के नातेदार होकर नाचने लगते हैं। इस कपटी दल के प्रताप से सभा और व्याख्यानों में बग़ावत की दुर्गंध आने लगती है, और उसके ज़्यादा होने से मस्तक दुर्गंधमय हो जाता है।

तीसरे पद पर वे खुशामदी हैं, जो पेट के लिये नौकरी आदि

पद की परम अभिलाषा में लिप्त रहते हैं। इनको फल पूरा नहीं मिलता; क्योंकि मातहती के कारण ये स्वयं तो टट्टू बन जाते हैं, पर दूसरों को मूर्ख नहीं बना सकते, और उलटे काम बिगड़ने पर शीतला-वाहन के समान काम में लगाए जाते हैं।

चौथे प्रकार के वे ख़ुशामदी हैं, जो पहले तो प्रजा का पक्ष लेकर सत्यवाद पर कमर कसकर राजनीतिक योग्यता का परिचय देते हैं; फिर किसी गुप्त स्वार्थ के आश्रित होकर पूर्व कीर्ति के सहारे ख़ुशामद के मंत्र से दीक्षित होते हैं। ये अक्षय प्रकार के ख़ुशामदी कहे जाने चाहिए।

इसी प्रकार मुंशी पिलपिली साहब ने अनेकों ऐसी गूढ़ बातें लिखी हैं, जिनको पढ़कर मनुष्य दुनियादारी की कार्यवाही में परम दक्ष हो सकता है। उनमें से दो युक्तियाँ यों वर्णित हैं—

तर्ज़ ख़ुशामद या वशीकरण-विधि

(१)

देखते साहब को हो जावे खड़ा;
टोपी-जूता फेंक के होवे बड़ा।
ख़ैरख़्वाही में झुके जिस तरह घास;
लोट जाए दंडवत कर बने लास।
या झुकावे हाथ को दमकशी से;
बंदगी का हाथ छू ले ज़मीं से।
फिर कहे "आदाब करता है गुलाम";
चुप रहे गोया लगी मुँह में लगाम।
फिर अगर साहब कहे—"सब चैन है";
तो कहे, "सब चैन है, सब चैन है।"
गो मिलें छः सेर का पूरा अनाज;
मर रहे हैं सैकड़ों भूखों से आज।

जब कहो ये ही कहो—"क्या बात है ;
मुफ़लिसी को आपने दी लात है।"

(२)

गर कभी कौंसिल में हो जावे गुज़र ;
मत किसी की बात में कर कुछ उज़र।
टैक्स हो या सज़ा की कुछ बात हो ;
ख़ास तेरे मुल्क की कुछ घात हो।
तो यही कहना मुबारकबाद है ;
अब रिआया हर तरह से शाद है।
जिस तरफ़ हों मीर-मजलिस, उस तरफ़—
तू चिलाशक राय दे, मत कह हरफ़।
आनरेबुल तू तभी कहलायगा ;
पूरियों की ख़ूब सानी खायगा।

इस प्रकार मुंशी पिलपिली साहब का बुढ़ापे का अनुभव इनमें कूट-कूटकर भरा है, जो किसी और कथा का विषय हो सकता है।

इति पंचपुराणे प्रथमस्कंधे एकविंशतितमोऽध्यायः

द्वाविंशतितम अध्याय

भगवान् की चालाकी

भगवान् की मनुष्यों के बनाने की कंपनीवाला पुतली-घर कहीं देखने में आता, तो अनेक गुप्त विषयों का पता लग जाता। पर वह गोप्य रक्खा गया है। शायद परमेश्वर छिपकर काम करने के प्रेमी हैं ; नहीं तो ऐसा क्यों करते ? आजकल ग़रीबी कल्प के कंगाल मन्वंतर में भगवान् का गुप्त रहना ही उनके लिये श्रेयस्कर है। यदि कहीं पहले की तरह—"यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत" की प्रतिज्ञा का सहारा लेकर—आपका इस देश में आने-जाने का

सिलसिला जारी होता, तो वेढब ठहरती। भारतवर्ष की सारी प्रजा उनके पीछे पड़कर पहले तो हाय-हाय करके रोती, और फिर टाल-टूल करने पर गरम दल का नमूना बनकर उनका अंग-भंग ही कर डालती। जब इससे बचते, तब ताजीरात हिंद की दफ़ा लगाकर उन पर फ़र्स्ट प्रेसीडेंसी मजिस्ट्रेट की अदालत में अवर्षण डालने और देश-भर की खेती को नष्ट कर देने का दावा भी ज़रूर किया जाता, और वकीलों की जिरह के मारे भगवान् की सब सिट्टी-पिट्टी भूल जाती। ऐसी अवस्था में नारायण के चित्त पर क्या बीतती, यह तो वही जानें; किंतु इतना अनुमान अवश्य होता है कि जगन्नाथ-पुरी में बैठकर माल उड़ाना, अयोध्या में रहकर आराम भोगना, मथुरा-वृंदावन में पहुँचकर मौज लड़ाना, काशी में विराजकर खूब पुजवाना, मक्के शरीफ़ में डटकर नादिरशाही चलाना और जेरूसलम में जाकर रंग जमाना सब उनका एक ही दिन में निकल जाता। किसी कवि ने ठीक कहा है—

ले अटका बनि के मटका कटका नगरी महँ खावत हौ;
इत दीन प्रजा जल-हीन कुमीन-सो देखत हू सुख पावत हौ।
तुम धोय बहाय दई सब लाज जु चित्त में एकु न लावत हौ;
जब बूमैं अनाथ भए सगरे जगनाथ तू व्यर्थ कहावत हौ।

इन दिनों जब से पश्चिमीय सभ्यता के हाव-भाव कटाक्ष पर मोहित होकर हिंदू लोग "टका हि परमं पदं" का महामंत्र जपने लगे, तब से यहाँ की विद्या और बुद्धि, दोनों हरितालिका के व्रत का अनुकरण करती हुई हिमालय की कन्या के समान घर से निकल भागीं। अब धर्म, कर्म और आचार, सबका काम देनेवाला नगद-नारायण ही समझा जाने लगा है। वही जिसके पास हो, वह समझ-दार! उसी को पैदा करनेवाला पूँछदार और पंडित, कवि तथा गुणी समझते हैं; और सब व्यर्थ, कूड़ा-करकट विचारे जाते हैं। इस

क़दरदानी की कृपा से देश के प्राचीन गुणी सब एक-एक करके अस्त हो गए। देश-भर में लक्ष्मी के कीड़े और दौलत के ग़ुलाम ही दृष्टि-गोचर होते हैं। ऐसी हालत में महात्मा और धर्मोपदेश का कहीं नाम भी नहीं है, तो आश्चर्य ही क्या है? प्रारब्ध या भाग्य के उदय से हमारे नगर में चंपू बाबा पुराने लोगों में एक रह गए हैं, जिनके पास जाने से कभी-कभी बड़ा ही सुंदर उपदेश सुनने में आ जाता है। इस सप्ताह बाबाजी ने अपना आनंद-भरा गद्य-पद्य-मय व्याख्यान जो सुनाया है, उसकी रिपोर्ट इस प्रकार है—

"मित्रगण, लोगों की यह आदत पड़ गई है कि विना विचारे ही बक उठते हैं। आजकल जो लोग कष्ट पा रहे हैं, इसका दोष किस पर है? हरएक आदमी अपने को बचाकर सारा बोझ गवर्नमेंट के सिर दे पटकता है। सब कहते हैं कि प्रजा भूखों मरे, तो हाकिम का दोष है। ज़रा ध्यान देना चाहिए कि यदि यह सरकार का दोष क़ायम किया जाय, तो बड़ी सरकार क्योंकर बच सकती है?

कोई भगवान् या मसख़रे अल्ला मियाँ से पूछता—हज़रत, अगर परवरिश करने की ताक़त न थी, तो इतनी आबादी बनाकर अपनी लियाक़त का नमूना दिखाने की क्या ज़रूरत थी? क्या आप-को इतनी समझ न थी कि—"तेतो टाँग पसारिए, जेती देखे सौर"? और, फिर जब लाखों राम-राम करके कलप रहे हैं, तो इनका कलपना किस पर पड़ेगा?

कुछ बेचारे सृष्टि को अनादि कहकर इसे नरक का छोटा भाई बताते हैं। पर मैं पूछता हूँ, सृष्टि भी अनादि, परमेश्वर भी अनादि, और जीव भी अनादि ही ठहरे। पर ये बीच के कष्ट कहाँ से आ गए? आप कहिएगा, कष्ट भी अनादि काल से चले आते हैं। तो फिर कष्ट और ईश्वर सगे भाई ही ठहरे। अब कष्टों को दोष देकर उनके भाई साहब परमात्मा को क्यों छोड़ दें? किसी शायर ने ठीक कहा है—

"ख़ुदा से शिकवा हमें किस क़दर है, क्या कहिए।"

रह गए कर्म, सो इनकी सुनिए। यदि सृष्टि के कर्म बुरे हैं, तो हम यह पूछने का अधिकार रखते हैं कि सब बुरे कर्मवाले ही भारत-वर्ष में क्यों पैदा होते हैं ; क्योंकि संसार-भर की आबादी में एक यही देश ऐसा है, जहाँ के लोग दीनता, ख़ुशामद, नौकरी, भक्ति और बुज़दिली आदि की दीक्षा में रहकर कठिन यातना भोग रहे हैं। इन सब बुरे कर्मवालों ने उत्पन्न होकर इस पुण्य भूमि को क्यों कलंकित किया है ? क्या उनको कोई और जगह नहीं थी। देश में तो कुछ दोष नहीं था, इतने कुंदेनातराश, बछिया के ख़ानदानी, बौखलाहट के अवतार इस पर क्यों भेज दिए गए ? भारत ने क्या बुरे कर्म किए थे, जो ऐसे कुरीति-संचारक और पैसे के उपासक लाला, टके पर मरकहे बैलों की लड़ाई का स्वाँग दिखानेवाले पंडित और नज़ाकत के पुतले और निर्जीव क्षत्रिय बैठाए गए ? इसमें कर्म का कुछ भी दोष नहीं है। यह ग़लती उन्हीं साहब की है, जो अपने को "क़ादिर मुतलक़", सर्वशक्तिमान् और सर्वज्ञ बताकर मूछों पर ताव दे रहे हैं। गीता में जो बेचारे सीधे-सादे अर्जुन को "अधियज्ञोऽहमेवात्र देहे देहभृतांवर" कहकर आप अलग भागते हैं, यह चालाकी हमसे नहीं चल सकती।" इतना कहकर चंपू बाबा अपनी सदा की चाल के अनुसार काव्य-रचना सुनाने लगे—

> "उसे, बनाया है जिसने, महान क्यों न कहें ?
> विश्व की भूमि को तेरा मकान क्यों न कहें ?
> जो कि राई को बना सकता हो हिमालय तुंग ;
> उसको विद्या-निधान गुण की खान क्यों न कहें ?
> जब कि दुख मिल रहे हैं सज्जनों को निशि-वासर ;
> दुख के निर्माता को खोटी ज़बान क्यों न कहें ?"

इतना कहकर चंपू महाराज ने अपना व्याख्यान फिर आरंभ किया ही था कि एकाकी जल-वृष्टि होने लगी, और ईश्वर की इस प्रत्यक्ष लीला से प्रसन्न होकर सब श्रोतागण अपने-अपने स्थान को रवाना हुए।

इति पंचपुराणे प्रथमस्कंधे द्वाविंशतितमोऽध्यायः

त्रयोविंशतितम अध्याय

राजनीतिक दंगल

हमारे देश के पढ़े-लिखे लोग सर्वदा से कलह-शास्त्र में पारंगत होते आए हैं। पुराने समय में जब विश्वविद्यालय के पूँछदार बाबुओं की सृष्टि नहीं हुई थी, तब पंडित लोग सुँघनी की बारूद मग़ज़ में चढ़ाकर शास्त्रार्थ के ऐसे गोले मारते थे कि देखनेवालों को सींगदार समाज के शिरोमणि और महामहोपाध्याय श्रीमान् साँड़जी की सींग-लीला देखने का प्रत्यक्ष सौभाग्य प्राप्त हो जाता था। राजा-महाराजों की सभा में हमारे पंडित लोगों की इस कलही प्रकृति का तमाशा नित्य ही देखने में आया करता था। कालांतर में पुराने राजा लोग सब एक-एक करके धर्मराज या यमराज की अदालत में बुला लिए गए, और उनकी जगह पर वर्तमान बुद्धि के विरोधी और वेश्या, फ़ैशन तथा खुशामद के परम भक्त लोग विराजमान हुए। इनके सामने प्राचीन पंडिताई की क़दरदानी और नादानी, दोनों एक कुटुंब की चीज़ें समझी जाने लगीं, और यहाँ के शिक्षित लोग दास-वृत्ति में नियुक्त हुए।

मिस्टर मिल साहब ने लिखा है कि मनुष्य ने संसार-भर के व्यापार तो अपने लिये नियत किए हैं, पर स्त्रियों के लिये एक ही आजीविका का बंधन रक्खा है, और वह केवल अपनी सुंदरता

को बेचने का व्यापार है। वह चाहे एक पुरुष की स्त्री बनकर बैठे, चाहे बाज़ार में बैठे; किंतु मतलब दोनों का एक ही है। इसी प्रकार हमारे शिक्षित लोगों ने दो काम सीखे हैं, या तो नौकरी करना या विद्या के बहाने कलह-शास्त्र में पारगामिता दिखलाना। इसके अतिरिक्त मानो ब्रह्माजी ने इनके लिये कुछ काम बनाया ही नहीं है। इनमें जो अधिक पढ़े हैं, वे क़ानून, कलह या समालोचना की कर्कशा-प्रणाली में जन्म खोते हैं, और जो नौकरी पाने में प्रारब्ध-वान् नहीं होते, वे राजनीतिक झगड़ों की कलह का बोझ लादकर अपनी कलहकारिणी प्रकृति का परिचय देते हैं।

हमारे ग्राम की निकटस्थ बस्ती में एक इसी प्रकार के शिक्षित रहते हैं। आप पुराने समय की फ़क्किका की फ़ज़ीहत में बहुत नाम कमा चुके हैं। अब जब से राजनीतिक अखाड़ों के दंगल चल निकले हैं, तब से हमारे पंडितराज पूरे 'पोलिटिकल' पहलवान बनकर सबके आगे ताल ठोकने को प्रस्तुत रहते हैं। ऐसा करने से आप-को कई लाभ हो जाते हैं—एक तो विना परिश्रम वीरता की पदवी प्राप्त होती है, दूसरे सीधी और पुरानी समझ के लोगों में इनके व्याख्यान की बिक्री हो जाया करती है, तीसरे कभी-कभी ख़ुफ़िया पुलिस की कृपा से इनका महत्त्व ज़िलाधीश तक पहुँच जाया करता है। इन बातों से हमारे पंडितराज की राजनीतिक पंडिताई की उपोल-शंखी और भी ज़ोर पकड़ती जाती है।

हाल की कांग्रेस में नरम और गरम दल का द्वंद्व युद्ध देखने के अभिप्राय से पंडितराज समाचार-पत्र के संवाददाता बनकर पहुँचे थे। यहाँ तो लोगों को यही निश्चय था कि इस महाभारत में महाराज देवता अवश्य जूझ ही जायँगे; किंतु राजनीतिक मामले भी पेटार्थू-चरित्र से संबंध रखते ही हैं। बस, आपने दंगल से कोरे बचकर कांग्रेस की रिपोर्ट यों लिखकर भेजी है—

राजनीतिक दंगल

आल्हा

गैया माता, तुमको सुमिरौं, कीरति सबसे बड़ी तुम्हार ;
करौ पालना तुम लड़िकन कै, पुरिखन वैतरनी देउ तार।
वंग-भेद माया से उपजे नरम-गरम के यूथ महान ;
तिनकी लीला कहन-सुनन से होय पलक-भर में कल्यान।
कर्जन लाट ठाट के प्रेमी दूरदर्शिता में अति छीन ;
वंग-भंग कै वंगालिन को लगे बनावै नित बलहीन।
है बलहीन प्रजा इत सब विधि केवल कहन-लिखन को ज़ोर ;
ताको वर्जन कर कर्जन जू चले देश को रोवत घोर।
अर्ज़ी लै वंगाली दौड़े जॉन मारली-मिंटो पास ;
खीसैं काढ़ि रहे मुँह वाए आशा सों बहु भए उदास।
हाकिमजू की गूढ़ पालिसी भई काल-सी पूरी माय ;
वंगाली सब वंग-भंग से दुखित पुकारैं कहि-कहि "हाय"।
ह्वै उद्योग-हीन सगरे नर-नारी, वृद्ध, बाल सब दीन ;
देश-रुदन की रटन लगाए तड़पैं जेहिं विधि जल विन मीन।
यहि विधि रोवत सूझी तिनको चाल स्वदेशी की भरपूर ;
करि-करि बहिष्कार नित झपटे वंगाली दल बनिकै सूर।
"हम मारैंगे", "हम पीटैंगे चीज़ विदेशी करि कै दूर" ;
चढ़ी वीरता वंगालिन पर करैं विदेशी चकनाचूर।
सरकारी रक्षक सेना अरु गुप्त पुलिस की गुप्ती चाल ;
एक न मानैं, अपनी तानैं बहिष्कार लीन्हे विकराल।
दावे, धावे, मार-पीट की राजनीति में आई बात ;
लगे विदेशी शिक्षा लेने तजिकै भिक्षा की औक़ात।
यह विधि रारि चलाई देशी वंगाली दल बनिकै वीर ;
थर-थर काँपै तिनसों धरती देख गरम दल की तासीर।

हियाँ कि बातैं हियनै रहि गईं अब आगे को सुनो हवाल,
और बयरिया डोलन लागी और होन लाग अँधियार।
सूरत नगर सुभग सूरत महँ, तहाँ तापती पुण्य प्रवाह;
मची कांग्रेस दल की लीला, फैलो पूर्ण रूप उत्साह।
बाबू, पंडित, मुंशी, मिस्टर, उठे ठाट अँगरेजी ब्यार:
जाय जुटे सब महासभा में नरम-गरम की मची पुकार।
रासबिहारी बने सभापति तिलक तिलक बिन सूने माथ;
यह क्य नव दल देख सकै बस, बातावाती चलिगे हाथ।
"हम मारैंगे", "हम पीटैंगे" कहि-कहि गरम चले जब तान;
जूता-जूती, सोटा, डंडा लगे चलन, मचिगो घमसान।
चलो द्वंद्व की झपटा झपटी विषधर कांग्रेस मैदान;
लगी चोट तब भागे भैया प्रतिनिधि हाय-हाय करि तान।
लेडी काँपैं, साहब नाचैं, लै-लै सभ्य साज को नाम;
"अल्ला-अल्ला करैं मुसल्ला, हिंदुन परो राम ते काम।"
"गाड-गाड" करि भागे साहब, रहे सँवै पतलून सँभाल;
तिलक-युद्ध सों पल्लो परिगा, भई कांग्रेस सभा हलाल।
हँसैं विरोधी हा-हा-हा-हा, कूदैं ताली दै-दै ताल;
राजनीति की सभा भई हत मनु खिलवाड़िन को अहवाल।
यहै स्वराज्य नमूना बनिगो जौन मारली कहिये काज;
राजनीति दल धोय बहाई लाज आज सब भरी समाज।
इति पंचपुराणे प्रथमस्कंधे त्रयोविंशतितमोऽध्यायः

चतुर्विंशतितम अध्याय

मरैठी घिसघिस

पचास वर्ष का समय व्यतीत हुआ, तब तक कवियों के भाव का देश में कुछ-न-कुछ समादर ज़रूर था। प्रत्येक ज़मींदार या ताल्लुक़-

दूसरा सं०—अरे मूढ़ सठियाई अक़्ल तेरी, बकता क्या ;
ख़ाली बकबक के सिवा तू कर सकता क्या?
पहला सं०—हो लायक़ करने प्यार, ख़फ़ा क्यों होते ?
ग़ुस्से से भस्म हो रूप को नाहक़ खोते।
दूसरा सं०—पाजीपन से क्या काम, कहो क्या तूने ;
यह फक्कड़ बकते शरम न खाई तूने।
पहला सं०—है ऐसी शरम तो छिप बैठो परदे में ;
क्यों आए सबके बीच यार गरदे में ?
तीसरा सं०—तू समझ के छोटा उसे दबाता क्या है ;
हुदहुद है पुराना, शोर मचाता क्या है।
पहला सं०—चुप रहो, नहीं तो तुम भी पछताओगे ;
मल-मलके हाथ आँसुओं से रह जाओगे।
तीसरा सं०—तेरे-जैसे बहुतों को हराया मैंने ;
दिक़कर उनको यह कार छुड़ाया मैंने।
पहला सं०—तो आज हमारी तेरी फटकेबाज़ी ;
हो जाय, जो चौखल इसी में है तू राज़ी।
तीसरा सं०—कंगाल, दुखी, चंडाल, दुष्टजन तू है ;
गीदी, ख़र, भकुआ, चोर सरासर तू है।
पहला सं०—चंडूल, चिगोदड़, गीदड़ तेरा नामे ;
धोबी, तेली, हज्जाम, चमारी कामे।
तीसरा सं०—था पिता तेरा ख़ानसामा लाट लीटन का ;
वो हत्या करता बेशुमार कीटन का।
पहला सं०—तेरे कुल के सब लोग हैं जूता सीते ;
गोरों का जूठा पानी निशि-दिन पीते।
तीसरा सं०—बस ज़्यादा बढ़े, तो मार-पीट होगी अब ;
टेढ़ा मुँह बनेगा बस, चुप हो रह तू अब।

पहला सं०—मारे चश्तों के गुद्दी टूट गई होगी ;
उस वखत ख़तम सब टायँ-टायँ भी होगी।
तीसरा सं०—मेरे ख़बरों के देनेवाले गोरे ;
मारेंगे तेरे संगीन तानकर श्रो रे।
पहला सं०—लिखने में बहुत मशहूर नाम है मेरा ;
लिख लेख मिटा दूँ नाम जहाँ से तेरा।
चौथा सं०—तुम लड़े खूब, हम हुए खुशी सब सुनकर ;
कुछ मज़हब-झगड़ा कियाकरो तुमअकसर।
पाँचवाँ सं०—कहो यार चलावें किरस्तान का झंडा ;
खावेंगे मज़े में जूता पहने अंडा।
छठा सं०—श्रापस में भिड़ोगे तभी तो पक्के होगे ;
नहीं वखत पड़े पर हक्के-बक्के होगे।
सातवाँ सं०—तुम हँसी को छोड़ो,करोरात-दिन ठुस-ठुस;
बाहर मत जाश्रो, बैठो घर में घुस-घुस।
श्राठवाँ सं०—तुम अँगरेज़ों की तरह रहो श्रारजगन ;
श्रादमी को देखत करो ज़ोर से भन-भन।
दसवाँ सं०—टिक-टिकटें-टंधप-धपटें-टें-फटफटखट-खट;
हाहा-हीही-हूहू-ले-ले रे-रे रट-रट।
बारहवाँ सं०—हाहा,पढ़-लिखकर इन इज़्ज़त सब खोई ;
संपादक होकर लड़त फिरत नित रोई।
अब कृपा करहु जगदीश, बहुत दिन बीते ;
धन,बल, धीरज अरु बुद्धि काल सब जीते।
इति पंचपुराणे प्रथमस्कंधे चतुर्विंशतितमोऽध्यायः

पंचविंशतितम अध्याय

स्वार्थ की सवारी

कल की रात ग़ज़ब की थी। हवा का नाम नहीं। पसीने के मारे बदन तर-बतर हो रहा था। म्युनिसिपैलिटी की नालियों में परवरिश पाए मच्छड़ों की पलटन अपने धावे करके कम-से-कम यह नसीहत ज़रूर करती थी कि नगर की सफ़ाई का काम जिनके हाथ में है, उनकी कार्यवाही से चाहे नगर की मर्दुमशुमारी की संख्या कुछ कमती भी हो गई हो, किंतु वह इस विचार से क्षमा करने योग्य है कि मच्छड़ों की आबादी तो बढ़ी। एक आदमी की कमी के बदले लाख-दो लाख मच्छड़ बढ़े, तो जीवों की संख्या में कमी नहीं मानी जा सकती। आशा है, इस फ़िलासफ़ी की बहस को चेयरमैन साहब अब की सालाना रिपोर्ट में ज़रूर छापेंगे, और सरकार के सामने यह सिद्ध कर देंगे कि यदि स्वार्थ भाव से रहित कोई जन-समूह है, तो वह नगर की म्युनिसिपैलिटी ही। चिरकाल तक ये तरंगें मन में उठती रहीं, और निद्रा देवी की अमलदारी आते ही नीचे लिखा दृश्य सामने उपस्थित हुआ—

(स्थान चौक। बहुत-से लोग स्वार्थ महाराज को कंधे पर उठाए और आगे कीर्तन करते चलते हैं)

सबका एक साथ गाना

महाराज स्वारथ इधर आज आते;
अहा, क्या मज़ेदार-से यार आते।
ज़माने के हाकिम हैं शागिर्द इनके;
ये क़ानून को रोज़ रद्दी बनाते।
सचाई शकल देख कोसों पै भागी;
धरम को यें धक्के व मुक्के लगाते।

तरक्क़ी की ख़ुद खोपड़ी तोड़ते हैं ;
तनज़्ज़ुल को मसनद के ऊपर बिठाते ।
अहा, इनकी रिशवत है बीबी दुलारी ;
इसी से कचहरी के हाकिम कहाते ।
हिक़ारत से है आपका दोस्ताना ;
हया पर हज़ारों तबर्रह सुनाते ।
डरो इनसे सब हिंद के ख़ैरख़्वाहो ;
ये हिंदू व हिंदी को कोड़े लगाते ।

(देशी लाला का प्रवेश)

देशी लाला—

इन्हीं की बदौलत है रोटी हमारी ;
महाराज स्वारथ को हम सिर नवाते ।
ये लौंडे हैं कहते कि उन्नति करो तुम ;
हम इन बेवक़ूफ़ों को कब दिल में लाते ।
अरे झूठ कह-कहके दौलत कमाई ;
हैं लाला न-चंद के फंदे में आते ।

(मुंशी का प्रवेश)

मुंशी—

हज़ूरी में हाज़िर हूँ, मुझ पर करम हो ;
बुज़ुर्गों के तुम पीर-मुर्शद कहाते ।
करें कुछ, कहें कुछ तुम्हारे भरोसे ;
बुराई से हम क्या कभी बाज़ आते ।
कचहरी के कुत्ते, पुलिस के हैं पिल्ले ;
जटल-क़ाफ़िए रोज़मर्रह उड़ाते ।

फेरें राजसी ठाट, झूमें नशे में ;
विरागी बने राग सबको बताते।
यें रोज़ी, रिज़क, पुत्र, धन बाँटते हैं ;
इसी से तो कलजुग के बाबा कहाते।

(वकील का प्रवेश)

वकील—

अहा ! बंदगी यार स्वारथ, मुबारक ;
तुम्हारी दया से ही रोटी कमाते।
वकालत हमारी के पालक तुम्हीं हो ;
हमारे लिये रोज़ झगड़े बढ़ाते।
पढ़ा करकशापन व क़ानून हमने ;
मगर तुम न होते, तो हम बूढ़ जाते।

सब लोग मिलकर—

महाराज स्वारथ, इधर आज आते ;
अहा ! क्या मज़ेदार-से यार आते।

(एडीटर का प्रवेश)

एडीटर (क्रोध से)—

सुनो, बस, सवारी को रोको यहाँ पर ;
कहाँ के महाराज स्वारथ कहाते ?
मनों लेख लिख छाप डाले हैं हमने ;
सुआरथ की जड़ हम जहाँ से मिटाते।
धरम-मंडली और आरज-समाजी ;
अभी पीटने तुमको इस वक़्त आते।
इसाई गुरू पादरी भी खड़े हैं ;
अभी याँ से भागो, नहीं मार खाते।

देशी लाला (रोकर मन में)—

अरे हाय, अब फ़ौजदारी की नौबत—
हुई, क्या करें, जानते, तो न आते।

मुंशी—

मियाँ, किस लिये रास्ता रोकते हो?
बिना बात का झगड़ा क्यों हो बढ़ाते।

एडीटर (मुंशी से)—

हटो, बस, इसी में भलाई तुम्हारी;
धरम-मंडली को अभी हम बुलाते।

मुंशी (एडीटर से)—

धरम-मंडली की तो खुद टाँग टूटी;
मरों को भी क्या कुछ दवा से जिलाते?
हरएक साल मंडल की मीटिंग हुई के;
वो मंडल कहाँ है, कहाँ से बुलाते।
दयानंद दुनिया से मतलब न रखते;
बचे आरजों को तो झगड़े क्सिखाते।
वो क्या हो सकेंगे हमारे मुक़ाबिल;
कभी घास खाते, कभी मास खाते।
पड़े पेट के धंध में पादड़ी हैं;
यों मोची-चमारों को चेला बनाते।
इन्हीं के भरोसे पँ लड़ने चले हो?
हटो, बस, नहीं तो अभी मार खाते।

एडीटर (मुंशी से)—

अबे, हट यहाँ से तु बेकूफ़, गुर्गे;
तुझे लेख लिखकर अभी हम भगाते।

स्वार्थ की सवारी

पंडित (एडीटर से)—

तुम्हीं तो खुशामद का लिखते हो भैया ;
अबौं डींगबाज़ी से नाहीं लजाते ?

एडीटर (आवेग से)—

अभी हम सुआरथ का सिर काटते हैं ;
अभी इसको जूतों से मल-मल दबाते।

स्वार्थ महाराज (वकील से)—

यह टर-टर एडीटर लगाए ही जाता ;
बग़ावत की इस पर दफ़ा तुम जमाते।
तो सब इसके साथी ये दबकर निकलते ;
व ये भी हवा जेल की खाय आते।

साहब—

इसे ख़ूब मारो, रँगा स्यार है यह ;
(एडीटर काँपता है)

पंडित (एडीटर से)—

कहो तो बचा, किस लिए कँपकँपाते ?

साहब—

अभी मार मारो, बड़ी मार मारो ;

एडीटर (भागकर)—

अभी यार जाते, अभी यार जाते।
(सब मिलकर गाते हैं)
मची हिंद में धूम स्वारथ की जै-जै ;
करें चैन स्वारथ की जय जो मनाते।
यँ सरदार सबके महाराज स्वारथ ;
महाराज स्वारथ इधर आज आते।

सवैया

स्वारथ सों सब काज सरैं, परमारथ हू इनसों न बचो है;
फूटहु त्यों सगरे झगरे मतवारन को इन स्वाँग रचो है।
त्यों कमलासन या कलि को विधि के विधना सरदार खचो है;
भारत गारत होय भलो, इत स्वारथ को जयकारो मचो है।

इति पंचपुराणे प्रथमस्कंधे पंचविंशतितमोऽध्यायः

षड्विंशतितम अध्याय

ढोलक-माहात्म्य

मिस्टर ढोलकप्रसाद के जन्म दिन के महोत्सव में यों तो बहुत धूमधाम हुई, किंतु सबसे ज़्यादा तार ढोलकों का रहा। वह बजी, खूब बजी, और ऐसी बजी, जैसे राज्याभिषेक-पर्व पर शाही क़िले की तोपें। भेद इतना ही रहा कि तोपों के गोलंदाज़ मर्द होते हैं, और इनके ध्वनि-कारकों में रूप-लावण्य-प्रभापूरित युवतियों की वैसी प्रभा की झलक थी, जिसका चित्र खींचने में कवियों के मस्तकों के भाव कलाबाज़ियाँ खाया करते हैं। समरावसर को छोड़ दिया जाय, तो ढोलक और तोप की समता की कल्पना मिस्टर डार्विन की लंगूर-कुटुंब मंडली की अनुमान-पद्धति से किसी प्रकार कम नहीं ठहरती। साहब ने जिस प्रकार यह सिद्ध किया कि आदमी बंदर की औलाद है, उसी प्रकार सुसंपन्न रूप से यह भी सिद्ध हो सकता है कि ढोलक बजाना और तोप दागना, दोनों काम शांति के समय में एक ही भाव के गर्भ से उत्पन्न होते हैं।

सुख-प्राप्ति के समय में प्रसन्नता या हर्ष का होना नैसर्गिक याने स्वाभाविक नियम है; किंतु मनुष्य सामाजिक जीव है, इसलिये हर्ष प्रकाशित करना और दूसरों को प्रकट करके दिखाना भी स्वाभाविक मानना पड़ेगा। इस विचार-श्रृंखला से तोप की धमक और ढोल

की थाप में कुछ भेद बाक़ी नहीं रहता। महावरों के संसार में जहाँ तक साहित्य का संबंध है, सृष्टि की असली बातों का भी कथन है। इस वास्तविक निर्णय-प्रथा में भी तोप और ढोलक का साम्य प्रकट होता है। मोटी और मोटापे की मर्यादा से बाहर जानेवाली स्त्री को जहाँ ढोलक की उपमा देना असिद्ध नहीं है, वहाँ तोप कह देना भी नियम के विरुद्ध नहीं हो सकता। अतएव यह मानना पड़ेगा कि तोप और ढोलक के शब्द एक ही हैं। दोनों हार्दिक प्रसन्नता के सूचक हैं। इतना ज़रूर है कि तोप के पक्षपाती अपनी बात को मर्दानगी की हर्ष-सूचना और दूसरी को ज़नानी विजय-घोषणा कहकर संतोष पाने का अवसर पा सकते हैं।

किंतु यह शेख़ी भी कुछ पक्की बुनियाद पर स्थित नहीं दिखती। वीरता चाहे ज़नानी हो चाहे मर्दानी, है तो वीरता। विजय-सूचना या घोषणा, दोनों ही समान हैं, और ज़नानी विजय की बात मर्दानगी से कुछ-न-कुछ बढ़ी-चढ़ी अवश्य ही ठहरती है। इस विचार से भी ढोलक की ताक-धिना-धिन तुपक की धमाधम से कम नहीं मानी जा सकती। आजकल की कोरी मर्दानगी के ज़माने में ढोलक ही रही-सही मर्दानगी को क़ायम किए हुए है। आल्हा-ऊदन की लड़ाई का वर्णन कहने या गानेवालों की सहायता करनेवाली केवल ढोलक ही बाक़ी रही है। सरकारी सेना की भरती करने के काम में पड़े लोगों ने इस बात की शिकायत तो कर डाली कि वर्तमान लोगों में कुछ लेवा का भाव अर्थात् माद्दा नहीं रहा; किंतु उसके फिर से उठाने की किसी को नहीं सूझी। क्या आश्चर्य है कि भावी कौंसिलों के होनहार मेंबरों के कोई प्रधान इक्सट्रेमिस्ट कौंसिल में ढोलकीवाला कोई प्रस्ताव निकालें, और यह आग्रह करें कि शिक्षा-विभाग के डाइरेक्टर से लेकर छोटे मुदर्रिस तक के लिये ढोलक का अभ्यास करने का नियम निकाला जाय। यह बात कुछ पुराने ढंग के

लोगों को चाहे न भी अच्छी लगे, पर जब 'पटेल-बिल' और 'रौलट-बिल' की बिलबिलाहट का पक्ष करनेवाले कौंसिलों में हैं, तो ढोलक-बिलज जैसी बात को चलाने की बात कौंसिली बुद्धि के विरुद्ध नहीं कही जा सकेगी।

ढोलक-माहात्म्य पर विचार करने से यह स्पष्ट प्रकट हो सकता है कि ढोलक भी एक ऐसी चीज़ है, जो जन-समाज के मरने और जीने के समय बड़ी सहायता करती है। यह सब धर्मों में आदरणीय है। युद्ध के समय ढोलक के सगे नातेदार ढोल साहब वीर सिपाहियों के कंधे पर सवारी करते हैं और यह कहना अशुद्ध न होगा कि लड़ाई का दारोमदार इन्हीं ढोलों की आवाज़ों पर रहता है। अतएव वीरों की असली सहायता करनेवाले श्रीमती ढोलक के कुटुंबी ढोल महाराज ही ठहरते हैं। तर्क-शास्त्रवाले सारे संसार की बात को काटने या कतरने में बड़े दक्ष हैं; पर ढोलक के सामने उनकी भी सिट्टी-पिट्टी भूल जाती है। इसका उदाहरण उस समय देखने में आया था, जब मियाँ मोहर्रम का बीबी राम-लीला से गुत्थमगुत्था होने लगा था। मियाँ के पक्षपाती कहते थे कि लीला के लोग बाजा न बजावें, और लीलावाले कहते थे कि जब मियाँ के जनाज़े में ढोल बजता है, तो लीला में ढोल ने क्या अपराध किया है? इस प्रकार वितंडावाद बहुत हुआ; पर ढंग की एक बात भी न निकली, और हुआ वही, जो हमेशा से होता आता है—अर्थात् तर्क-वितर्क की सब बातें दाख़िल-दफ़्तर हुईं, और पुलीसवालों का दौड़ते-दौड़ते कलेजा मुँह को आ गया।

ढोलक की वंशावली में पखावज, मृदंग, तबला, नगाड़ा, दुंदुभी आदि अनेक बाजे हैं; किंतु जो सार्वभौमिकता श्रीमती को प्राप्त है, वह किसी को नहीं मिली। अतएव सीधे-सादे लोगों में बालक को ढोलकप्रसाद कहना उस प्राचीन प्रणाली से बुरा नहीं था,

जिसके द्वारा महाजनों के घर में चकलामल, मकड़ामल, भिंडी-प्रसाद नाम से लोग विख्यात होते हैं। इस आचार के अनुसार जिसका प्रसाद बालक था, उसकी धूमधाम हुई, तो आश्चर्य ही क्या ?

श्रीमती ढोलक के गुण-गान के यथोचित स्थान पर आ जाने से आज का अध्याय यहीं पर समाप्त करना पड़ा।

इति पंचपुराणे प्रथमस्कंधे षड्विंशतितमोऽध्यायः

सप्तविंशतितम अध्याय

लाला ढोलकप्रसाद

ढोलकप्रसाद को साधारण लोग ढोलप्रसाद ही कहकर बुलाते हैं। यह नाम उन्हीं क़ायदे या नियम से बना है, जिसको नैसर्गिक नियम कहते हैं। इन्न प्रथा ने व्याकरण या शब्द-शास्त्र की पूरी क़ज़ीहत की है। पुराने पंडितों की व्याकरण-शैली की पंक्तियों के रटने पर नाक सिकोड़नेवाले और उसकी हँसी उड़ाने के प्रेमियों ने अपनी व्याकरणी घिस-विस का बिलकुल ख़्याल नहीं किया। उनको विचारना चाहिए कि पहले प्रसाद का परसाद क्यों कहा जाने लगा ? फिर प्रसाद कहते हैं कृपा को, तब ढोलक की कृपा कैसी ?

इस विषय का निर्णय करने में शब्द-शास्त्र के उस गहन जंगल में दौड़ लगाने की आवश्यकता पड़ती है, जहाँ का कोई मार्ग भी नगर की उन्नतिकारिणी (टाउन इम्प्रूवमेंट कमेटी) की सड़कों की तरह नहीं है। यदि एक बार ढोलक के प्रसाद पर आक्षेप किया जाता है, तो सैकड़ों प्रकार के दोष दूसरे नामों पर अपनी पलटन लेके चढ़ दौड़ेंगे। आदमी यदि किसी बाजे की कृपा नहीं हो सकता, तो वह गंगा और यमुना की भी कृपा का फल भी नहीं माना जाना

चाहिए। यदि बाजे को बेजान कहा जाय, तो नदियों में भी जान का झगड़ा निकलेगा, और धर्म का ढाँचा बनाकर भगतों को ज़बान हिलाने का अच्छा अवसर मिलेगा। इसलिये ढोलकप्रसाद पर आक्षेप करना और झगड़े को बढ़ाना एक ही बात बन जायगा।

बात यह है कि नाम रखनेवाले अर्थ का झगड़ा कभी नहीं करते। अगर कोई किसी देवता का प्रसाद है, तो वह है वास्तव में देवता की भक्ति की सूचना, जिसका मतलब यह है कि उसके माता-पिता या पोषक उस देवता पर श्रद्धा रखते हैं। किसी को किसी की श्रद्धा-भक्ति के खंडन का कोई अधिकार नहीं है। रामप्रसाद और शिवप्रसाद जिस क़ायदे से हो सकते हैं, उसी नियम से ढोलकप्रसाद भी बन सकते हैं। मामला केवल भक्ति का है।

ढोलक का नाम पुराना नहीं है; पर ढोल-शब्द कहीं-कहीं पर मिलता है। इससे ढोल या ढोलक बना है, और लघुवाची 'क'-प्रत्यय लगाने से ढोलक का नाम सिद्ध होता है, और उसमें स्त्री-वाचक 'ई' के लगाने से ख़ासी ढोलकी की मूर्ति बन जाती है। अब इस मूर्ति के उपासक हैं, तो क्या आश्चर्य? और, यह क्यों न हो? जब ब्रह्मा से लेकर शनिश्चर की मूर्ति तक के उपासक हिंदू-धर्म में हैं, क़ाबे से लेकर ताज़िए और क़ब्रगाहों तक को माननेवाले मुसलमानी मज़हब में हैं, सलीब पर महात्मा ईसा की मूर्ति से लेकर एक दूसरी को काटनेवाली दो लकीरों के उपासक ख़ीष्ट-मतानुयायियों में हैं, तो ढोलक के उपासकों ने क्या अपराध किया है? इस हिसाब से ढोलक का माहात्म्य कुछ कम नहीं होता, वरन् बढ़ ही जाता है। समय ने बुरा पलटा खाया है। अब लोग पुरानी बातें छोड़ते जाते हैं। नहीं तो कम-से-कम कोई उपदेशक, ऐसी व्याकरणी वीरता ज़रूर दिखाता कि ढोलक-शब्द को वेद भगवान् के मुखारविंद से तो ज़रूर ही निकाल देता।

इस कथा के नायक लाला ढोलकप्रसाद का नाम "यथा नाम तथा गुणः" था। लोग प्रायः नाम के बड़े और दर्शन के थोड़े होते हैं; किंतु यह साहब नाम के छोटे और गुण के बड़े इस कारण कहे जाने चाहिए कि इनकी तोंद ढोलक क्या, बड़े जंगी फ़ौज के ढोल की समता रखनेवाली होने पर भी यह केवल ढोलकपरसाद ही कहे जाते थे। वाटर पाइप की सगी नातेदार और कपसी और हंडों की सौतेली माता श्रीमती मशकदेवी की शोभा से अधिक शोभा लाला के उदार पेट की थी। जैसे बड़ी नदी की पुरानी सूल होती है, जैसे हवा में उड़नेवाले बेलून गुब्बारे फूलते हैं, जैसे लोहार की बड़ी धौंकनी वायु निकलने के पहले गोलाई दिखाती है, वैसी ही छवि लाला की तोंद की थी। वह क्यों कर इतना मोटा हो गया, इसका हिसाब बड़े-बड़े वैद्यों की शक्ति के बाहर है। अगले ज़माने में मनुष्य के गुण के अनुसार नाम पड़ जाया करते थे; पर अब गुणग्राहकता का समय न रहने से वह मर्यादा जाती रही। नहीं तो जैसे भीम को वृकोदर, भगवान् को दामोदर और गणेशजी को लंबोदर नाम अर्पण किए गए हैं, वैसे ही लाला ढोलकप्रसाद को कुप्पोदर या स्टीम-एंजिनोदर आदि नामों से अलंकृत होने का सौभाग्य अवश्य प्राप्त होता।

गुणों के हिसाब से कथा-नायक की तोंद कई कारणों से वंदनीय थी। उसमें केवल पसेरियों हलुआ-पूरी के पचाने की शक्ति ही नहीं थी, परंतु वह गाढ़ियों का अटूट भंडार भी थी। लाला जब आरामकुर्सी पर बैठते, तो वह गोलाकार होकर ऊपर को इस प्रकार उठकर आ जाती कि सामने बिलकुल गोल टेबुल सी बन जाती। उस पर काग़ज़, घड़ी और अन्य चीज़ें कई बार रक्खी हुई देखी गईं। जब ढोलकप्रसाद खड़े होते, तो वह करवट बदलकर फिर लटकने लगती, और देखनेवालों को यह भ्रम

होता कि लाला नाचनेवाली का आदमी बनकर तबले पेट में बाँधकर खड़ा हुआ है। जब वह बिस्तर पर शयन करने को लेटता, तो वह छोटे पर्वत के आकार में उठी हुई छाती पर पिटारे की तरह बन जाती। कहते हैं, तोंद अमीरी का चिह्न है, और इसलिये वह अमीर की छाती पर बैठी हुई घर के गरे हुए ख़ज़ाने का प्रतिबिंब या फ़ोटो बनकर शकुन-शास्त्र का-सा कुछ इशारा करती हो, तो आश्चर्य क्या? फ़्रांस के लोग सुंदर बीबियों की नुमाइशगाह बनाते हैं, और सबसे बढ़कर सुंदरी को सुवर्ण-पदक देते हैं। यहाँ पर्दे की प्रथा के कारण और अधिकांश बाबुओं के बीबी-फ़ैशन बन जाने के सबब वह बात नहीं हो सकती। किंतु तोंद की प्रदर्शनी ज़रूर ही हो सकती। यदि कोई सार्वजनिक प्रेम से भरा छोटा या बड़ा लाट आ गया होता, और तोंद की बाज़ार लगी होती, तो तोंदलों में सबसे पहला पदक श्रीमान् ढोलकप्रसाद ही को मिलता।

इस विराट् तोंद के अधिकारी के सभी अंग यों तो बड़े लंबे-चौड़े और गोल थे, पर तारीफ़ सबसे ज़्यादा पेट ही के हिस्से में थी। उसकी मोटाई के आगे सब अंग पंसेरी के पसंगे-से ही रहे। पाव-भर से ज़्यादा वज़न की नाक, पाव-भर के कान और ओठ बिलकुल छोटे लगते थे, और आँखें ऐसी प्रकट होती थीं, मानो पुराने नारियल में किसी ने दो टय्यें (कौड़ियाँ) चिपका दिए हों। उस पर जब शीतला के महाप्रसाद से प्रतिबिंबित मुखारविंद की शोभा पर ध्यान दिया जाता था, तो गोस्वामी तुलसीदास के कुंभकर्ण के दर्शन की छवि सामने आ जाती थी। 'क्या विशाल शोभा थी, देखते ही बनती थी! इतनी तारीफ़ क्या कम है कि लाला के विशाल रूप को देखकर लोगों के हृदय काँप उठते थे, और जिस ओर जँभाई लेकर वह मुँह खोलते, तो आदमी क्या, पक्षी तक दूर उड़कर भागना चाहते थे।

इससे उस ज़माने का कुछ पता लगता है, जब लड़के के जन्मोत्सव में औरतें तक हज़ार मोहरें ख़र्च कर सकती थीं। इसी आधार पर ढोलक का वज़न किसी तरह बुरा नहीं कहा जा सकता। ऐसी विधवाओं के अधिकार में शिक्षा पाकर ढोलकप्रसाद का डील-डौल बढ़ गया। वह किस प्रकार बढ़ गया, इसको पूर्ण रीति से आज-कल की जान दुखानेवाली सभ्यता के मजनूँ समझ नहीं सकते।

इस महापुरुष के जन्म की कथा के आरंभ में कहा गया था कि उस दिन ढोलक ख़ूब बजी थी, जिस दिन लाला का जन्म हुआ था। यह बात समझने के लिये कुछ पुरानी चालों और इतिहास की ओर भी ध्यान देना पड़ेगा। बिना ऐसा किए साधारण लोग तत्त्वार्थ तक नहीं पहुँच सकते। जो लोग इस भूखे ज़माने में रहते हैं, और जिनको पापी पेट के पालने के लाले पड़ रहे हैं, वे बेचारे हर्ष और आनंद की परा काष्ठा तक पहुँच ही नहीं सकते। उनकी समझ को ठिकाने पर लानेवाला एक पुराने पत्र का अंश उद्धृत किया जाता है। यह पत्र रौनक़आरा बेगम साहबा ने ढोलकप्रसाद की नानी को भेजा था। ढोलक के जन्म के पहले उसके पिता का देहांत हो गया था, और माल सब नवाब की गवर्नमेंट ने छीन लिया था। उसकी विधवा माता अपनी माता के घर में जाकर रही थी। थी तो वह भी विधवा, पर उसका बेगम साहबा से कुछ पुराना संबंध चला आता था; इसीसे बधाई-सूचक पत्र आया था। उसमें लिखा था—

"आपको फ़र्ज़ंद मुबारक हो। मैं ख़ुद इस जशन में शरीक होती; पर नवाब साहब की तबीयत कुछ अलील है। हाज़िर नहीं हो सकती। आप ख़ानदान की हैसियत के मुताबिक़ कोई दक़ीक़ा उठा न रखिएगा। ख़र्च के लिये हज़ार मोहरें बी ख़ानम आपके पास आज शब को लेकर आवेंगी।"

इति पंचपुराणे प्रथमस्कंधे सप्तविंशतितमोऽध्यायः

अष्टाविंशतितम अध्याय

कांग्रेस-स्वप्न

कथा के एक रिपोर्टर साहब लिखते हैं कि कल रात को चारपाई साहबा की अमलदारी में बड़े-बड़े तमाशे देखता रहा। पहले तो कभी इस करवट कभी उस करवट का रंग कुछ देर रहा; क्योंकि मियाँ खटमल साहबान ने बड़ी सहानुभूति सूचित की. और वे दौड़-दौड़कर प्रेमालिंगन करने को आने लगे। फिर श्रीमती नेचर देवी के मनहूस फ़ौजी सिपाहियों अर्थात् मच्छड़ों ने वह बैंड बजाया कि नाक में दम आ गया। इसके बाद नींद ने, जिससे बढ़कर दुनिया को कुछ देर के लिये भुला देनेवाला दूसरा असर नहीं हो सकता, धर दबाया, और सामने कांग्रेस का जमाव दिखने लगा। हज़ारों नंगे, पगिया लपेटे, टोपियों से ढके सिर सामने आए। भेद इतना ही था कि इस सभा में महात्मा गांधी और मौलाना शौकतअली के चेले-चापड़ ही ज़्यादा थे; पर चारपाई की कांग्रेस में माडरेट, इक्सट्रेमिस्ट, गोरे अलबारी, खुशामद और दासत्व के प्रेमी, ख़िलाफ़ती, लबड़धोंधी, सभी थे।

इस महासभा में सबसे पहले जातीय गान "वंदे मातरम्" हुआ, जो कुछ और ही ढंग का था। उसमें कभी-कभी "ख़िलाफ़तम्" की आवाज़ भी आ जाती थी। जिसकी कुछ-कुछ नक़ल यों हो सकती है—

"वंदे ख़िलाफ़तम्।

रूम प्रेम विकसित करनेवाले ग़ाज़ी वर शहीद के जाले मुसलिम वृंद-विनोद विहारिणीम्; ऐक्यकारिणी मातरम्। वंदे ख़िलाफ़तम्।"

गान के बाद अभ्यर्थना-कमेटी के सभापति की वक्तृता भी निराले ढंग की थी। पंजाब का सब मरसिया कांग्रेस ने गाया। इसमें अमृतसर को करबला कहा गया, जलियाँवाले बाग़ में मर जानेवाले हज़रते शहीद और उनको मारनेवाले डायर और

श्रो' डायर-पंथी यज़ीद के समान कहे गए । इसको सुनकर चारों तरफ़ बड़ा जोश फैल गया । अब एक मोटे साहब उसी अंदाज़ की गाली-गलौज करने लगे, जैसी गोरे अख़बार किया करते हैं। चारों तरफ़ से अलग-अलग शब्द आने लगे, और महासभा में तरकारी-मंडी के समान ग़ुल मचने लगा । सभा के कर्णधारों ने शांति स्थापित करने की बड़ी चेष्टा की । वे प्लेटफ़ार्म पर आकर "ऑर्डर-ऑर्डर" का मंत्र जपने लगे । इससे कुछ फल नहीं हुआ । फिर डेलीगेटों के हाथ जोड़े गए ; किंतु उसका फल भी नहीं निकला, और सबने एकस्वर से कहा—"वंदे ख़िलाफ़तम् ।"

इसके बाद एक कविराज बुलाए गए। आपने अपना भाषण कविता में ललकारकर कहना शुरू किया । वह कुछ ऐसा था कि लोग ध्यान लगाकर सुनने लगे, और थोड़ी देर के लिये हुल्लड़ कम हो गया ।

कविराज का काव्य-पाठ

अपनी-अपनी डफली भाई, अपना-अपना राग ;
खसम अलापै दादरा, अरु जोय रचाई फाग ।
फूट-भवानी को तुम सुमिरौ, यह है सबकी नानी ;
जो इस देवी को नहिं माने, उसकी है नादानी ।
कौरव-पांडव खूब लड़े थे, भारत जंग मचाया ;
बल खोया, सुख ले कर धोया, चली कलह की माया ।
फिर यादवदल के दल ने, झगड़े की धूम मचाई ;
स्वारथ, माया, घृणा, नीचता सारे देश समाई ।
मत के झगड़े घोर चले, फिर खंडन-मंडन आए ;
वीर बली कमज़ोर बने, सब बैठ गए मुँह बाए ।
मुसलमान तब कूद पड़े, हा-हाकर झपटे भाई ;
मंदिर तोड़े, धर्म बिगाड़े, लूटे लोग-लुगाई ।

फूट देवता ने तब भी, फैलाई अपनी माया ;
मियाँ वली और मुग़ल छली को झटपट मार भगाया।
ब्रिटिश राज की गड़ी पताका, उल्ला-मुल्ला भागे ;
भए प्रसन्न लोग, समझे, बस, भारत के दिन जागे।
राजा-रानी पाकर हिंदू-प्रजा सभी हरषाई ;
कहने लगे लोग कलियुग में, सतजुग-शोभा आई।
यह तो सब कुछ हुआ, मगर यक नया धर्म फिर आया ;
उसने सबको चेला करके, ख़ूब़ी स्वाँग रचाया।
चला नौकरी-धर्म, सभी नौकर बनने को धाए ;
साहब नौकर, बाबू नौकर, घर-घर नौकर छाए।
नौकर लाट, गवरनर नौकर, नौकर जज्ज सुहाए ;
धरमों के उपदेशक नौकर, चीख़ रहे मुँह बाए।
नौकर बड़े बने साहब थे, छोटे हिंदुस्तानी
मची नौकरी की लीला तब, फूट चली मनमानी।
नौकर किसको क्या देता ? उसके पल्ले ही क्या था ?
चंद रोज़ का मालिक बनकर, कुरसी पर बैठा था
थोथा मालिक होकर वह फिर कर सकता था क्या ही;
ऊपर स्वर्ण मुलम्मा था, पर अंदर पूरी स्याही।
अब सब देखो दौड़े बनकर होमरूल के प्रेमी ;
कितने उसमें देशभक्ति के, निकले पूरे नेमी।
दौड़े गए विलायत, जाकर लंदन धूम मचाई ;
राजा, राजसभा से जाकर, रोकर कथा सुनाई।
नौकरशाही ने अपनी कुछ और रागिनी गाई ;
तू-तू-मैं-मैं की लीला अब, चली ज़ोर से भाई।
बड़े-बड़े झगड़ों के रगड़े, दोनों दल ने झगड़े ;
गोरे अख़बारों ने देखो, डाल दिए फिर बगदे।

जिस घर में हो कलह रात-दिन, उसमें मंगल कैसा;
कुशल नहीं है राज्य, देश की, जिसमें झगड़ा ऐसा।
यह विचारकर साहबजी मिस्टर ने चाल निकाली;
उस पर फिर स्वारथ साहब ने धूल सरासर डाली।
उलटी-पुलटी लगे सुनाने, बोले जो मुँह आई;
रौलट-ऐक्ट चले चलाने, ऐसी मत बौराई।
अड़े गांधीजी अंगद-से, पूरा पैर जमाया;
हड़तालों की धूम मची तब, नूतन झगड़ा आया।
उस पर अब फिर चली ख़िलाफ़त, दूनी आफ़त आई;
डायर, ओ' डायर ने बाक़ी सारी धोय बहाई।
अब है फूट, लड़ाई, झगड़ा, गाली-गुफ़्ता ख़ासा;
होय कांग्रेस में जगतीतल, देखे ख़ूब तमासा।
अपनी-अपनी डफली भाई अपना-अपना गाना;
लड़ो, मचाओ कलह ख़ूब, यह हिंदुस्तानी बाना।
बनी कांग्रेस जब तो पूरी, चिड़ीमार की टोली;
चें-चें, चूँ-चूँ, कें-कें, कों-कों, अजब-अजब है बोली।

कविराज की राग-माला से यह साफ़ हो गया कि महासभा ने भी नवीन केंचुल बदली थी। कोई समय था कि उसमें सुरेंद्रनाथ बनर्जी की तूती बोलती थी। फिर सूरत में लीडरों का सौतियाडाह फैला। सर फ़ीरोज़शाह मेहता राजा बनाए गए। फिर पूने के पंडितों की ख़ूब चली, और अब ख़िलाफ़त-दल ने सबको मार भगाने का लँगोटा बाँधा है। इन सब बातों का विचार निद्रादेवी के थिएटर में कुछ ऐसे ढंग दिखाने लगा कि सामने एक नया दृश्य आ गया।

अब सभापतिजी खड़े हुए, और बोले—दुनिया हेच है। सबको एक दिन मरना है। लिहाज़ा लेक्चरबाज़ी के बदले कांग्रेस में

एक कवि-समाज का जलसा हो जाय, और ख़िलाफ़त-इलाफ़त के आपस के झगड़े उसी में तय कर दिए जायँ। बात यह है कि अब लोगों को अपनी टाँगों के बल खड़े होने का पाठ पढ़ाया जाता है; अतएव हिंदुस्तानी अगर टाँग के बल खड़े नहीं हो सकते, तो घुटनों के बल बैठ ज़रूर सकते हैं।

इस भूमिका के बाद समस्या दी गई—"भागते हैं", और आनन्-फ़ानन् में पूर्तियाँ होने लगीं—

लाला लाजपतोवाच—

बात इंसाफ़ की कह दो, तो ख़फ़ा भागते हैं;
हक़ के देने में तो साहब ये सफ़ा भागते हैं।
अब तो हाकिम हुए माशूक़ से बढ़कर हज़रत;
क़त्ल करने की न पाते हैं सज़ा, भागते हैं।
जालियाँ बाग़ में क्या राग हुआ याद करो;
ज़िम्मेदारी से मियाँ लाट-गदा भागते हैं।

मिस्टर सुरेंद्रनाथोवाच—

क्या कहूँ, क्या करूँ! हैरान हूँ मैं तो हैं-हैं;
जिनसे कहता हूँ, वही होके ख़फ़ा भागते हैं।
मैं समझता था कि सब लोग ही मिस्टर होंगे;
अब तो अँगरेज़ियत से लोग सफ़ा भागते हैं।
वह है दुश्मन वतन का, जो न रिफ़ारम माने;
करके बैकाट जो ग़ुल-शोर मचा भागते हैं।

मियाँ शौकतअली उवाच—

शान टर्कों की हमें यार, लुभाती है हमेश;
हम हैं वे लोग, जो दंगल से नहीं भागते हैं।
भागते माडरेट जी हुज़ूर के चेले जो हैं;
क्या ख़िलाफ़त के बहादुर भी कहीं भागते हैं?

ताल्लुक़ अब क़तः सरकार से फ़ौरन् कर दो ;
मिलने से हाकिमों के हम तो यहाँ भागते हैं।

पंडित मोतीलाल नेहरू उवाच—

मैंने काहूँ-सी वकालत को अरे छोड़ दिया ;
लोग पैसे की मोहब्बत से नहीं भागते हैं।
बच्चे स्कूल में जाने से सरासर रोको
अक़्ल, हिम्मत व सराफ़ यार यहीं भागते हैं।
बायकाटी बनो ज़माना यही कहता है ;
जो बहादुर हैं, वे झगड़े से कहीं भागते हैं।

महात्मा गांधी उवाच—

सच तो है यार, मुसलमान हमारे हैं दोस्त ;
दोस्ती से निरे मुरदार असर भागते हैं।

श्रीमालवीयजी उवाच—

देश की भक्ति परम कृत्य है स्वदेशी का ;
इससे क्या देश के सेवक भी कहीं भागते हैं।
देख लो ख़ूब न करना कभी कौंसिल का त्याग ;
अब भी अन्याय के सरदार यहीं भागते हैं।
किस लिये न्याय के पद से हटाएँ अपना पग ;
जब कि अन्याय-भरे डरके नहीं भागते हैं।

पंडित गोकर्णनाथ मिश्रोवाच—

हम तो कुछ और समझते थे यार, पबलिक को ;
बात कुछ और ही दिखती है, सभी भागते हैं।
एक कहता है, अलग छोड़ दो वकालत को ;
दूसरे कौंसिलों से यार नहीं भागते हैं।
शान-शौकत न चले, छोड़ दें जो हम ताल्लुक़ ;
कांग्रेस छोड़के हम झट से अभी भागते हैं।

इसके बाद महासभा में भगदड़ मच गई। सिकत्तर साहब अपनी सिकत्तरी का थैला फेंककर भागे। कुछ लिबरल अपनी पगिया सँभाल के नौ-दो-ग्यारह हुए। सब मिलकर गीत गाने और कहने लगे—"भागो-भागो यार कांग्रेस से।"

मौज उड़ाते गाते खाते कैसी आफ़त आई;
क़िस्मत की खूबी देखो यहाँ कहाँ से लाई?
हम तो साहब पूरे मिस्टर होने को थे राज़ी;
कोट-बूट-पतलून धरे योरप के सब थे साजी।
मेंबर बनके मौज करेंगे, मन में यह आती थी;
लीडर बनके ऐंठ-अकड़ की पूरी मन भाती थी।
अरे गांधीजी को देखो, भारी आँधी आई;
भागो-भागो कांग्रेस से अब है नहीं समाई।
पगिया थामे भाग चलो बस, जान बचाओ प्यारे;
यहाँ रहे, तो ख़ैर नहीं है, लिबरल कहें पुकारे।

इस गीत को गाते हुए गिरते-पड़ते लोग भागते दिखाई दिए। कई मुँह के बल रपट पड़े, और कई ऐसे धड़ाके से गिरे कि बड़ा भारी धमाका हुआ। आँख खुल गई, और चारपाई की नाटक-लीला की तरंगें मन में उठने लगीं।

इति पंचपुराणे प्रथमस्कंधे अष्टाविंशतितमोऽध्यायः

एकोनत्रिंश अध्याय

टेसू-शास्त्र

टेसू सार्वभौमिक शब्द है। इसके अंदर संसार की सभी बातें आ जाया करती हैं। अनुमान होता है कि जब पाश्चात्य देशों के ब्रह्मा 'बाबा आदम' उन्हीं देशों के भगवान् खुदा के बाग़ में रहा करते थे, उसी समय इस शास्त्र की रचना हुई होगी। बाबा

आदम हमारे महादेव बाबा के पंथ पर चलनेवाले ज़रूर थे ; क्योंकि वह नंग-धड़ंग रहा करते थे । और, वह देवाधिदेव के अर्द्ध-नारीश्वर रूप से उपासक रहे हों, तो आश्चर्य नहीं ; क्योंकि इनकी बीवी श्रीमती हवादेवी उनके अंग की हड्डी से बनाई गई थीं, ऐसा इंजील-महापुराण में लिखा है ।

कुछ दिन के बाद उनका वह दिगंबरी धर्म जाता रहा, वह नाग देवता के बहकाने में आ गए, और नंगा-धर्म छोड़कर कपड़े पहनने लगे । यह नाग देवता 'शैतान' देव के अवतार थे । इन्होंने बड़ी गड़बड़ी पैदा कर दी । खुदा भगवान् की अमरावती अर्थात् बहिश्त-नगरी में बग़ावत पैदा कर दी । बिहिश्त की ब्युराक्रेसी अर्थात् हाकिम-मंडली के पैग़ंबर चूक गए । उनको फ़ौरन् मार्शल लॉ क़ायम करके शैतान और उनके साथियों को काले पानी का दंड दे डालना चाहिए था । पर किसी कारण से ऐसा नहीं किया गया । या तो उस समय स्वर्ग-कौंसिल में लिबरलदल के लोग मंत्रीवर्ग में होंगे, या मैकोडायर के समान शासक अधिकार के सिंहासन पर न होंगे । ख़ैर, मतलब यह कि स्वर्ग में मार्शल लॉ का चरख़ा नहीं काता गया, और शैतान साहब ने अपनी खँजड़ी खूब बजाई ।

उसी समय से टेसू-शास्त्र की सृष्टि हुई । आरंभ में जिस प्रकार टेसू-धर्म चला, और संसार के लोगों का उससे जितना उपकार हुआ, उसकी कथा बड़ी विस्तृत होनी चाहिए ।

अब कलिकाल में टेसू के माननेवाले ग़रीब लोग ही रह गए हैं । ये सर्वदा दशहरे के पर्व पर घर-घर अपना उपदेश सुनाया करते हैं । पर मियाँ मोहर्रम साहब का जब से दशहरे पर धावा हो गया, तब से इस चौराहा-उपदेश में भी बाधा पड़ गई है । आशा थी कि मासेस (अर्थात् प्रजा) के पंच होने की पगिया लपेटनेवाले इंडो-

ब्रिटिश सभा के लोग टेसूवालों को इस संकट से बचावेंगे; पर उनके कानों पर ज़रा भी जूँ नहीं रेंगी। इस चुप्पी-धर्म से उनकी पागिया के बल तो ढीले हो गए, पर टेसू-भक्तों का कुछ भी काम न हुआ।

कहते हैं, "ज़बर्दस्त मारे, और रोने न दे।" मियाँ मोहर्रम साहब के मारे बेचारे टेसू अब की परदे की बीबी बना दिए गए। वह रोने और गाने ज़रा भी नहीं पाए। टेसू-साहित्य के कुछ नमूने इधर-उधर ढूँढ़ने से मिले हैं। वे ये हैं—

(१) इंपीरियल टेसू

अब की टेसू फिस्समफिस्स;
है साहब को आई रिस्स।
चेम्सफ़ोर्ड के चले सुधार;
मांटेगू का देखो तार।
रौलट-बिल की आँधी आई;
यारों ने परकटी उड़ाई।
कौंसिल-अंदर चली कमान;
उड़ गई चुटिया, रह गए कान।
कर लो कोरी टें-टें गान;
साहबजी की ऐसी तान।
नाच हुए कौंसिल में खूब;
आए पंजाबी महबूब।
उन पर आशिक़ हाकिम लोग;
ये ही हैं कुरसी के जोग।
मारूँगा भाई, मारूँगा;
जा लंदन पूकारूँगा।
देखो यारो, कैसा चोंगा;
कौंसिल में से निकला घोंघा।

× × ×

यह धाँधा पहुँचा मुलतान ;
अफ़ग़ानों की चढ़ी कमान ।
सभा-समाजों का हो अंत ;
मैकोडायर बड़े महंत ।
संतों की है ये ही चाल ;
बेशक मुर्ग़ी करो हलाल ।
पकड़-धकड़ पर काला पानी ;
राजभक्त की मर गई नानी ।
चला कौंसिली बक-बक-जंग ;
वहाँ हुए टेसू के रंग ।
अपनी-अपनी बजती डफली ;
बातों के लच्छों की थपली ।
वह मारा भाई, वह मारा ;
अब तो टेसू ने ललकारा ।
जिएँ मालवी, शारमा चाँद ;
कुरसी पेंच लगाए फाँद ।
हुए गांधी तब सरनाम ;
विनसेंट जिनको करे प्रनाम ।

(२) लोकल टेसू

हुआ इलेक्शन अब की कैसा ;
हरी लियाक़त, जीता पैसा ।
मजलिस का फिर बदला रंग ;
नई मेंबरी बढ़ी उमंग ।
इस उमंग में निकला मूस ;
बगड़ेबाज़ी की है सूस ।
तब मुल्ला - ने किया विचार ;

सूस-मूस का होय शिकार।
इस शिकार के होय ख़िलाफ़;
चित्रगुप्तजी करो मुआफ़।
पब्लिक में हो घर की मात;
होमरूल को मारो लात।
खाएगा, पर खाएगा;
मुंशी तो तोंद बजाएगा।
यह मजलिस की है करतूत;
हर विभाग में फैले भूत।
घड़े मियाँ ने मोटर पाई;
चेलों ने परसादी खाई।
इसका कुछ नहिं होय ख़याल;
माल मुफ़्त है खूब हलाल।
जाने दो भाई, जाने दो;
नहीं इलेक्शन आने दो।
गर मुंशी ने पाया दंड;
हुई मेंबरी बस, भरभंड।

इति पंचपुराणे प्रथमस्कंधे एकोनत्रिंशतितमोऽध्यायः

त्रिंश अध्याय

होली का कवि-समाज

अब की साल महँगी की कृपा से जब दावत अदावत दिखने लगी, और गुलाल में अनेक प्रकार के लाले नज़र आने लगे, तो यही क़रार पाया कि होली के अवसर पर कवियों का दंगल कर दिया जाय। कहावत है—"हर्रा लगे न फिटकरी, रंग चोखा उतरे।" जिसका मतलब यह ठहरता है कि लागत कुछ न लगे, किंतु

उत्सव हो जाय। इस सिद्धांत को पूरा करने के लिये ऊपर लिखी बात ही समयोचित जान पड़ी। फिर यह भी था कि इदानींतन कवियों की सृष्टि, बरसाती मेंढकों की उत्पत्ति से नातेदारी रखती-सी मालूम होती है। ये घर-घर नहीं, तो हर समाचार-पत्र के कालम में कविता के कीड़े बिलबिलाने की शोभा दिखाया करते हैं। कभी-कभी कवियों के गुरु की पगिया बाँधनेवाले लोग बड़े-बड़े चूड़ामणि प्राचीन कवियों की पगिया पर हाथ साफ़ करने की सफ़ाई दिखा देते हैं। ऐसी दशा में कवियों का अखाड़ा लगा देना ही मुनासिब समझा गया।

बस, अब क्या था? सूचना निकलते ही कवियों की भीड़ टीडी-दल के समान आ टूटी। सभा-मंडप में कहीं पर तिल रखने की जगह बाक़ी नहीं रही। चारों ओर खचाखच भीड़ में खोपड़ियों के सिवा और कुछ दिखता ही नहीं था। बड़ी काँयँ-काँयँ की राग-माला के बीच में एक साहब खड़े होकर यह प्रस्ताव करने लगे—

महाशयजी, सुनो व लेडीगन;
मुझको कहते हैं लोग जी थप्पन।
मेरा प्रस्ताव तो यही है आज;
सभापति होयँ पंच महराज।
पंच से बढ़के कौन है जग में;
काव्य जिसके भरा है रग-रग में।

थप्पन कवि के इस प्रस्ताव का अनुमोदन व्रजभूमि से आए पिया ने यों किया—

पंच प्रपंच भरे भरपूर, सु अच्छर-सत्रु बने नित आवें;
पंच के पोथिन के नित पोथ सरस्वती के सुभकार कहावें।
ऐसे बने गुनग्राहक तो सब धानहु बीस पसेरी बिकावें;
यों गुनमंडित पंडित पंचजू आज सभापति को पद पावें।

तीर्थजी ने इस प्रकार सुनाई—

पोथी बेचन माहिं वस, पंच बड़े हैं सेठ ;

यह सबके सरदार हैं, हैं सबसे यह जेठ ।

इसके बाद बड़ी तड़ातड़ी की करतलध्वनि के साथ पंच महाराज सभापति के पद पर जा बैठे। सभापति के पद पर बैठकर 'पंच' महोदय ने कहा—

मुझको आपने सभापति बनाया, तो आपने अपनी सभा ही की परतिष्ठा बढ़ाई; क्योंकि मैं हूँ पोथी-कुबेर, यानी पुस्तकों का बड़ा व्यापार करता हूँ। जैसे तालाब की शोभा कमल से होती है, वैसे ही तुम्हारी समाज का "हाजरात" होगा मेरे को सभापति करने से। देखिए, मेरे द्वारा कितने मूर्ख पंडित हो गए। लाखों जन पोथियाँ पढ़ने लगे। ख़ैर, यह तो आप सब पर विदित है। पर सभा के क़ायदे से मैं आपका धन्यवाद करता हूँ।

फिर कहा—सभा का पहला काम है समस्या की पूर्ति करना। पहली समस्या आज के लिये है "काम की"

सबके पहले एक कवि ने अपनी पूर्ति-माला यों सुनाई—

हृदय में जो तेरे है कुछ नाम की ;

यह इच्छा है मिथ्या, न कुछ काम की।

अहर्निश है पैसे की कलकल मची ;

ख़बर है धरम की न कुछ राम की।

लगाता है बरसों का मन, क्यों हिसाब ;

न कुछ बात निश्चित है जब याम की।

इसके बाद दूसरे महात्मा ने अपना ढंग यों सुनाया—

रिफ़ारम मिले भी तो क्या होयगा ;

ख़ुशामद ने जो गर पकड़-थाम की।

बटेंगे अगर नौकरी के इनाम ;

तो कौंसिल रहेगी न फिर काम की।

तीसरे ने कहा—

टपकते हैं महँगी से आँसू यहाँ;
हुई ज़िंदगी बस है बेदाम की।
रिफ़ारम के पीछे दिवाने हुए;
पड़ी है इन्हें नाम-बेनाम की।

इन पूर्तियों के बाद मि० पंच बहुत मुँह बनाकर बोले—
प्यारे कविगण!

मालूम होता है, आप लोगों को भी सभ्यता का भूत चिमटा है। हर बात में सभ्यासभ्य का ध्यान उसी प्रकार रहता है, जैसे श्राद्ध करने में सव्यापसव्य का झंडा लगाया जाता है। यह होली की मीटिंग, मजलिस या सभा है। यहाँ कुछ दादा का श्राद्ध नहीं है, जो सभ्यासभ्य का झमेला लगाया जाय। जो कविता सुनाई गई, वह बिलकुल खड़ी और लोटी भाषा के ढंग की है; इस प्रसन्नता के उत्सव के लिये उपयुक्त नहीं है। अतएव समस्या का झगड़ा न लगाकर कवियों को चाहिए कि समय के अनुसार और ऐसी चिपकती कहें, जैसी छापेख़ानेवालों की लेई।

इस पर आनंद की ध्वनि के मारे सभा-मंडप गूँज उठा, एक पतलून-धारी महात्मा खड़े हुए, और बोले—
हाज़रीन जल्सा!

पंच साहब ने बड़ी दूर की सोची। यह 'ऊर्ती-पूर्ती' का पुराना फ़ैशन बिलकुल निकम्मा, बेकार और वाहियात है। कविता वही है, जो फूटे मुँह से निकले। फूटे मुँह के माने हैं स्फुट रूप से प्रकट हो। कविता क्या, विद्या आप-ही-आप फूटे मुँह से प्रकट होती है। मेरे परम मित्र मि० भीगी बटेर जब बी० ए० पास होकर बग़दादी ऊँट की तरह बलबलाने लगे, तो उन्होंने हिंदी के अखाड़े में कुलाँच

मार दी। भगवान् जानता है, उस समय उनको हिंदी के अक्षर भी नहीं आते थे। पर वाह रे फूटा मुँह! एक दिन उस थूथड़ी में साहित्य के पानी का ज़ोर चला; वाह! क्या बात थी! रंग जम गया! कविता के फ़व्वारे छूटने लगे! उसको देखकर बड़े-बड़े हार मान गए। नौबत यहाँ तक आई कि सब कपड़े बिगड़ गए।

उस दिन से काव्य-सूत्रों में एक नया सूत्र यह बना है कि "बी० ए०, एम्० ए० भाषा भट्टाः।" इसका मतलब यह है कि जो एक भाषा में बी० ए०, एम्० ए० हो गया, वह भट्ट हो गया। देखिए, मैं एक नया भाव सुनाता हूँ—

नाम में डिगरी तो है, पर है परेशानी की दुम;
गर मिली सरविस नहीं, होने लगी नानी की दुम।

इसके बाद एक अल्हैत आए, और यों कह चले—

जरमन ज्वान भगाए रन ते, रही बीरता हिंदुन क्यार;
चहुँ दिसि चमकी बिज्जु-छटा-सी, भारतवासिन की तरवार।
हिश्राँ की बातें छोड़ो ज्वानो, अब आगे के सुनो हवाल;
सखी-भेरे बनावाटे बरमा, फ़ौज भए भरती तत्काल।
नक़ली बरमा भए सिपाही, पहिनि सिपाही की पोशाक;
खटपट अकड़ चले चौकन मा, जिनकी बड़ी नसे को थाक।
खाय-खाय के अधिक मोटाए, भिल्ल बने बंदर-से आप;
अब धावे की भई तयारी, नक़ली बरमा लागे काँप।
थर-थर होत बीर बरमा तब, पेट भए पिचकारी भाय;
चलन भयो अपराध इन्हैं, तब, अब धावे की कौन चलाय।

यह दास्तान समाप्त नहीं होने पाया था कि एक होलाष्टक-भगत सामने आए, और कहने लगे—ये सब बेमेल बातें हैं। हमारी होली की कविता सुनिए—

अरर कबीर

रौलट बिल ने ज़ोर मचाया, गड़बड़ मची महान ;
गांधीजी ने रंग दिखाया, जाने सकल जहान ।
नतीजा मनमानी करने का है ।

अरर सुनो हमार कबीर

नरम गरम ने करी फजीती, तू-तू मैं-मैं रार ;
राँड़न की-सी प्रभा दिखाई, करते जगत पुकार ।
रिफारम सबै हमारी माया है ।

अरर कबीर

चाल लखनवी साहब भावै, लखनऊ बने प्रधान ;
रोज प्रयागी ताने मारैं, जाने सकल जहान ।
भला यह रंग सौतियाडाही है ।

इसके अनंतर सभापति को धन्यवाद देकर सभा विसर्जित हुई ।

इति पंचपुराणे प्रथमस्कंधे त्रिंशत्तमोऽध्यायः

एकत्रिंश अध्याय

तर्पणराज

हिंदू-समाज का आचार एक विचित्र प्रकार का नवीन और पुरानी बातों का अचार होता जाता है । सब तरफ़ मामला गंडेदार है । कर्म और जन्म के बड़प्पन के द्वंद्व युद्ध खूब देखने में आ रहे हैं । दुनिया-भर की जालसाज़ी विद्या में पारंगत लोग अब भी अपने को धार्मिक और बड़ा समझने में ज़रा नहीं हिचकते । पितृपक्ष के दिनों में एक लाला गोमती के तट पर पितरों को पानी दे रहे थे । जान पड़ता था, वह धर्म के सगे नहीं, तो सौतेले नातेदार ज़रूर

होंगे। पर अनुसंधान कुछ और ही छटा प्रकट करता था। लाला का सूद पर सूद खाना, ग़रीबों को हलाल करने की अवस्था में ला देना, कचहरी में नित्य गंगाजलियाँ और झूठी गंगाजलियों के प्रवाह उत्पन्न करना आदि ऐसे कर्म थे, जो शायद सौ जन्म में भी उनको पाप के बोझ से लादे रखने के लिये काफ़ी थे। उनको तर्पण करते देखकर बाबा महाशय ने अपना एक नवीन तर्पण आरंभ किया, जो इस प्रकार था—

(१)

भारत माहिं मचे हंगाम;
उलट-पलट गे सगरे काम।
भारतवासि बने बेकाम;
पाए 'काफ़िर', 'नेटिव' नाम।
पास न इनके एक छदाम;
बस, अब कोरी "तृप्यन्ताम्"।

(२)

ब्रह्माजी बहु सृष्टी करी;
सो अब हिंदुन भ्रष्टी करी।
नारी दुखी, दरिद्री कीन;
विधवा, मूरख, मैली दीन।
लेश न सुख को इनके धाम;
बस, अब कोरी "तृप्यन्ताम्"।

(३)

विष्णु आप लछमी के नाथ;
रहैं भारती ख़ाली हाथ।
उद्यम, रोज़गार सों हीन;
होय रहे कौड़ी के तीन।

भए धर्म सों विमुख निकाम ;
बस, अब कोरी "तृप्यन्ताम्"।

(४)

रुद्र विनास्यो छिन में काम ;
इतै काम के बने गुलाम।
रामजनी की पूजा करैं ;
मिथ्या, वंचकता में परैं।
इन्हैं सत्य सों रह्यो न काम ;
बस, अब कोरी "तृप्यन्ताम्"।

(५)

सूरज तेजपुंज के राज ;
यहाँ तेज को रह्यो न काज।
वीर खुशामद के महराज ;
ब्राह्मन, ठकुरसुहाती लाज।
बनिया करैं बहादुर काम ;
बस, अब कोरी "तृप्यन्ताम्"।

(६)

देव गए मंदिर सों भाग ;
जब महंत के चले चिराग।
मंदिर बने विहार समाज ;
घूराघूरी के हित साज।
चित सों कोउ न लेवै नाम ;
बस, अब कोरी "तृप्यन्ताम्"।

(७)

गए वेद तुम वेदव धरे ;
रेल-तार-पहियन सों भरे।

वांछित अर्थ गपोड़े करे ;
जब वेदव के फंदन परे।
करै न कोउ अब दंड-प्रणाम ;
रही सु कोरी "तृप्यन्तान्"।

(८)

छंद विटेवा के कर भए ;
पिंगलराज वृड़-से गए।
ब्रजभाषा के शत्रु हुए ;
चलैं मरैठी की धुन लए।
लहिए छंद-राशि विश्राम ;
इत अब कोरी "तृप्यन्तान्"।

(९)

अब पुराण की निंदा चली ;
कथा न काहू लागत भली।
व्यास फिरैं कूचा अरु गली ;
लोग कहैं उन कपटी-छली।
आचारज पुरान के नाम ;
बस, अब कोरी "तृप्यन्ताम्"।

(१०)

छापा सबै अचारज कीन ;
घर-घर क़लम लई चिरकीन।
फ़ारम एक जबै लिख लीन ;
बनि लिक्खाड़ भए परवीन।
अब आचार्य, रहौ बेकाम ;
गहु यह कोरी "तृप्यन्ताम्"।

(११)

बुद्धिहीन भे पंडितराज ;
पड़ी सबै विद्या पै गाज ।
देव न मानै मरी समाज ;
पूजत 'पत्थर' आवै लाज ।
जाय देव, करिए आराम ;
इत बस, कोरी "तृप्यन्ताम्" ।

(१२)

रंडिन प्रेम-नेम की धूम ;
रहे युवा तिन जूती चूम ।
मेम चलैं मदमाती झूम ;
जिन पै मरे विदेशी घूम ।
बस, अप्सरा भईं बेनाम ;
लखि इत कोरी "तृप्यन्ताम्" ।

(१३)

लेडी सब समाज-सिरताज ;
बीबी करैं महल मैं राज ।
मिस क्वामी वामी की साज ;
बीबी बेगम बड़े मिजाज ।
देवी 'चेचक' को अब नाम ;
तिन हित कोरी "तृप्यन्ताम्" ।

(१४)

जितै हेम के पर्वतराज
तितै पेट-भर नहीं अनाज
दिन-भर मरैं पेट के काज
तहुँ भूख की मिटै न खाज

व्यर्थ भए पर्वत गुन-ग्राम ;
बस, अब कोरी "तृप्यन्ताम्"।

(१५)

जबहिं जहाज लगायो पाप ;
चले कूप-मंडूक प्रलाप।
बरबोसू बन मिटिगे आप ;
नास भए पूरवज-प्रताप।
सागर सों अब रह्यो न काम ;
बस, है कोरी 'तृप्यन्ताम्"।

(१६)

घर-घर माहिं मची तकरार ;
पिता-पुत्र सों युद्ध विचार।
जगसों भ्रातृ-भाव की सार ;
जाने कौन इतै उपकार।
बनमानुष भे मानुष नाम ;
बस, अब कोरी "तृप्यन्ताम्"।

(१७)

मानें वही, जु देखें आँख ;
पक्षिन्ह गनै मास बिनु पाँख।
चारवाक बनि बाबूराम ;
यक्ष-रक्ष को लेत न नाम।
ईसुरहू न करें परनाम ;
बस, अब कोरी "तृप्यन्ताम्"।

(१८)

गुरु बसिष्ठ प्रोहित के मान ;
रहे बड़े जग में जिन गान।

तिनके भाय बने अब प्रेत ;
दान-कुदान सबै कर लेत ।
तिनकी नियत टके मा खाम ;
अरु बस, कोरी "तृप्यन्ताम्" ।

(१६)

नारद ऋषि-कुल के सिरताज ;
तिन कहँ सुनौ हाल अब आज ।
लोग लड़ाई कारन कहैं ;
इनसों नितप्रति बचनो चहैं ।
वह इत होय रहे बदनाम ;
बस, अब कोरी "तृप्यन्ताम्" ।

(२०)

भृगु, तुमसों हरि खाई लात ;
अब तुम्हरी कोउ सुनै न बात ।
दर-दर ब्राह्मन मॉंगत फिरैं ;
पैसा हेतु नरक मा गिरैं ।
सहैं निरादर आठौ याम ;
बस, अब कोरी "तृप्यन्ताम्" ।

(२१)

सनक, सनंदन, सनत्कुमार ;
तुम अबहूँ लौं रहे कुँआर ।
पै तुम कोउ काम के नाहिं ;
लही न कीरति तुम जग माहिं ।
तासों यह अब सुनौ मुदाम ;
तुम कहँ कोरी "तृप्यन्ताम्" ।

(२२)

बने समालोचक के रूप ;
सुंदरता हू गनैं कुरूप ।
नकल करैं उच्छिष्ट-समान ;
निंदा करिबे के हित बान ।
पुनि लिखिबे को रह्यो न कान ;
बस, अब कोरी "तृप्यन्ताम्" ।

(२३)

कलितर्पणमिदं दिव्यं देवानामपि दुर्लभम् ;
विधिना क्रियते येन तेन आर्यत्वमाप्यते ।
इति पंचपुराणे प्रथमस्कंधे एकत्रिंशतितमोऽध्याय:

द्वात्रिंशत् अध्याय

नवीन व्याकरण

तांद को मांस का लोंदा बनाए, खजूर के पेड़ की-ऐसी नाक जंनाए, सींक के-ऐसे हाथ-पैर लगाए, कोट-पतलून के थैले में बंद, आनंदकंद मिस्टर पंच को देखकर चेलों को मोहनी चिमट गई। उनको देखकर मिस्टर पंच ने यह व्याख्यान सुनाया—"हत्तुम्हारे चेलों की दुम में फूस का रस्सा! अबे न सलाम, न बंदगी, न गुडमॉर्निंग! अरे हैं न साष्टांग, न दंडवत, न प्रणाम! यह गुस्ताखी, यह शोख़ी! जी में आता है, तुम सबको शाप दे दूँ। लो, सुनो, तुम जो पंच को देखकर मोहनी के लिपट गए, जाओ बच्चा, तुमको उम्र-भर अक़्ल से दुश्मनी रहेगी, ह्रस्व-दीर्घ का बोध नहीं रहेगा, बेडौल रहोगे, तुम्हारी सारी पोथी फट जायगी, और बही बही-बही फिरेगी। और...... ।"

अब सब चेले "हें-हें" करके दौड़े। "आइए, आइए, बंदगी, तसलीम, सलाम" कहकर खड़े हो गए। हाथ जोड़कर व्याकरण-शास्त्र की शिक्षा देने की प्रार्थना करने लगे। कृपालु पंच सबका अपराध क्षमा करके उनको यों सबक़ पढ़ाने लगे—

(१)

ब्राह्मण। इस शब्द का अर्थ है ब्रह्माणं जनाति यः स ब्राह्मणः। अर्थात् ब्रह्म को जाने, सो ब्राह्मण।

उसका बना 'बाँभन', जिसका विग्रह हुआ—बाँ-बाँ इति भणति स बाँभनः, अर्थात् बैल।

अब हुआ बिरहमन। अर्थ यह निकला—"विरहे मनः करोतीति विरहमनः।" रंडी के प्रेम से विरह में रहनेवाला आशिक़ज़ाद, लंपट।

(२)

क्षत्रिय। क्षतात् त्रायते यः स क्षत्रियः। अर्थात् रक्षक। उससे बना छत्री, जो बिना छतरी के पैर न धरे, यानी नज़ाकत का पुतला। या छयतरी, अर्थात् जिसकी सब तरी यानी दौलत छय हो जाय, याने कंगालदास।

(३)

वैश्य। यह विशप्रवेशने धातु से बना है। किसी-किसी आचार्य ने इसे वेश्या का पुल्लिंग कहा है। कालांतर में 'य' का लोप हो जाने से यह वैस बन गया। वैस वायस का अपभ्रंश है। अतएव वैस्य का अर्थ हुआ कौआ, अर्थात् बड़ा होशियार। अब ब्राह्मणों के दान के विरोधी रिफ़ार्मर लोगों को—"वायसाः प्रतिगृह्णन्तु भमो चान्नं समर्पितम्।" कहकर श्राद्ध में इसी को बलि देनी चाहिए।

दूसरा नाम है बनिया, जिसका स्पष्ट अर्थ है बना हुआ, ऊपर से और अंदर से, और पूरा रँगा हुआ सियार।

(४)

महामहोपाध्याय। इसकी संधि इस प्रकार है, महा-महा उपाधि आय। अर्थ यह हुआ कि बड़ा-बड़ा झगड़ा है।

पंडित होकर दास-वृत्ति करना, खुशामद का आश्रय ग्रहण करना। थोड़ी विद्या को बहुत दिखाना, ये सब इसके झगड़े हैं। फिर जब महामहोपाध्याय दरबार में राजा के नीचे बैठे, तब झगड़ा ही ठहरा।

इसी के अंतर्गत उपाध्याय शब्द है, जिसको हिंदी में पाधा कहते हैं। उपाध्याय और अनाध्याय, दोनों भाई हैं; क्योंकि अनाध्याय में लोग पढ़ते नहीं हैं, और उपाध्याय के पास किसी को विद्या नहीं आती। रह गए पाधा, इसमें दो अक्षर हैं पा, धा। पा का अर्थ पैर, और धा का अर्थ है दौड़नेवाला। दोनों का अर्थ यह निकला कि पैर दबानेवाला और दौड़नेवाला, अर्थात् दासानुदास।

(५)

कचहरी। प्राचीन आचार्यों ने इसका अर्थ यह किया है—कचान् हरतीति कचहरी; अर्थात् जहाँ मुद्दई, मुद्दालेह, दोनों के बाल उलटे उस्तरे से मूड़े जाते हैं, वह स्थान, याने मूड़ने की जगह। इसका यह अर्थ ठीक होता है कि कच याने कच-कच, हरी याने ताज़ी। मतलब यह निकला कि जहाँ कच-कच सर्वदा हरी रहती है— झगड़ा समाप्त होने ही नहीं पाता, अर्थात् कलह की खेती।

(६)

गुरु। इसमें गकार के उकार को गुण करने से गोरू बनता है, जिसका अर्थ है बैल। यानी जिनके पास पढ़नेवाले बैल के उपमेय बना करते हैं। गुरु गुड़ से निकला है, अतएव गुड़ खाकर गुल-गुलों से परहेज़ करनेवाला गुरु, याने कर्म-भ्रष्ट।

(७)

मास्टर। इसका अर्थ है जिसकी आमदनी टर्र-टर्र करने पर हो, वह।

धार का अर्थ जीविका, और टर का अर्थ सरल है। भौंककर मग़ज़ खाली करने में जिसकी जीविका है, वह अर्थात् भैरव के वाहन का भाई। "द्वौ श्वानौ श्यामशबलौ वैवस्वतकुलोद्भवौ।" कहकर श्राद्ध में इसी से दो को रोटी दी जाने की विधि है।

(८)

गोस्वामी। गऊ के स्वामी। खुलासा अनड्वान् याने बैल। पढ़े-लिखे कुछ नहीं, समर्पण कराकर चेलों के पाप की गठरी लादनेवाले बलीवर्द। इसका गुप्त अर्थ यह है—गोस यानी कोना। वामी याने पीनेवाले। अर्थात् छिपकर बरांडी उड़ानेवाले हज़रत, शैतान के नातेदार। "अन्तः शाक्ता बहिः शैवाः सभामध्ये च वैष्णवाः।"

(९)

राजा। एक आँखवाले को कहते हैं। र और अजा इन दो टुकड़ों से यह शब्द बना है। अजा अर्थात् बकरी की तरह जो रहे, सो राजा। यह इसकी व्युत्पत्ति है। राजा का अर्थ हुआ बुज़दिल, और डरपोक। इनकी पत्नी को रानी कहते हैं। "रषाभ्यांनोणः" सूत्र से नकार का णकार बनाने से राणी बनता है। राणी का अर्थ है राण्ड़ी, अर्थात् विधवा-सी। यह अर्थ यथार्थ चरितार्थ ही होता है; क्योंकि राजा साहब को वारवनिता से अवकाश नहीं मिलता। तब वह बेचारी राण-सी होकर अपना जन्म बिताती है।

(१०)

बारिस्टर। इसमें दो शब्द हैं। एक बारिश, दूसरा टर। बारिश अर्थात् वर्षा-ऋतु में टर लगानेवाले काम को जो करे, वह बारिस्टर अर्थात् बक-बक करने में मेंडक के 'सीनियर' (ज्येष्ठ)।

(११)

लेखक। व्याकरण में कहीं-कहीं पर क के स्थान में ग का प्रयोग कर

लेते हैं। इसके अनुसार लेखक और लेखग, ये दो शब्द बनते हैं। लेखक का अर्थ है लेखक, यानी दिन-भर सिर मारा कर, और बदलें में ले खक, अर्थात् मिट्टी, यानी समालोचकों के व्यर्थ आक्षेप। लेखग का तात्पर्य यह है कि और का लेख चुराकर हो खग, अर्थात् पक्षी होकर भाग। इसी को लिक्खाड़ भी कहते हैं, अर्थात् लिख आड़। मतलब यह सिद्ध हुआ आड़ में चुराकर लिखनेवाला। "पढ़े-लिखे केवल यहै ठकुली के दुइ पात।"

(१२)

बाबा। मुँह बाकर हाथ बाकर फिरे, सो बाबा, भिखारी। लेने के सिवा और कुछ सुहाता ही नहीं।

(१३)

बाबू। ब का अर्थ है सहित, बू=बदबू। अर्थात् बदबू के साथ रहनेवाला। जिसके दिमाग़ में व्यर्थ सभ्यता की दुर्गंध भर गई है, ऐसा जीव बाबू कहाता है।

(१४)

उपदेशक। उप अर्थात् पास, दे याने देनेवाला, शक अर्थात् संदेह। जब पास जाओ, संदेह की बात कहे। सत्य से कोसों दूर भागनेवाला। "टका हि परमं पदम्" के अनुसार चले। वेतन के आश्रय बुद्धि के विरुद्ध भी कहे, वह उपदेशक, अर्थात् पेटार्थू का नमूना।

(१५)

लाला। हर बात में लाओ-लाओ' करनेवाला, देने का नाम न जाने, ऐसा जीव। समाचार-पत्र का ग्राहक हो, तब नादिहंदी अवश्य करे। महाजन भी इसी प्रकार के जीव होते हैं। इनको महा-जिन समझना पंच-व्याकरण से सिद्ध है। इनमें एक होते हैं लखपती, जिसका अर्थ है लाख की बाँबी, याने सबकी

दुलहिन । हज़ार गालियाँ खाकर भी क्रोध न आवे, सबका दासानुदास ।

(१६)

कुलीन । कुली का बहुवचन है । याने बड़ा भारी कुली । कई कुलियों के बराबर काम करनेवाला । दूसरा अर्थ है कु अर्थात् बुरा, लीन का अर्थ हुआ रत । अब कुलीन का मतलब हुआ बुरे कामों में रत, उन्नति के शत्रु । स्त्री को क्लेश देनेवाले, हत्या-प्रचारक । ससुरार की आशा पर प्राण देनेवाले जीव । तीसरा अर्थ यह है—कु अर्थात् भ्रष्ट, लीन अर्थात् लेनेवाला । कुलीन से तात्पर्य है बुरी तरह चुकाकर दहेज़ लेनेवाला ।

(१७)

दारोगा । रोगं ददाति इति दारोगा । पुलीस में और जेल में साक्षात् धर्मराज के सहोदर-से विराजमान रहनेवाले महापुरुष ।

(१८)

शर्मा । बाँभन का अर्थ ऊपर कहा जा चुका है । शर—अर्थात् शैतान, मा=माँगनेवाला । शैतान की तरह माँगनेवाला । "असंतुष्टा द्विजा नष्टाः"—फूल सुँघानेवाले आचार्य । इन्हीं के भाई बानरजी और मुकरजी नाम से बंगाल में प्रसिद्ध हैं । बानरजी का अर्थ साफ़ है । मुकर जावे सो मुकरजी । बिलकुल कचहरी के गवाह ।

(१९)

ताल्लुक़ेदार । पर दार से ताल्लुक़ रखनेवाला । स्त्री को जीते-जी वैधव्य दिखानेवाला । धनवान् पुरुष ।

(२०)

वर्मा । हरएक दफ़्तर में जाकर वर माँगे, सो वर्मा । यह बाबू का सहोदर शब्द है । "जाति-पाँति पूँछै नहिं कोई; हरि का भजे,

सो हरि का होई ।" नौकरी मिली नहीं कि वर्मा शब्द सार्थक हुआ।

(२१)

संपादक । सम प्रकारेण पादं करोतीति संपादकः । बराबर नंगे पैर घूमनेवाला, अर्थात् जूतियाँ चटकानेवाला पुरुष । सरकार कहे बाग़ी, और लोग कहें बेकार । इस प्रकार अपमान सहकर जिए, सो संपादक । ये सब पुरुष होते हैं, और, भारतमित्र आदि नाम-धारी क्षमा करें, कतिपय नपुंसक भी होते हैं ।

(२२)

वकील । वह कील है, जिसके चुभने से डॉक्टरी की विद्या काम नहीं आती । पंच कहें बिल्ली, तो पंच बिल्ली ।

(२३)

सभा । सकार शब्दाः यत्र भांति सा सभा। शोक, संतप्त, समर, संकोच, 'सी-सी' आदि सकारशब्दाः ज्ञेयाः । जिसमें कलह रहे, सो सभा । स्थापन होने के कुछ दिन के बाद मेंबरों का जूती-पैज़ार हो जाया करे । लड़ाई की जड़ ।

(२४)

बी० ए० । बीए अर्थात् बीज । प्रथम तो ये रक्तबीज के समान बढ़ते जाते हैं, अतएव बीज हैं, फिर देशोन्नति में रहे, तब स्वार्थी महापुरुषों की ईर्षा की जड़ । नहीं तो किताब फेंककर "नौकरी मे देहि" का महामंत्र जपनेवाले मूर्खता के बीज ।

(२५)

पंडित। पंडा इत । पंडा का अर्थ है सत्यासत्यविवेककारिणी बुद्धि, अर्थात् सच-झूठ समझनेवाली समझ । यह समझ जिसकी 'इत' गत हो, वह पंडित है । व्याकरण में कहा है "तस्येतोलोपः स्यात्," अर्थात् इनका लोप हो । तात्पर्य यह निकला कि जब

विवेककारिणी बुद्धि का लोप कर दे, तब पंडित कहलावे। पूरे संठ, बछिया के ताऊ।

(२६)

मिस्टर। मिस टर, अर्थात् विना बात की टर्र करनेवाला "हट जाना, साहब बहादुर आते हैं।"

(२७)

समालोचक। इसमें इतने शब्द हैं स-माला-उचक। अर्थ यह हुआ कि जिसको सहित माला अर्थात् शोभा के देखे, उस पर उचक याने झपट। अर्थात् दोष देखने की चलनी। गुण छोड़ दे, अवगुण ग्रहण करे, इधर-उधर की 'रिव्यू' का उच्छिष्ट भोजन करके महात्माओं की निंदा करे, वही समालोचक है।

(२८)

अफ़सर। फ़ारसी में सर शैतान को कहते हैं। जो शैतान की तरह अफ़रा करे, सो अफ़सर।

इति पंचपुराणे प्रथमस्कंधे द्वात्रिंशत्तमोऽध्यायः

त्रयस्त्रिंशत् अध्याय

तवायफ़-कानफ़्रेंस

इन दिनों कानफ़्रेंसों की उत्पत्ति बरसाती मेंडकों की उत्पत्ति से किसी बात में कम नहीं है। सब लोग अपनी-अपनी पूँछ बढ़ाने की घुड़दौड़ में सरपट का स्वाँग दिखा रहे हैं। तब तवायफ़ें और गानेवाली बीबियाँ अपनी तरक़्क़ी की तरफ़ ध्यान न देतीं, यह क्योंकर हो सकता था? यह सुनने में आया है कि एक गुप्त स्थान में इस श्रेणी की युवती, अधेड़ और बूढ़ी, सभी वारवनिताओं ने

एक सभा करके बड़ी कानफ़्रेंस कर डाली है। इस सभा में स्वदेशी का विरोध बड़े हाव-भाव और कटाक्षों के साथ किया गया, और जिस प्रकार काशी के पंडितों ने वायकाट-विरोधिनी सभा क़ायम करके अपनी लियाक़त का पनाला बहा दिया था, उससे कहीं बढ़-कर इन बाज़ार की अधिष्ठात्री बीबियों ने कर दिखाया।

आजकल विलायती मर्दमार मेम साहबों की अकड़-ऐंठ की संसार में धूम मची है। उनका दर्जा कर्कशा देवियों से बहुत कुछ बढ़ गया है। इसका कारण कुछ गुप्त नहीं है। श्रीमती कर्कशा महा-रानी तो अपने पति की शिखा को सफ़ाचट करने का अधिकार नेचर के क़ानून से प्राप्त कर चुकी हैं; किंतु गोरी मर्दमार स्त्रियाँ राज्याधिकारियों की चपतगाह की मरम्मत करना अपना परम कर्तव्य समझती हैं। भगवान् जाने, इनकी ख़बर सुनकर और मुसलिम लीग का दुलार देखकर इन वारविलासिनियों को भी उन्नति का भूत सवार हो गया है या नहीं। कहते हैं, काशी के एक बड़े नामी विद्वान् भुटैया पकड़कर शपथ खा चुके हैं कि यदि दक्षिणा की कार्यवाही में त्रुटि न रही, तो वह इस बात का प्रमाण देने की व्यवस्था प्रस्तुत करेंगे कि तवायफ़ें संसार-भर की अर्धांगिनी होने का दावा कर सकती हैं, अतएव सब अधिकारों का आधा हिस्सा उनको अवश्य मिलना चाहिए। आजकल के पंडित जो न करें, सो थोड़ा। क्या आश्चर्य है कि इसी प्रतिज्ञा के आधार पर इन बीबियों ने अपनी महासभा का रंगस्थल जमा दिया हो।

एक बात और भी है। इसमें संदेह नहीं कि हमारे कृपालु शासक मियाँदल को प्रधान समझते हैं, और सच पूछिए, तो वे हैं भी महाप्रधान! उसी दल का बड़ा भारी अंग तवायफ़ों के स्वरूप में हिंदुओं के छोकरों को चेला मूँडकर शिखा-सूत्रधारी

मुसलमान बना रहा है। जो काम धर्मोपदेशक नहीं कर सकते, वह यह वेश्या-मंडल करने को प्रस्तुत है। यह कलिकाल की प्रत्यक्ष देवता 'हज़रते इश्क़' के मत का प्रचार करने में महंतों से भी दो क़दम आगे है; क्योंकि वे तो वेचारे निवृत्ति-मार्ग का आडंबर रचकर नगदनारायण की उपासना करते हैं, और इनके यहाँ प्रवृत्ति-मार्ग से लोभियों के परम उपास्य देवता आप ही दौड़-दौड़कर घुड़दौड़ी चाल से चले आते हैं। इस फ़िलासफ़ी को विचारकर तवायफ़-कानफ़्रेंस हुई, तो उसमें घबड़ाने की बात ही क्या है।

ज्योतिष-शास्त्रवाले नाम के अक्षरों को विचारकर फलादेश कहने के अभ्यासी होते हैं। वकील और वेश्या के नामों के आदि के अक्षर कुछ मिलते-जुलते हैं, और काम भी दोनों का एक ही-सा है, अर्थात् दोनों मनुष्य को मोक्ष देते हैं। कचहरी में जाकर बनावटी क़सम खाने और फ़र्माइश पूरी करने का मिथ्या बहाना बनाने से धर्म-कर्म से मोक्ष; बड़ी फ़ीस दोनों को देने से अमीरी से मोक्ष; खुशामद दोनों ही का परम मंत्र है, उससे लोक-लज्जा की मोक्ष; फिर मुक़द्दमा हारने और सफ़रदाइयों द्वारा गर्दन नापी जाने से संसार की प्रतिष्ठा से मोक्ष हो जाती है। ये सब बातें ऐसी समानांतर रेखा में स्थित हैं कि तवायफ़ों की कानफ़्रेंस न हो, तो समझिए कि कुछ भी न हुआ।

इस सभा की रिसेप्शन कमेटी में बड़ी-बड़ी पायजामा-धारिणी मेंबरा हुई थीं, और उनकी संख्या कई दर्जन कही जाती है। यद्यपि मेंबरी की फ़ीस कई मोहरें नियत थीं, किंतु यह वारांगना-समूह अकाल की मारी प्रजा तो था ही नहीं, जो उस ख़र्च से हिचक जाता। न उनके दल में नरम-गरम का मतभेद ही था, जो सूरत की कांग्रेस की बदसूरती का कुछ भय होता। इसी कारण मेंबरों

की खूब अधिकता हुई। दूर-दूर से डेलीगेट होकर वारवधुएँ सभा में पधारीं। सभा-मंडल या पंडाल भी कुछ कम विस्तृत नहीं था, उसमें कई हज़ार तवायफ़ों का समूह विराजमान हुआ। साथ में तवलचियों, चिकारियों और अमीरों के छोकरों की भीड़ से और भी समारोह बढ़ गया।

इस महासभा की धूम केवल चिकारे-तवले के पुजारियों की मंडली में ही नहीं हुई, वरन् रंडिकागण की सारी बिरादरी में निमंत्रण-पत्र भेजा गया। आजकल इन बाज़ारू अप्सराओं की बिरादरी के लोग सब धर्म और जातियों में पाए जाते हैं, अतएव कानफ़्रेंस के डेलीगेटों की संख्या से दर्शकों की संख्या बहुत बढ़ गई। पुराने धर्म का त्रिपुंड्र और तिलक का साइनबोर्ड लगाकर अंतरंग चित्त से वारविलासिनी अबलाओं के साथ फ़्रीमेशनी ढंग का गुप्ताचार जमानेवाले बगलाभगत लोग पंडाल में स्वागतकारिणी कमेटी के चबूतरों के पास ही बैठाए गए। इनका इस प्रकार सत्कार देखकर नवयुवकों में से कुछ लोग अवश्य बिगड़ उठे; किंतु भक्त लोग इन बीबियों की जाति के लोगों में सर्वदा से कुलीनता के पात्र समझे जाते हैं, इसलिये दर्शकों में सर्वश्रेष्ठ पद उन्हीं को दिया गया।

दूसरा पद ऐयाश मंडली की बिरादरी में उन राजा लोगों को दिया गया, जो वनिता की उपासना के अनुष्ठान में सारे राज्य को त्यागियों की तरह विषय-वासना के हवन-कुंड के अर्पण कर चुके थे, और जिनका राज्य "कोर्ट ऑफ़् वार्ड"-रूपी परमपद को पहुँचकर पूर्णाहुति होने में कुछ कसर नहीं बाक़ी रही थी, जिन राजा साहबों के ख़ज़ाने में दरिद्रता का पूर्ण राज्य था, जिनकी 'राणी' पति के जीवित होने पर भी राँड होने का पूरा अनुभव प्राप्त कर चुकी थी, इश्क़ महाराज की कृपा से जिनके मुख अजायबघर के हड्डियों के

पंजरों के पूरे नमूने बन रहे थे, वे सब दूसरे पद पर विराजमान किए गए।

तवायफ़-कानफ़्रेंस के दर्शकों में तीसरा स्थान उन महाजनों को मिला, जो अपने पूर्वपुरुषों के संगृहीत द्रव्य को फूँककर वेदांत सिद्धांत का प्रमाण सिद्ध कर चुके थे, और उनके वेदांत में प्राचीन विचारकों से इतना ही अंतर रह गया था कि द्रव्य की निस्सारता के मानने में तो दोनों सहमत थे, किंतु पहले लोगों के "ब्रह्म सत्यं जगत् मिथ्या"-सिद्धांत को उलटकर कहने का अभ्यास करने में निमग्न थे, अर्थात् जगत् सत्य ब्रह्म मिथ्या ही इनकी नवीन फ़िलासफ़ी का तत्त्व या मुख्याशय हो रहा था।

अमीरों के छोकरों का समूह सबके पश्चात् बैठाया गया; क्योंकि ये अभी मकतबे-इश्क़ (अर्थात् भ्रष्ट प्रेम की पाठशाला) के प्रारंभिक विद्यार्थी थे। यद्यपि इस दल में कितने ही ऐसे भी थे, जो बाप के मरने की मिती की हुंडी लिखकर क़र्ज़दार बनने का अभ्यास कर चुके थे, कितनों ने घरवाली के आभूषण बेचकर वह धन वेश्या के चरण-कमलों में कई बार अर्पण किया था, कितने ही घर का माल चुराकर रंडिका को देते और पिता के सामने माल खो जाने का बहाना करके सर्वस्व नाश करने का यज्ञ आरंभ कर चुके थे, तथापि ये सब पीछे ही बैठाए गए। ऐसे लोग जो उपदंशादि बीमारियों के शिकार बनकर क़ब्रिस्तान का मार्ग पूछनेवालों की तरह दुबले हो रहे थे, जो वैद्यों और डॉक्टरों की आमदनी का वस्त्र बढ़ाने के चरख़े होकर चारपाई के राज्य में रहने की योग्यता प्राप्त कर चुके थे, वे सब-के-सब इसी श्रेणी में रक्खे गए।

इस प्रकार चारों तरफ़ रंग-बिरंगी चमकीली पोशाकों से समलंकृत कानफ़्रेंस का पंडाल देखकर अप्सराओं के गुरु इंद्र की सभा

बहुतों को याद आने लगी होगी, इसमें संदेह नहीं। रिसेप्शन कमेटी अर्थात् स्वागतकारिणी सभा की मेंबरा बनकर जो बीबियाँ व्याख्यान के चबूतरे पर बैठी थीं, उनमें कितनों ही के नाम के बाद 'जान' शब्द लगा हुआ था, जिससे यह अनुमान होता था कि मूर्खों की जान निकालना और उनको जानवर बनाना ही वेश्या-मंडली का मुख्य कर्तव्य है। एकाएक एक बड़ी घोर करतल-ध्वनि हुई, और चबूतरे पर नेत्र मटकाती हुई एक बाज़ारू लेडी साहबा दृष्टिगोचर हुईं। इस अवसर पर चिकारिए और तबलची भी खड़े हो गए; किंतु उनको वालंटियर-सेना के वीरों ने बैठा दिया, और कहा कि कानफ्रेंस में लेक्चर होता है। लेक्चरवालों के नाच में तबले की जगह टेबिल पर हाथ पटका जाता है, ताल के स्थान में करतल-ध्वनि काम देती है, और नाचनेवाला मुख से कथन कहकर कभी तो हाथ-पैर हिलाकर रेल का सिगनल बन जाता है, कभी कोट में बटनों और उनके छिद्रों को पकड़कर घसीटता है, और जो यह भी नहीं हो सकता, तो ख़ाली जेब में हाथ डालकर प्रत्येक वाक्य के साथ इस प्रकार उचकता है कि दर्शकों को उसके फुदकने का संदेह हो जाता है।

अभ्यर्थना-कमेटी के चेयरमैन का पद मिस नूरानीजान को दिया गया। यह रंडिका इश्क़ के उपासकों में भक्ति-मार्ग का सर्वस्व समझी जाती थी। इसके दर्शनों की अभिलाषा रखनेवालों की संख्या टीड़ी-दल की बराबरी कर सकती थी। श्रीमती ने गाने की फ़ीस की इतनी मोटी रक़म रक्खी थी कि यदि उसका नाम कर्कशा-शास्त्र के पारंगत पंडितवर बारिस्टरों के कान में पड़ जाय, तो मुँह में पानी भरने की कौन कहे, उस पानी का फुहारा बहने लगे, और इतनी ज़ोर का हज़ारा चले की मिस्टर साहब की सारी पोशाक लोभाभिषेक से कृतार्थ हो जाय। उसके गाने की आवाज़

और ईसाई इंजील के जलख़ाने से निकल भागते हैं। वह शराब, जिसकी ख़राबी का हाल मज़हबी किताबों में ज़ोर-शोर से पाया जाता है, उसका पीना हमारे मज़हब का पहला उसूल है। यहाँ मौलाना साहब भी आदाब बजाकर यह फ़र्माने लगते हैं—

ताक से तू उतार ले शीशा।
ताक पर रख किताबे अंदेशा।

और—

"ज़ाहिद शराब पीने से काफ़िर हुआ मैं क्यों;
क्या एक चुल्लू पानी में ईमान वह गया?"

(घोर करतल-ध्वनि)

लेडी साहबा, आबकारी डिपार्टमेंट को हमारा ममनून रहना मुनासिब है; क्योंकि सिर्फ़ हमारे ही लिहाज़ से शराब के पीपे लोगों के पेट में ग़र्क़ हो जाते हैं। ह्विस्की की चुस्की और शांपियन की बोतलों के ख़र्च की तादाद हमारे ही गरोह की तरक़्क़ी का असर है। अफ़यून के शौक़ीनों और चंडूबाज़ों की क़तारों को क़ब्रस्तान का रास्ता हमारी तरफ़ से बताया जाता है। भंग की उमंग में समझ को भंग करनेवाले, गाँजे और चरस के स्टीम-बर्क अपने मुँह में क़ायम करनेवाले हमारे ही शागिर्द लोग हैं। अगर कोई गरोह या जमात पोलिटिकल 'इंपार्टेंस' की मुस्तहक़ है, तो वह हमारी ही जमात। ख़ुदा न करे, कहीं हम बिगड़ जायँ, तो सरकारी बजट की आमदनी की रक़मों पर दीमकों की दावत होने की नौबत आ जाय।

(करतल-ध्वनि)

हमारी फ़तहयाबी की हद हो गई। अब इस मुल्क में कुछ जानो-माल बाक़ी नहीं रहा। लूटें किसको? अकाल की मारी प्रजा, नौकरी के प्रेम में मजनूँ का स्वाँग दिखानेवाले, तालीम के बोझे से दबे हुए ख़र्च क्या दे सकते हैं? दिवालों के रफ़ीक़ पुराने लाला काम

के बग़ैर बेकाम हो रहे हैं। उनसे मिलने की क्या उम्मीद ? रहे वकील, उनका हाल यह है कि पुरानी चाल से बिलकुल हट गए हैं।

लोग कहते थे—

"वकीली में ग़िज़ा यही है फ़र्ज़ ; हुक़ूक़ पालकी तवायफ़-क़र्ज़ ।"

(करतल-ध्वनि)

आजकल के वकील जोड़ने में चींटियों के तालिबइल्म, क़ानून की रगड़ में हाथ-पैरों से ख़ारिज हैं। उनसे मिलने की कौन कहे, घर के छिन जाने का ख़ौफ़ है। कहने का मतलब यह कि अब हिंदोस्तान में कुछ बाक़ी नहीं रहा। हमारी जमात का रंग दिन-पर-दिन जमता रहे, इसकी उम्मीद नहीं पड़ती। बेहतर है कि अब और मुल्कों पर धावा किया जाय; क्योंकि—

"किसी बेकस को ऐ बेदाद, गर मारा, तो क्या मारा ?
जो आपी मर रहा हो, उसको गर मारा, तो क्या मारा ?"

(घोर करतल-ध्वनि)

आज इस कानफ़्रेंस के जमा होने का असली मतलब यही है कि आप लोग अपनी तरक़्क़ी की तजवीज़ और कानफ़्रेंस की कार्रवाई शुरू करें।

(घोर करतल-ध्वनि)

रिसेप्शन-कमेटी के सभापति का व्याख्यान समाप्त होने पर बड़ी घोर करतल-ध्वनि हुई, और तबलों पर थाप पड़ने से वह ध्वनि आकाश तक पहुँची। दर्शकों की मंडली में भी बड़ा समारोह रहा, और "वाह-वाह" के साथ "वंदे मातरम्" की ध्वनि उठने लगी, जिससे यह बात प्रत्यक्ष प्रमाणित हो गई कि दल के युवक वेश्या की उपासना करने में पूरे भक्त हैं।

बनारस की कचौड़ी-गली की एक मोटी तोप की उपमा पाने-

वाली बाज़ारू लेडी ने प्रस्ताव किया कि "कलकत्ता भारतवर्ष की राजधानी है। अतएव वहाँ के लोग सबसे श्रेष्ठ हैं। फ़ैशन और बाबूगिरी वहीं पर समाप्त होती है। सरस्वती-पूजन वहीं की वेश्याओं के घर होता है। अतएव वहाँ की श्रीमती अमीरी की जान और सबकी जान-पहचान फ़ोनोग्राफ़ की तान बी नशीलीजान को कानफ़्रेंस का सभापति का पद दिया जाना मुनासिब है।"

इस प्रस्ताव का समर्थन बंबई की गोरी मिस साहबा ने किया, और कहा कि बेशक कलकत्ते की ज़मीन में मेल का असर है। वहाँ के लोग सब बातों के मिलाने में सिद्धहस्त हैं। विभक्ति को शब्दों से मिलाने की चाल से यह बात सुस्पष्ट हो गई। अतएव मिस नशीलीजान को सभापति बनाने से कानफ़्रेंस में पूरा मेल रहेगा।

यह प्रस्ताव बड़ी घोर तड़ातड़ी के साथ स्वीकृत हुआ। सबके अनुरोध से बड़ी नज़ाकत के साथ बी नशीलीजान ने सभापति का आसन ग्रहण किया। दर्शक लोग बड़ी उत्कंठा से सभापति या सभापत्नीजी का व्याख्यान सुनने के निमित्त कान चौड़े करने लगे। इस अवसर पर "हुर्रे-हुर्रे" के धंटा-घोप कई बार हुए। चियर्स अथवा करतल-ध्वनि की पीट-पाट भी प्रथम श्रेणी की मची। कानफ़्रेंस के कितने ही प्रेमियों ने टोपियाँ उछाल-उछालकर प्रसन्नता का परिचय दिया, और उनमें कई साहबों की इज़्ज़त की संरक्षिका श्रीमती हैट साहबा जूतियों पर आ गिरीं। लोग बी साहबा की ओर जिस रंग से देख रहे थे, इससे उनको चकोर-चंद्रमा की समता या चातक और मेघ की उपमा देना ठीक नहीं बन सकता; क्योंकि ये सब उपमाएँ पुरानी या बाबा तुलसीदास की उक्ति के अनुसार जूठी कही जा सकती हैं। बी नशीलीजान के बारे में उनका प्रयोग क्या है, मानो ऐयाश बाबुओं पर बम का प्रयोग करना है। इश्क़ के सर्वस्व त्यागियों की परम उपास्य देवता के चारों तरफ़ अमीरों

के छोकरों को देखकर यही जान पड़ता था कि ये सब मूर्खता के मंत्र से दीक्षित होने के निमित्त तन-मन-धन का समर्पण करने पर उतारू हो गए हैं, और ऐयाशी का परम पद मिलने के निमित्त इनके चूतड़ों पर लँगोटी की अमलदारी होने में कुछ कसर नहीं रही।

इस प्रकार मजनूँ की नक़ल के लोग बैठे उचक-उचक सुनना चाहते थे कि सभापति या दुलहिन साहबा क्या कथन करती हैं कि एक बड़ी तोंद के स्वामी अपना चिकारा लिए हुए लेक्चरबाज़ी के चबूतरे या प्लेटफ़ार्म पर खड़े हुए। कुछ लोग समझे कि सभापति का व्याख्यान फ़ोनोग्राफ़ की तरह इसी चिकारे से निकलेगा; किसी ने यह अनुमान जमाया कि व्याख्यान देनेवाली चिकारे के साथ स्वर मिलाकर चहक उठेंगी। पंडितों के रंडिका-भक्त सपूतों की समझ में आया कि चिकारे के द्वारा मंगलाचरण का पाठ होकर सनातन-धर्म की लीला होगी, और आर्यादल के प्रेमी अनुमान करने लगे कि गुरुजी ने जब रेल, तार वेद के अंदर भरे हैं, तब क्या अजब है कि यह चिकारा भी वेद भगवान् के पेट से निकल भागा हो। यह सिद्धांत भी तत्त्व-विचार से ख़ाली नहीं था; क्योंकि वेश्या के प्रेम में धर्म-कर्म छोड़कर भैरव-वाहन के समान जब बाबू लोग दौड़ते फिरते हैं, तब चिकारा तो बेचारा जड़ पदार्थ ही ठहरा; वह अगर वेद से निकल भागा, तो आश्चर्य ही काहे का?

ये सब अनुमान वेदांतियों के बुलबुले के सगे भाई निकले, और चिकाराधारी साहब यों कह चले—"हाज़रीन जलसा, इस मजलिस की प्रेसीडेंट साहबा के पास हिंदोस्तान के हर तरफ़ से हमदर्दी के तार और ख़त आए हैं। मुझको हुक्म हुआ है कि मैं उनमें से चंद बहुत ज़रूरी और नामी आदमियों के पास से आए हुए ख़त पढ़कर जलसे को आगाह करूँ।"

इतना कहकर चिकाराधारी महाशय अपने थैले से पत्र निकाल-कर पढ़-पढ़कर सुनाने लगे । पहला पत्र एक ऐसे आचार्य महात्मा का भेजा हुआ था, जो लंबा तिलक लगाने की शृंगलीला में पूरे दक्ष थे । यद्यपि श्रीमानूजी महाराज के ये रंग-बिरंगे सींग अपनी बैल-परंपरा की सैनिक विद्या का अभ्यास दिखाने से कोसों दूर थे, तथापि उनकी सजावट की कृपा से भक्तों से इतना टैक्स वसूल होता था कि महाराज बड़ों-बड़ों को सींगे पर मारते और किसी की कुछ परवा नहीं करते थे । श्रीआचार्यजी महाराज का पत्र यों था—"श्रीमती नशीलीजान, सर्वोपमा की खान, योग्य चरण-किंकर आचार्य की दंडवत पहुँचे। आपका निमंत्रण-पत्र पाय करि हम सबै परम संतुष्ट भए । श्रीमती की कृपा को हम आजन्म नहीं भूलेंगे । यों तो हम बिना निमंत्रण के आयबे हेतु सन्नद्ध हते, पै का करें, एक चेली के मंत्र देन को हमें इतै आइबे की जरूरत आन पड़ी है । वासों कछु लाभ अधिक होइबे की संभावना है । वा सत्या-नाशिनी के मारे आपके दर्शन सों कृतार्थ होइबे में अवरोध भयो। याकी क्षमा-प्रार्थना के हेतु निवेदन करते भए, आपुकी महासभा से पूर्ण सहानुभूति सूचित करबे हेतु पत्रिका भेजी है । सर्वदा अनु-ग्रह करोगी, यही आशा है ।"

यह कहना कुछ ज़रूरी नहीं कि यह पत्र धूम-धाम की तालियों के सत्कार से सुना गया । श्रीमान् की गुण-ग्राहकता रसिक-समाज में फैल गई, और यह सिद्धांत प्रत्यक्ष रूप से सिद्ध हो गया कि देश में इस समय सबकी आचार्या होने का अधिकार यदि किसी को है, तो वह तबला-चिकारे की सहचरी वेश्या ही को । दूसरा पत्र शाह चपरादास का था, जो इस प्रकार सुनाया गया—"सुरती सिरी सरबोपमा जोग बीबी नशीलीजान को शाह चपरामल की जै गोपाल बंचना । आगे हियाँ छेम-कुसल है । आपकी छेम-

कुसल सिरी ठाकुरजी से सदा भली चाहिए। आगे समाचार यह कि बुलावा आपका आया। पर हम बीमारी के सबब हाज़िर नहीं हो सकते। हमारा सारा बदन फूल गया है। पेट में जलंधर के हो जाने का ख़ौफ़ है। इसलिये हम लाचार नहीं आ सकते। जो काम हमारे लायक़ हो, उसको फ़र्माना।"

तीसरा नंबर एक ऐसे पत्र का था, जो एक नामी राजा साहब ने कानफ़्रेंस में भेजा था। यह राजा साहब नाम के तो राजा अवश्य थे, किंतु व्यवहार की सब बातों में अपने नाम के विरुद्ध काम करने में प्रसिद्ध थे। आजन्म से बारी, नाई और ख़ुशामदियों की स्तुति के कुंड में पड़े हुए यह बेचारे इसी जन्म में नरक-कुंड का प्रत्यक्ष अनुभव कर चुके हैं। अशिक्षितों के जाल में पड़े हुए, पिंजड़े में रहनेवाले पक्षी के समान इनके-जैसे राजा जैसे सृष्टि में आए, वैसे न आए। भारतवर्ष के मरभुखे भी बाल्य विवाह की कृपा से युवावस्था का यथार्थ सुख न पाकर व्यभिचार और वेश्या-पूजन का प्रचार करनेवाली शिष्य-मंडली में भर्ती हो जाते हैं, तब राजा साहबों का पूछना ही क्या? इसी सनातन की चाल के अनुसार पत्र-प्रेषक राजा ने अगर दुधमुँहे दाँतों की अवस्था में व्याही हुई रानी को छोड़कर दूसरी रानी बनाई, या नाई तथा बारी की अर्द्धांगिनी को घर बैठाकर अपनी नानी के समान उनका सत्कार किया, या श्रीमती बाज़ारू लेडियों की कृपा से उपदंश के चकत्तों की चक्र-मुद्रा शरीर में धारण की, तो यह कुछ बुरी बात नहीं कही जानी चाहिए। राजा साहब के पत्र का अंतिम भाग यों था—

"हम तो बीबी, मेला देखै आए रहे। वारंट के खौफ के मारे एक असामी के घर में छिपे हैं। कैसे आवें?"

फ़ारसी में 'ख़ादिम' ग़ुलाम को कहते हैं। इस नाम का उपनाम बनाकर पत्र लिखनेवाला कानपुर नगर का एक व्यापारी का

सपूत था। इसकी शिक्षा अँगरेज़ी में ए, बी, सी, डी, और फ़ारसी में अलिफ़, बे के आगे "हौआ और नाक काट ले गया कौआ" कहने के सिवा और कुछ नहीं थी। नागरी-अक्षरों को तो व्यापारी लोगों के यहाँ बाप के श्राद्ध का संकल्प पढ़ने के सिवा और समय मुख से कहने की चाल ही नहीं है। वे इन सपूतजी को क्यों पढ़ाए जाने लगे थे? हाँ, बेशक हुंडीवालों के लुंडे-मुंडे अक्षरों की वर्णमाला का कुछ खोल-संस्कार अवश्य हो गया, जिसको यह गोद-गाद लेने में कुछ पंडिताई अवश्य दिखा सकता था। यह वेश्या-भक्त बालक बड़े उत्साह से इस ऐयाश-यज्ञ में जाने के लिये तैयारी कर रहा था। पिता इसका अर्थ-लालसा में लिप्त रहने के कारण रोकड़ और जाकड़ के मध्य में लटकनेवाला घड़ी का पेंडुलम या लंगर कहे जाने का अधिकारी था। उसको इतनी फ़ुर्सत कहाँ कि वह बालकों के सच्चरित्र होने का ध्यान करता। किंतु बालक का ताऊ बड़ा समझदार था। उसने जब वेश्या-तीर्थ की यात्रा का हाल जाना, तो इन 'ख़ादिम' साहब को दो-तीन तमाचे लगाकर रोकड़ की ठोकर के बाहर कर दिया। वेश्या के दास बालक ने बड़े रंग दिखाए। वह अफ़ीम खाने के तैयार हुआ, उसने कई फ़ाक़े कर डाले; किंतु उस ताऊ ने एक न मानी, और उसका क्रोध "जस-जस सुरसा बदन बढ़ावा; तासु दुगुन कपि रूप दिखावा।" के अनुसार और भी बढ़ा, जिससे ऐयाश बालक की सारी शेख़ी भगोड़े की तरह भाग खड़ी हुई।

बालक का पत्र यह था—

"मुशफ़िक़ मेहरबान, मैं बड़ी आफ़त में पड़ा हूँ। ताऊ साहब कंबख़्त ने ख़र्चा बंद कर दिया है। घर से निकाल दिया। अफ़सोस, किसी ने साथ नहीं दिया। पूरा हाल मिलकर अर्ज़ करूँगा। चाहे जो हो, गो मैं इस वक़्त ख़िदमत में हाज़िर नहीं हो सकता हूँ,

लेकिन मेरी रूह आपके साथ है। मैं उम्र-भर आपकी गुलामी करूँगा। बूढ़े के मरने के बाद सारी दौलत लुटा दूँगा, मैंने यह अहद कर लिया है।

आपका ख़ादिम बौखल बाबू"

इस पत्र को सुनकर कानफ़्रेंस में बड़ी धूम-धाम की करतल-ध्वनि मची, और इस ख़ादिम का नाम पूछने के लिये कानाफूसी होने लगी।

इसके बाद एक वह तार पढ़ा गया, जो शायद मुसलिम लीग के किसी मेंबर का भेजा हुआ था। आशय यह था—"अफ़सोस, हाज़िर नहीं हो सकता। मेंबर भेजने में लगा हूँ। खुदा हमारी मजलिस की तरह तुमको भी कामियाबी दे।"

इसी प्रकार कितने ही पत्र और तार पढ़कर सुनाए गए। टेबिल पर गुदड़ी बाज़ार-सा लग गया। सबके पढ़ने में बहुत देर लगी, और यह वार्ता स्थिर हुई कि आज की सभा की कार्यवाही यहीं समाप्त कर दी जाय। बाक़ी का दंगल दूसरे दिन के लिये उठा रक्खा जाय। इस मंतव्य को सुनकर कानफ़्रेंस के दर्शक और प्रतिनिधि सब भड़-भड़ाकर चल पड़े, और व्यास-कथा के रिपोर्टर भी अपना क़लमदान बग़लरूपी बैंक के सिपुर्द कर घर को रवाना हुए।

दूसरे दिन सभापति का कथन होगा, यह लालसा कानफ़्रेंस-मंडप में बड़ा समूह बटोर लाई। समारोह अच्छा रहा। अगले दिनों की अपेक्षा आज ताली पीटनेवालों का रंग सबसे बढ़-चढ़कर दिखाई पड़ा। ताली पीटने को व्याख्यानी बोल-चाल में करतल-ध्वनि कहते हैं। नवीन रीति के अनुसार यह प्रथा हर्ष या प्रसन्नता सूचित करने की है; किंतु प्राचीन चाल से इसका मतलब भगोड़ापन प्रकाशित करना था। योरप-निवासी प्रसन्नता में और भारतवासी भागनेवाले के प्रति करतल-ध्वनि करने के अभ्यासी हैं। इसके अतिरिक्त ज़नाने, हीजड़े और मर्दानगी से

इस्तीफ़ा देनेवालों के लिये भी ताली बजाना क़ानून से सिद्ध समझा जाता है।

इसी सिद्धांत के अनुसार सभा, कानफ़्रेंस और कलेदराज़ी की तालियाँ तीन प्रकार में विभाजित की गई हैं—एक हर्ष से उत्पन्न, दूसरी भगोड़ेबाज़ी के कारण, और तीसरी ज़नानों की कृपा का आधार। इस तरह मर्दानी, ज़नानी और हीजड़ी, ये तालियों के भेद हुए। अब रही यह मीमांसा कि किसके व्याख्यान में कौन-सी ताली बजी। इसका निर्णय खंडन-मंडन से ख़ाली नहीं है। गरमदल के लोग अपने लिये मर्दानगी की करतल-ध्वनि का हिस्सा ज़रूर लगावेंगे, और नरमों को ज़नानी ताली का कृपा-पात्र अवश्य ही कहेंगे। यह भी सृष्टि का नियम है कि पुरुष चाहे जैसा हो, किंतु वह नामर्द के ख़िताब को अच्छा नहीं समझ सकता। इसलिये नरम, "जी हुज़ूर" मंत्र के जापक, यह कदापि स्वीकार नहीं कर सकते कि उनके व्याख्यान में ज़नानी ताली बजाई जाती है। अतः इसका निर्णय कभी नहीं हो सकता। यह मामला फ़िलासफ़ी या तत्त्वशास्त्र के उन सिद्धांतों में से एक समझा जाना चाहिए, जिनके लिये संसार के मतवाले सभ्यता के आरंभ से आज तक मतवालों के समान हाथ-पैर पटकते आए, और निश्चय ख़ाक भी नहीं हुआ।

तवायफ़-कानफ़्रेंस में जो तालियाँ बजीं, उनके बजाने-वालों की चाल से मर्दानगी की गंध भी नहीं आ सकती। इसका कारण खोजने के लिये कहीं दूर जाने की आवश्यकता नहीं। रंडी के उपासक, चाहे राजा हों, चाहे महाराजा, वे हैं सब ज़नानों के सगे चचा-ज़ात भाई; क्योंकि उनको महाजनों के वारिसों के समान ज़ेरपाई की मार और गालियों का महाप्रसाद यद्यपि कुछ कमती भी मिले, तथापि उन्हें मर्दानगी की, दवा का

प्रयोजन अवश्य ही पड़ता है। अतएव कवि-कुल-चूड़ामणि का—

"जिनके लहहिं न रिपु रन पीठी ;
सो लावैं नहिं परतिय दीठी।"

यह वाक्य वेश्या-भक्तों के लिये बहुत ठीक है। व्यभिचारी और लंपटों की बहादुरी केवल मूछ के मरोड़ने ही में इतिश्री का गीत गाने लगती है।

कानफ्रेंस का लेक्चर बड़ा लंबा-चौड़ा हुआ। उसका तात्पर्य वैसा ही था, जैसा हाकिमों के दुलारे लेक्चरबाज़ों का होता है। न्याय और अन्याय, दोनों हाकिमों के चरणों पर लोटा करते हैं। हुज़ूर जिसको अच्छा कह दें, वही न्याय, और जिस पर टेढ़ी नज़र कर दें, वही अन्याय। अतएव उसकी भलाई और बुराई का यथार्थ तत्त्व सर्वसाधारण की समझ की सामर्थ्य से बाहर है। किंतु इतना अवश्य कहा जा सकता है कि व्याख्यान की तर्क-प्रणाली (Argumentative side) आधुनिक लेक्चरों से किसी बात में कम न थी।

पहली बात जो श्रीमती बाज़ारू लेडियों की आचार्या ने कही, वह उनकी राजनीतिक प्रधानता की स्तुति थी। उसमें यह दिखलाया गया था कि मुसलमानों की लीग के मेंबर जो अपनी प्रधानता क़ायम करते हैं, वह बाज़ारू लेडियों की प्रधानता के आगे पानी भरती है। यदि वे न हों, तो अमीरों की महफ़िल विधवा-समाज की सगी नहीं, तो सौतेली बहन तो अवश्य ही बन जाय, और धर्म का नाश करनेवाली बड़ी शक्ति संसार से उठ जाय। यह बात बड़ी ख़ूबी के साथ दिखाई गई कि मियाँ लोगों का राज्य नष्ट होने पर उसका चिह्न केवल उर्दू-भाषा और तवायफ़दल ही अवशिष्ट रह गया है। अतएव राजनीति की प्रधानता उनकी रग-रग में भरी है। उर्दू-भाषा चाहे भारतवर्ष से उठ भी जाय, किंतु

वेश्यादल कदापि नहीं उठ सकेगा। आजकल नाच-रंग के प्रेमियों को सभा-सोसाइटियों में जाने से महफ़िल का प्रेम ही रोकता है। अतएव यदि महफ़िल की उपासना भारत से उठ जाय, तो सभाओं की उन्नति होकर घर-घर गली-कूचे में राजनीतिक आंदोलन मच जाने का डर है। इस राजनीतिक धूम-धाम को रोकनेवाली वेश्या राजनीतिक प्रधानता की अधिकारिणी ज़रूर हैं।

इसके सिवा एक बड़ी भारी बात कही गई। वह यह थी कि प्रारब्ध के मारे हिंदुओं ने जब अपने संगीत-शास्त्र को घर से निकाल दिया, तब वह बेचारा ढाढ़ियों और वेश्याओं के घर जाकर अनाथ बालकों की तरह रहने लगा। इस हिसाब से वेश्या-मंडल संगीत का अनाथालय कहा जाना चाहिए। एक इसी युक्ति के आधार पर श्रीमती बाज़ारू बीबियों की दूनी, क्या सौगुनी प्रधानता स्थापित होती है।

निदान तवायफ़-कानफ़्रेंस की सभापति साहबा ने अपनी जमात की बड़ाई सिद्ध करने में कोई बात उठा नहीं रक्खी, और सबकी सम्मति से बड़े-बड़े प्रस्ताव स्वीकृत हुए। उनमें से कतिपय ये हैं—

(१) इस समय के अमीरों और समाज-नेताओं के आचरणों को देखते सब प्रकार की बड़ाई का आधार वेश्या सिद्ध होती है।

(२) यदि राजनीतिक प्रधानता का अधिकार पानेवाली कोई मंडली इस देश में है, तो वेश्यादल ही।

(३) तवायफ़-कानफ़्रेंस लंपट अमीरों और अमीरों के ऐयाश-मिज़ाज छोकरों को यह परामर्श देती है कि वे तितली के नातेदार बनने में सदा सन्नद्ध रहें, और स्वदेशी वस्तुओं का प्रचार करने से भागते फिरें।

(४) इस कानफ़्रेंस की यह इच्छा है कि जो बाप के मरने के वादे पर क़र्ज़ लेते हैं, या घर की पुरानी कमाई को इरक़देव

के अर्पण कर चुके हैं, उनको कोई ख़िताब अवश्य मिलना चाहिए।

(५) आनेवाली मनुष्य-गणना या मर्दुम-शुमारी में वेश्यादल की बिरादरी में यह भी लिखा जाना चाहिए कि जिनके घर विवाह बिना नाच-कूद के हो नहीं सकता, और जिनकी विवाह तथा बिरादरी की नामवरी दावत की अदावत और वारवधू की गाली-गलौज सुने बिना हो नहीं सकती, वे भी उन्हीं के दल के अंतर्गत हैं।

(६) प्राचीन काल में नगर की वेश्याओं की चौधरानी को "धारमुख्या" का ख़िताब मिलता था। अब भी कोई ख़िताब इनके लिये अवश्य निकलना चाहिए।

(७) समाज में इनको भी ऊँचा पद मिलना उचित है; क्योंकि इस समय स्त्रियों को अधिक स्वतंत्रता देने की वकालत हर तरफ़ हो रही है। जो स्वावलंबन के साथ सदा से आज़ादी के राज्य में निवास कर रही हैं, उनका तिरस्कार होना उचित नहीं।

(८) यद्यपि सरकार ने स्त्रियों को वोट देने के अधिकार से वंचित रक्खा है, किंतु तवाइफ़-कानफ़्रेंस के सदस्य इस नियम से बरी रहने चाहिए, और जिस प्रकार मियाँ लोगों को पुरुषों में 'सिपरेट इलेक्टोरेट' (अलग अपना मेंबर चुनने) का अधिकार मिला है, उसी प्रकार स्त्रियों में तवायफ़दल का पृथक् निर्वाचन-संघ बनाना परम आवश्यक है।

इस प्रकार अनेक मंतव्य पास करके कानफ़्रेंस का समारोह समाप्त हुआ, और मेंबर लोग बड़ी करतूत करने के अभिमान से प्रफुल्लित हो अपने-अपने आश्रमों को रवाना हुए।

इति पंचपुराणे प्रथमस्कंधे त्रयस्त्रिंशत्तमोऽध्यायः

चतुस्त्रिंशत् अध्याय

उर्दू की उपासना

उर्दू का असर कुछ लोगों की नस-नस में भर गया है, और ऐसा भरा है कि उसका निकलना मुश्किल है। पंजाब के पंडित तो उर्दू बीबी के इकलौते बेटे ही हैं। किंतु वे कायस्थ, जो क्षत्रियों से तथा चित्रगुप्त के वंश के साथ अपना संबंध लगाते हैं, बिलकुल उर्दू ही के कीड़े हैं। भगवान् न करे, कहीं चित्रगुप्त महाराज इन्हीं कायस्थों-जैसे न हों; नहीं तो यमराज की वही में बड़ी गड़बड़ी पैदा हो जायगी। और, अगर कहीं चित्रगुप्त साहब का वहीखाता उर्दू में लिखा गया होगा; तो 'मुन्ने' की जगह 'मुन्नी' और 'चूने' की जगह 'जूते' पढ़े जाने की लिपि-शैली यमराज की अदालत में ग़ज़ब करेगी। इस बात को विचारकर उर्दू की सर्वप्रियता को मानना पड़ता है, और यह भी स्वीकार करना पड़ता है कि बिना उर्दू भवानी को प्रसन्न किए कचहरी की आफ़त से बचना असंभव है। इस निमित्त पंडित विचारवैभवजी नित्य उर्दू-स्तोत्र का पाठ करके आशा करते हैं कि इसी पाठ के द्वारा आर्य-भाषा को परित्राण प्राप्त होगा।

उर्दू-स्तोत्र

नौमि नौमि नौमि उर्दु-फ़ारसी;
हिंदुस्थान कंठ मध्य हार-सी।
दफ़्तराधिरूढ़ शान-क़ायदा;
त्वाम् नमामि मुंशि वाहिनी सदा।
बार-वधू सत्य संग दायनीम्।
मास औ कबाब नित्य खायनीम्।
जरं—सरं- अरं—फरं—बोलनीम्;
पोस्त या अफ़ीम नित्य घोलनीम्।

अर्ब, रूम-काननेषु वासनीम् ;
धर्म-कर्म-शर्म सर्व नाशनीम् ।
मुर्ग़-पृष्ठ वाहने विराजनीम् ;
त्वाम् नमामि दफ़्तरेषु राजनीम् ।
लेख अन्य पाठ अन्य मालनीम् ;
कायथोदरा प्रकर्ष पालनीम् ।
ज़ेरपाइ पादयोः सुसोहनीम् ;
सुथ्थने इज़ारबंद पोहनीम् ।
भूषणानि पित्तलस्य भायनीम् ;
शेर, कता, फ़र्द, ग़ज़ल-गायनीम् ।
उर्दु नाम की ज़बान लश्करी ;
हिंदुश्रान बुद्धि चापरी करी ।
सत्य वस्तुभ्यो विरुद्ध ते क्रिया ;
त्वाम् नमामिऽनंतरं मियाँ-मिया ।
हौलविला-कूवता सुगर्जिनीम् ;
मुच्छ-शिखा शुद्ध केश मुंडनीम् ।
काव्य छंद मध्य कंठ-काटनीम् ;
बुलबुलो च जाम प्राय पाटनीम् ।
तीव्र तीव्र तीव्र तीव्र लोचनीम् ;
थार्ड परीक्षासुऽनन्त रोचनीम् ।
किल्ल-बिल्ल अक्षरैः सुशोभनीम् ;
नागरी गुणं प्रताप छोभनीम् ।
ग्रामवासिनां च हेतु त्वं छुरी ;
त्वाम् वदंति ते बुरी, बुरी, बुरी ।
टोपि चारगोशिया दुअंगुली ;
नारि सम्मुखे बनावनी कुली ।

मुंसरिम दरोग वृंद लालनी ;
अवध अवृद्धिसागरेषु डालनी ।
हिंदवः पतंति आफ़ते त्वया ;
गच्छ-गच्छ सुंदरी ववंडरी ।
इति पंचपुराणे प्रथमस्कंधे चतुस्त्रिंशत्तमोऽध्यायः

पंचत्रिंशत् अध्याय

संत की संगत

महंत टकादास कलिकाल के गुरु हैं। आपके चेलों का दल भी टीड़ीदल की उपमा पाने का अधिकारी है। जिस प्रकार प्राचीन महर्षियों के आश्रमों में धूम-धाम रहा करती थी, उसी प्रकार टका-दासजी की संगत में भी भीड़-भाड़ रहती है। हज़ारों मनुष्य महाराज को सिर झुकाते तथा दान-दक्षिणा आगे रखकर प्रदक्षिणा करते हैं; हज़ारों आपको ईश्वर का एजेंट समझते हैं, और हज़ारों ही टकादासजी को मालदार जानकर रात-दिन सेवा-शुश्रूषा में लगे रहने को ही धर्म का अंग मानते हैं। सुधारक लोग प्रायः यह कहा करते हैं कि इस देश के गुरु और उपदेशक सबको ठगते हैं। यह बात आज-कल अनुभव के विरुद्ध ठहरती है; क्योंकि सब शिष्य अधिकांश में गुरु का माल ही ताककर दीक्षा लेने आते हैं। महंत महात्मा इस बात को स्वयं जानकर भी ऐसे चेलों से मेल-मिलाप रखना अपनी माल की तहसील का आवश्यक धर्म समझते हैं; क्योंकि इन ख़ुशामदी चेलों को प्रसाद देने के प्रसाद से बाबाजी की आमदनी दिन-पर-दिन वृद्धिगत तो होती ही है, किंतु अनेक गुप्ती बातों की सच्ची ख़बर भी झूठ बन जाया करती है। हमारे टकादासजी कहने के तो ब्रह्मचारी और आचारी, सभी कुछ हैं, किंतु काम करने में कुछ दूसरा ही ढंग रखते हैं।

लोगों को व्रत का उपदेश सुनाने के लिये हज़ारों वानियाँ कह डालते हैं; पर अपने पेट साहब की चपेट के आगे सब वानियों की नानी मरती है। श्रीमान् महंतजी का पेट क्या है, मानो मशक का बड़ा भाई। और, मशक बेचारी तो पाइप का पानी ही पीकर तृप्त हो जाती होगी; किंतु महाराज की तोंद सैकड़ों पूरी, कचौड़ी और लड्डुओं का खून करने में पूरी खूँख़्वार हो रही है। इस प्रकार सैकड़ों मिठाइयों की हत्या महाराज की गर्दन पर सवार होती गई होगी; किंतु उनको इसका कुछ सोच नहीं। वह समझते हैं कि संसार के सब भोज्य पदार्थ उनकी श्रीमती तोंददेवी के बलिदान के निमित्त स्वयं विधाता ने बनाए हैं। हिंदुओं के अधःपतन के साथ-साथ उनकी सब बातों ने अवनति के गर्तावर्त में डुबकी खाई है। महात्माओं के आश्रम, जो किसी समय धर्म-शिक्षा के तपोवन और विश्वविद्यालय का काम देते थे, अब निरक्षर भट्टाचार्यों के धाम बन गए हैं, और उनका अधिकार ऐसे लोगों के हाथ में दिया गया है, जो स्वयं दुष्ट कर्म का कर्मकांड फैलाने में प्रथम श्रेणी की योग्यता से संबंध रखते हैं। इस हिसाब से टकादास की गद्दी पर यदि विषयी और इंद्रिय-लोलुप का उत्तराधिकार होता चला आया, तो कुछ आश्चर्य की बात नहीं।

कहते हैं, टकादास के बाबा गुरु एक स्त्री के प्रेम में मारे गए, और उनके गुरुजी ने तीन उपपत्नियों को कृतार्थ किया। इसी परंपरा के अनुसार वर्तमान बाबाजी दस-बीस के पीछे मुँह बाकर दौड़ते फिरें, तो कुछ विषय-विरुद्ध नहीं कहा जा सकता। इस उन्नति के समय में यह भी एक उन्नति का कार्य ही स्वीकार करना पड़ेगा। इसमें कुछ टकादास का दोष नहीं। अपराध तो उन बुद्धि के शत्रुओं का होना चाहिए, जो पास का टका ख़र्च करके इस नराधम कृत्य को आश्रय देकर अपने और अपने गुरु, दोनों के लिये नरक के फ़र्स्ट क्लास के होटल में ठहरने का टिकट ख़रीद रहे हैं।

यह कहने की कुछ आवश्यकता नहीं कि ऐसे कलिराज के परम मित्र महात्मा के आश्रम में किस प्रकार के जीव रहते हैं? उच्चारण के परम शत्रु लँगोटाबाज़ विद्वान्, "सिरीगनेसायनम्मो" का मंगलाचरण करके अंड-बंड अक्षरों में सहस्रनाम और गीता का अंग-भंग करनेवाले पाठक, और केवल कापाय वस्त्र का सार्टीफ़िकट पहनकर भगवान् को धोका देने के उद्योगी पुजारी बाबा सभी ने देखे होंगे। इनकी सूरत या बदसूरत का चित्र खींचने की कुछ ज़रूरत नहीं; क्योंकि प्रत्येक गृहस्थ को इनकी 'मूर्तियों' के दर्शन और किसी समय नहीं, तो इनके भिक्षा की तहसीलदारी करते समय अवश्य हुए होंगे। ऐसे टकाभिलाषी दल के आचार्य टकादास के आश्रम में, कुछ दिन हुए, एक अद्भुत चरित्र हो चुका है। उसका संक्षिप्त वर्णन इस प्रकार है—

एक दिन मध्याह्न के समय रसोई तैयार हुई, और 'भोग' का परम प्रेमी उजड्ड-दल शंख बजाकर खाने का सिगनल दे चुका, तब ज्यों ही कलि महात्मा ने कौर उठाने को हाथ बढ़ाया, त्यों ही पुलीस का दल टकादास की संगत में आ धमका। महाराज के पेटार्थू चेलों की पेट-लीला का आनंद अपना पूरा काम नहीं कर सका। अनुसंधान करने से जान पड़ा कि महात्मा के प्रसाद से किसी विधवा के सधवा होने का योग बन गया है। गर्भ को प्रसव करके फेकने के कारण मामला पुलीस तक पहुँचा। देखते-देखते बाबाजी की लेन-देन होने की नौबत आई। घूस और झूठी साक्षी की कार्यवाही होने लगी। ऐसे मामलों में जो कुछ होता है, वही हुआ, और व्यास-कथा के रिपोर्टर विधवाकारक बाल्य-विवाह की प्रथा को धन्यवाद देते और टकादास का माहात्म्य गाते अपने आश्रम को रवाना हुए।

इति पंचपुराणे प्रथमस्कंधे पंचत्रिंशतितमोऽध्यायः

षट्त्रिंशतितम अध्याय

मरिहल कुंभकर्ण

सच तो यह मालूम पड़ता है कि आजकल के भारतवासी यदि किसी पुराने आदर्श का अनुसरण करनेवाले हैं, तो महामहोपाध्याय लंकेश के भाई श्रीकुंभकर्ण महाराज के। अब सभी देसी बातों में उन्हीं की झलक दिखाई देती है। कहते हैं, कुंभ के कान साहब छः महीने की नींद लिया करते थे, और तीन सौ साठ के आधे दिन उनके खर्राटों में ही ख़र्च हो जाया करते थे। इस हिसाब से यह मानना पड़ता है कि वह साल में आधे दिनों को काम में ज़रूर लाया करते होंगे। किंतु आजकल के लोग तो पूरे साल को व्यर्थ बातों में उड़ा देने में ज़रा संकोच नहीं करते। वे बड़े कुंभकर्ण क्यों न समझे जायँ? चाहे वे रावण के भाई के-से मोटे-ताज़े न भी हों, और पुराने राक्षसों के दारोग़ा की मोटी तोंद के ठिकाने इनका अकाल से सूखा-भूखा पेट रोनी सूरत दिखाता हो, या आलस्य के वरदान से इनका हाज़मा मनों की जगह माशा-दो-माशा पचाने में भी तमाशा करता हो, किंतु इस रूप-भेद से इस उपमा में भेद नहीं आ सकता। ये चाहे जैसे मरिहल, मरगिल्ले, मरभुक्खे, दुर्बल आदि उपाधियों के अधिकारी हों, किंतु समय खोने में अगर कुछ हैं, तो कुंभकर्ण के पूरे चचा और ताऊ ही।

यहाँ से थोड़ी दूर पर एक साहब रहते हैं। इनके शरीर में मांस और हड्डियों का ऐसा प्रगाढ़ प्रेम है कि दोनों एकरूप देख पड़ते हैं। मतलब यह कि शरीर बिलकुल हाड़ का खिलौना ही दिखाई पड़ता है, और उसमें मांस या गोश्त की दोस्ती का प्रगाढ़ प्रेम देखने में नहीं आता। उनको खाने-ख़र्चने पर भी आमदनी है, और इसकी कृपा से यह सिवा सोने और दुनिया के हाल पर रोने के और कोई

काम करना पाप—महापाप गिनते हैं। हाल में इनके जीवन की सालाना रिपोर्ट देखने से पता लगा कि गत आश्विन मास में यह बुख़ार की अमलदारी में रहने के कारण तीन महीने चारपाई के साथी रहे। इसके पश्चात् तीन महीने बुख़ार की कमज़ोरी के दुलार में बीते, और छः महीने उस कमज़ोरी को दूर करने में लगे। इन छः महीनों का जीवन-चरित्र बटेर और कबूतरों की लड़ाई तथा नाच-कूद से ही संबंध रखता है, और सिवा इसके किसी महत्त्व की बात का उसमें कुछ भी पता नहीं मिलता। मरिहल कुंभकर्ण का जागना भी सोने के बराबर है। संसार की होनेवाली और होती हुई बातों का उनका ज्ञान कितना बढ़ा-चढ़ा है, यह उनकी दरबार-शैली से प्रकट होता है। उनके समाज और मित्र-मंडली में साल-दो साल पहले की बातों पर राय दी और ली जाती है। ज़माने का रंग बिलकुल नवीन रंग से रँगा हुआ बतलाया जाता है। अब की दशहरे के अवसर पर मरिहल साहब के मित्र लोग जब जमा हुए, तो कबूतरबाज़ी की आलोचना बड़ी देर तक होती रही। फिर राजनीतिक मामले हल किए जाने लगे। एक ने कहा—२४ दिसंबर को स्वराज्य मिलेगा, और सब अँगरेज़ अपना बोरिया-बसना लेकर भाग जायँगे। इस प्रकार बहुत-सी परकटी उड़ने के पश्चात् किसी ने कहा—स्वराज्य की अवधि गत वर्ष के दिसंबर की २४ तारीख़ थी। तब यह मान लिया गया कि स्वराज्य क़ायम हो गया। उसके क़ायम हो जाने की बातें चलने लगीं। कल्पना-शास्त्र का ख़ासा पोथा बन गया। जो कुछ कहा गया, उसका सारांश यह था कि स्वराज्य होने में कुछ कसर नहीं रही। सड़कों पर बड़े-बड़े लोहे के बंबों का पड़ा रहना उसका सबूत है। यह सबकी समझ में आ गया कि जब ये बंबे लग जायँगे, तो उसी की सुरंग में घुसकर सब सरकारी नौकर देश से बाहर आप-

से-आप उस तरह भाग जायँगे, जैसे मोर की आवाज़ सुनकर सर्प भागते हैं। बोलो मूर्खतादेवी की जय !

इति पंचपुराणे प्रथमस्कंधे षट्त्रिंशतितमोऽध्यायः

सप्तत्रिंशतितम अध्याय

तोंद का कारण

जिस प्रकार तोप, मशक और बड़े-बड़े मटके बनाने के कार्यालय हैं, उसी प्रकार तोंद का भी कोई कारख़ाना होना चाहिए। इसके कहने का यह मतलब नहीं कि एक लिमिटेड कंपनी बनाकर तोंद बनाने की फ़ैक्टरी खोली जाय ; क्योंकि ऐसी कंपनी का काम चलना लाभदायक नहीं हो सकता। कौन ऐसा आँख का अंधा और गाँठ का पूरा होगा, जो बड़े-बड़े मोटे और सूस की समता रखनेवाले तोंद ख़रीदने का ऑर्डर देगा ? और, अगर देनेवाला निकल भी आवे, तो महँगी-कल्प और फ़ाक़ेकशी के मन्वंतर में उनको रखना कौन पसंद करेगा ?

अतएव ऊपर लिखे वाक्य का अर्थ यह होता है कि कोई एक कारख़ाना ऐसा ज़रूर होता होगा, जहाँ महाजनों के गुब्बारा-संप्रदाय के पेट गढ़े जाते होंगे। इसका पता लगाने में एक बड़ी कठिनता का सामना पड़ता है, और उसका हल करना ऊसर में हल चलाने से कुछ कम नहीं। ब्रह्माजी ने जब सृष्टि बनाई थी, तो भारतवर्ष को किसी मिट्टी से गढ़ा था, जिससे यहाँ के अधिकांश लोगों की मिथ्या और मिथ्या विश्वास के मारे मिट्टी ख़राब है। ऐसे ही लोगों की अधिकता ज़्यादा है, जो असंभव-से-असंभव बात को ठीक मान लेते हैं, जिनकी मर्यादा में सुई के अंदर ऊँट का घुस जाना और ऊँट के अंदर रेलगाड़ी का दौड़ना कोई नासमझी नहीं। थोड़ा समय व्यतीत हुआ कि वे योरपियन साहबों को हनुमान्-दल का

लंगूरावतार कहते थे, और अब लंका के पुराने निवासियों का अवतार मान लेने में पूर्वापर-विरोध नहीं विचारते। ऐसे लोगों की राय के अनुसार तो प्रजापति का जब ऐसा कारख़ाना बनाया जाय, जिसमें बहुत-से कारीगर हों, और कुछ मज़दूर मिट्टी खोदते हों, कुछ उसको पानी में सानते हों, और कुछ नाँद-जैसे तोंद के साँचे ढालते हों—कहीं पर कारीगर बृहदाकार पेटों के साँचे तैयार करते हों, कहीं पर बढ़ी हुई पेट की पेटियाँ नापी जाती हों—जब ऐसी बातें कही जायँ, तब शायद वे अपनी गुद्दी के अंदर इस कारख़ाने के मर्म को पहुँचा सकें, अन्यथा नहीं। ऐसी दशा में तोंद के कारख़ाने का पता लगाना और भी कठिन होता जाता है। किसी कवि ने एक लाला की तारीफ़ में कहा है—"तोंद बनाय के मास को लोंद औ गोंद-सनो बर बैठो रहो करै।" इस वाक्य से निर्दिष्ट विषय का कुछ पता चलता है। पेट को तोंद और तोंद को मांस का लोंद बना लेना इस कारख़ाने का काम है। यहाँ लोग सुस्ती और काहिली के कृपापात्र बनकर शरीर को हिलाना या हरकत देना उतना ही पाप समझते हैं, जितना एक तिलकधारी के हिसाब प्याज़ या लहसुन का चबाना।

इस आधार पर चलने से तोंद-मैनुफ़ैक्चरी (अर्थात् तोंद बनाने की कोठी) के एक नहीं, सैकड़ों पते लगते हैं। यहाँ व्यापार का विचार उन लोगों के हाथ में है, जो कपड़ों के थानों को फाड़-फाड़कर बेकारी और काहिली की वेदी पर स्वास्थ्य का बलिदान चढ़ाने के सिवा और कुछ जानते ही नहीं; नहीं तो तोंद के कारख़ानों की ख़ासी एक व्यापारिक डाइरेक्टरी बन सकती थी। ख़ैर, ऐसी दशा में एक आध का पता बता देना ही 'अलम्' समझना चाहिए। तोंद बनाने का सबसे बड़ा कारख़ाना मेसर्स आलस्य एँड सन्स के नामसे पुकारा जाना चाहिए। इस कारख़ाने की अनंत शाखाएँ देश-भर में फैली हैं। उसके

मैनेजर या मैनेजिंग डाइरेक्टर लोग बराबर अपने काम में लगे हुए पेटों को फुला-फुलाकर मटका बनाने के काम में रात-दिन लगे रहते हैं। इन साहबों के सुप्रबंध से बड़ी-बड़ी बृहदाकार तोंदें बनीं और बनती जाती हैं। यद्यपि नाज की गरानी के जलमुँहेपन के स्वभाव से तोंद बनाने की मेटीरियल अर्थात् सामग्री दिन-पर-दिन कम होती जाती है, तथापि इनके प्रबंध की यह तारीफ़ है कि नित्य बराबर पेट-पर-पेट बनते ही चले जाते हैं। हाल में तोंद बनाने के काम में दक्ष या पारंगत एक साहब पाए गए हैं। इनको सीतापुर ज़िले की तोंदल-कंपनी का एजेंट कहना अनुचित न होगा। आप जिस वक़् खड़े होते हैं, तो मालूम पड़ता है, किसी पुराने राजा या नवाब ने इनको पेट में मशक बाँधने की सज़ा दी है। जब यह आराम-कुर्सी पर बैठते हैं, तब पेट के मांस-समूह का लोंदा घूमकर ऊपर चढ़ आता है, और राजा साहब के टेबिल का काम देने लगता है। अक्सर लोग आपकी पेट की मुटाई की शोभा को देखकर यह कहने लगते हैं कि ऐसा पेट "न भूतो न भविष्यति।" इस तारीफ़ का आधा हिस्सा ठीक मालूम पड़ता है। पूर्व काल में चाहे ऐसे या इससे बड़े पेट हुए भी हों, किंतु यदि घी महँगी साहबा के यही नख़रे रहे, तो भविष्य में ऐसी तोंद किसी की नहीं हो सकती, यह मान लेना निर्विवाद सिद्ध है।

इति पंचपुराणे प्रथमस्कंधे सप्तत्रिंशतितमोऽध्यायः

अष्टत्रिंशतितम अध्याय

अक़ल का पनाला

नेचर देवी या प्रकृति बड़ी हँसोड़ मालूम पड़ती है। उसने हर-एक के साथ ऐसी बातों को लगा दिया है कि प्रत्येक आदमी अजा-

यवघर का नातेदार बन गया है, या यों कहिए कि वहाँ के रहने का पदाधिकारी हो गया है। हरएक अपने को बुद्धि का सागर मानता है, और बुद्धि की तराज़ू में सबको अपने आगे पसंगा विचारने में कसर नहीं करता। इसी नियम के अनुसार संसार सदा से चलता चला आया है। सब जगह यही कैफ़ियत है। पर वही कैफ़ियत उस जगह होती है, जब बेवक़ूफ़ के हाथ में हुकूमत, बड़प्पन या अमीरी की लकड़ी आ जाती है। तब वह जिस तरह की पटेबाज़ी दिखाता है वह देखने ही से संबंध रखती है। उसकी कथा यों है—

चंपकपुर के चौपटाबाद में एक लाला का ख़ानदान था। उसमें चंचला लक्ष्मी के पात्र एक लाला थे। इनके कुल में दुनिया की कुलीनगीरी दो पुश्त से हट गई थी। तीसरी पुश्त में लाला उजागर का जन्म हुआ। यह चौपटाबाद इस कारण और भी प्रसिद्ध हो गया कि वहाँ चारों तरफ़ सब चौपट या सफ़ाचट का प्रभाव दृष्टिगोचर होता था। देसी शिल्प के नष्ट होने पर व्यापार नाम-मात्र का रह गया था, और उसके कारण उत्पन्न हुई ग़रीबी की कृपा से लोग लाला को कुबेर या लक्ष्मीनाथ कहने के लिये बाध्य थे। पुराने काल में डाकख़ाने की सृष्टि के पहले सब अमीरों के यहाँ गुणियों का सम्मान होने की परिपाटी थी। कवि, पंडित, चित्रकार, ज्योतिषी, गानेवाले आदि बराबर उनके यहाँ आते और पुरस्कार पाकर प्रसन्न हो जाते थे। भारत के साहित्य की उन्नति इसी पुरानी चाल से इतनी हुई, जो आजकल के मुद्रायंत्र के होने पर भी नहीं दिखाई देती। ख़ैर, लाला उजागर के यहाँ एक दिन ऊपर लिखे नियमानुसार एक कविजी पहुँचे, और ख़ुशामदीदल के मध्य में बैठे हुए लाला के सामने उपस्थित किए गए। कविजी अपनी कविता के पुरस्कार की धुन में थे, और लाला के ख़ुशामदी उनको जमने नहीं देना चाहते थे।

अंत में यह तय पाया कि लाला के पास आनेवाले कवियों के साथ इन नवीन कवि की झपट करा दी जाय। यह भी एक सदा की चाल है कि कवि घर-घर होते हैं, और जिनको कवित्व की बीमारी ने घेरा है, वे सब अपने को कालिदास और तुलसीदास ही समझते हैं, चाहे वे पूरे बछिया के भाईचारेवाले जीव ही क्यों न हों। चौपट-ग्राम में इस कवियों के दंगल का बड़ा समारोह हुआ, और उनके मध्य में लाला उजागर ने यह समस्या दी—"धनिकन की औकात।" इस पर नगर के और बाहर के आए हुए कवियों ने इस प्रकार की पूर्तियाँ रच डालीं—

पंडित कवि औ गुन-भरे लाला के घर जात ;
सबसे बढ़ि जग माहिं बस, धनिकन की औकात।
रंडिन के जूते नितै गाली-गुप्ता खात ;
बस, अब देखी जात यह धनिकन की औकात।
दौरे साहब देखिके करत सलामैं जात ;
नित ख़िताब में फँसि रही धनिकन की औकात।
होटल में बोटल लिए भोजन-हित नित जात ;
सदाचार की त्यागनी धनिकन की औकात।
धरम-काम में कँपकँपी जब आवै चढ़ि जात ;
तब समझौ बस, आ गई धनिकन की औकात।

इस कविता को सुनकर लाला ने कहा—कवि बिलकुल निकम्मे होते हैं और वह "ऐसी की तैसी में जायँ कवि" कहकर सभापति का आसन छोड़ भागे। सभा बिलकुल राँड़ हो गई, और सभासद राँड़ों की तरह स्वतंत्र होकर लाला के पीछे दौड़े। यह दौड़ भी कुछ कम नहीं हुई, और कविता के दंगल से यह दौड़ का दंगल मज़ेदार रहा। लाला कुछ तो तोंद के मारे भागा भी कम, और ठोकर खाने से गिर भी पड़ा। अब लोग उसको पकड़कर मनाने लगे। वह गालियाँ

वक्ता और कवियों को बुरा-भला कहता फिर लाया गया, और समझा-बुझाकर सभापति के आसन पर बैठाया गया। कहा गया कि सभा धनिकों की तारीफ़ के लिये हुई है। यह कविता ठीक नहीं। ऐसी कविता पर इनाम नहीं दिया जायगा। लाला की तारीफ़ खड़ी बोली में की जाय। ख़ैर, उसका क्रम यों चला—

(१)

जीते जग में रहें उजागरमल, यह सदा ख़ूब दान करते हैं;
गुड़गुड़ी सामने लगाकर यह, रात-दिन धूम-पान करते हैं।

(२)

लाला हों राय एक दिन साहब, यह सभी चाहते यहाँ के हैं;
जैसे लाला हमारे हैं भाई, वैसे लाला भला कहाँ के हैं?

(३)

राय में ख़ाक है धरी अहमक, हों बहादुर व राय यह कहिए;
सी०आई०जी०सी०आई०हो जावें, इस तरह की दुआ को कह रहिए।

(४)

राय तो भाट को भी कहते हैं, यह ख़िताबी मुझे नहीं भाती;
और कोई ख़िताब, कह डालो, जिससे दौलत हो घर में भर जाती।

(५)

हमारे लाला हैं धनी हज़रत, सब तरह मालदार पूरे हैं;
उनको बस, चाहिए है एक ख़िताब, वह नहीं माल में अधूरे हैं।

(६)

हो गए पास गरचे बीस हज़ार, वह अमीरी नहीं कही जाती;
एक ठोकर में यह अमीरी बस, एक घंटे में है निकल जाती।

इसको सुनकर फिर लाला उठा, और बोला—चूल्हे में गई कविता! फिर भागा, और घर में जाकर कोठरी में छिप बैठा। सभा दुबारा फिर राँद हो गई। अब की वह बाहर नहीं आया। सभा

बिचारी राँड़-की-राँड़ ही रही । किसी उपाय से उसका पुनर्विवाह नहीं हो सका । इस अक़्ल के पनाले से सारी-की-सारी सभा राँड़ रही, और नेचर देवी के नमूने का यह दृश्य यों ही समाप्त हुआ ।

इति पंचपुराणे प्रथमस्कंधे अष्टत्रिंशतितमोऽध्यायः

एकोनचत्वारिंश अध्याय

महंत की शादी

मोहनगंज में एक पुराने महंत की संगत है । इसमें कुटी बनाकर एक साधु रहा करते थे । साधु को अन्न बाँटने का बड़ा प्रेम था; पर रुपया पास नहीं था । महात्मा की इस इच्छा की पूर्ति करने के निमित्त लोगों ने कुछ ज़मीन आश्रम को अर्पण कर दी । उससे उनका अन्नपूर्णा-भंडार सदा भरा रहता था । यह साधु अपने समय के कर्ण समझे जाते थे । आश्रम में साधुओं का सत्कार होने के कारण सब प्रकार के लोग, संत, साधु, योगी, मुनि, तपस्वी आया-जाया करते थे, और इसी परिपाटी से इस आश्रम की शोभा और कीर्ति दिन-पर-दिन बढ़ती जाती थी ।

कालांतर में महंत स्वर्ग सिधारे । अब चेलों की बारी आई । चेलों में न थी दातव्यता, न परमार्थ का प्रेम । अतएव धन का व्यय अब और मार्ग में होने लगा । पहले गाना आया, फिर गानेवाले और उनके पीछे कथिक, ढाढ़ी, भाँड़, भगतिए, सब आ पहुँचे । अंत में सब धर्म का अंत करनेवाली बाज़ारू बीबियाँ भी आश्रम में पधारीं । फल यही हुआ, जो होना चाहिए था ; अर्थात् धीरे-धीरे महंती का दिवाला निकल गया । पहले कानों ने विषय-वासना से नाता जोड़ा । फिर नाक ने इत्र सूँघकर संन्यास से 'तलाक़' का अधिकार प्राप्त

किया। इसके बाद जिह्वा ने चटोरपन से पाणिग्रहण किया, और त्वचा ने नेत्रों के साथ मिलकर छुआछूत का झगड़ा मिटा दिया। यदि महंत का शरीर पवित्र था, तो बिलकुल अपवित्र हो गया, और जो लोग उसके चरणों में सिर रखकर त्रिताप से बचते थे, उनका क्या हुआ होगा, यह अनुमान किया जा सकता है; क्योंकि पुण्य और पाप के नापने का पैमाना इस समय बाक़ी नहीं रहा। कहते हैं, पाप अपना बाप होता है, यह बात ठीक है। पाप के द्वारा पाप की सृष्टि बढ़ती जाती है। जब गुरु ने लँगोट त्यागा, तो चेले क्यों बाँधने लगे? जब चेले चहले में फँसे, तो आश्रम में पाप की कीचड़ अधिक हो जाना कुछ आश्चर्य की बात नहीं थी। आश्रम में डोलियों-पर-डोलियाँ जाने लगीं। बी मुनक़ाजान भैरवी सुनाने पहुँचीं, और मियाँ टिल्लूखाँ भैरवराग का अलाप लेकर पधारे। इसको आश्रम के भक्त गुणग्राहकता कहते रहे। कहावत है, इंच दो, और गज़ देना पड़ेगा। साधु की इंद्रिय-लोलुपता को जब भक्तों ने गुणग्राहकता समझा, तो उसके बढ़ने में कुछ संदेह बाक़ी नहीं रहा। अब बराबर तान मारनेवाली बीबियाँ संगत में खुले मैदान आने लगीं। भजन गाते-गाते अब वहाँ इश्क़ का माहात्म्य होने लगा। 'इश्क़' में वियोग ही की अधिकता रहती है। बस, भगवान् से या मनुष्य से वियोग एक ही मज़मून रखता है। चाहे परमेश्वर को न पाकर रोना, चाहे प्यारी या प्यारे के वियोग में छटपटाना, मतलब एक ही-सा रहा। 'इश्क़' देव की उपासना से जो अर्थ युवक निकालते हैं, उसी से मिलता-जुलता संन्यासी निकाल बैठते हैं। महंत की यह इश्क़-देवोपासना भी ज्ञान के अंदर गिनी गई। वियोग का गीत सुनने से जी और-का-और हो जाता है। यदि वह स्त्री से संबंध रखता हो, तो वियोग की मूर्ति सामने खड़ी हो जाती है। जिसका जी जिससे लगा होता है, वह उसको याद करने लगता है। फिर

महंत के-से ब्रह्मचर्यधारी तो प्रेम के पाश में बँधकर सर्वस्व ही खो बैठते हैं। परमेश्वर के इश्क़ की जगह बाईजी का प्रेम बढ़ा, और फिर वेश्या और महंत, दोनों कुछ दिन बाद एकरूप हो गए। 'भगत' लोगों ने इसे भी कुछ धर्म ही का अंग माना, और इस श्रद्धा की कृपा से महंताश्रम बिलकुल रंडिकाश्रम हो गया। बाबा के पास थी आमदनी, और इस कारण गुड़ के भक्त चींटों की तरह महंत के भक्त बराबर दौड़-दौड़कर आते रहे। साधु-वेषधारी को इस भगतई से और भी पाप करने का अवसर मिला, और होते-होते संगत का मठ बिलकुल शठ, संठ और शराब का घर बन गया।

* * *

महंत गड़बड़दासजी आज बड़े सवेरे उठे। संगत में ख़ूब चहल-पहल है। चेलों के सिरों पर गुलाबी रंग के नए साफ़े जितेंद्रियत्व की सफ़ाई के लक्षण स्वरूप विराज रहे हैं। फगई नाइन की संकर सृष्टि की कन्या भी साधुओं के समाज में आई है। उसी के साथ पाप की दादी और पट्कर्म की लादी-स्वरूप गड़बड़दासजी की शादी होनेवाली है। थोड़ी देर के बाद महंत की सभा लगी। सभासद लोग आ डटे। उसमें गंदी गली के ऊटपटाँगदासजी, उजाड़मोहाल के दंद्रीदासजी और सभ्य-समाज के फ़ैशनदासजी बड़े-बड़े हम्मामे बाँधकर आ पहुँचे। इनके मध्य में चंदन की चित्रकारी से हाथियों के मुख के समान बिंदियों से रचा हुआ चेहरा बनाए पेटार्थू शास्त्री भी आ बैठे। महंत के अर्द्धशिक्षित क्लासफ़ेलो या सहपाठी भी क़तार लगाकर विराजमान हुए। ख़ैर, विवाह का समय आया, और गानेवाले ढाढ़ी अपनी सारंगी लेकर गाने लगे।

यह समाज देखने लायक़ था। जब विवाह का समय आया, तो एक तीन वर्ष का बालक गोद में लाया गया, और सबके सामने

यह महंत का पेशा बनाया गया। यह रीति संपादित होने पर लोग कहने लगे—"बोल महंत गड़बड़दास की जय !" भगत लोग गुल मचाने लगे, और बाबा लोग "मुबारकबाद" देने। लोग कहने लगे कि महंत की शादी हो गई। इसका मतलब जो समझे, वे गड़बड़ गुरु को बधाई देने लगे। कितनों ने आकर उनके पतित-पावन पैर छुए। कितने दंड-प्रणाम करके "धन्य हो महाराज !" कहने लगे। पर जो इस फ़्रीमेशन-समाज में नहीं थे, उनकी समझ में इस विचित्र शादी की चाल नहीं आ सकी। वे मुँह बाकर इधर-उधर देखने लगे। क्या महंत की शादी लड़के से होती है ? और अगर होती है, तो इसमें दुलहा कौन है ? इस प्रकार की शंका लोग करते ही रहे। पर फल कुछ नहीं निकला। संगत में गाना-बजाना और दूसरे प्रकार की विवाह की धूम-धाम होने लगी। एक जिज्ञासु से और महंत के भगत से जो बातचीत हुई, उससे इसका रहस्य खुल गया। गुप्त बात से पता लगा कि महंतों का ब्याह कुछ और ही तरह का होता है। जब किसी रंडा या संडा से श्रीमूर्ति का गुप्त स्नेह हो जाता है, और ऐसी दशा या दुर्दशा से गर्भ होने के लक्षण होते हैं, तब महंत बाबा की सगाई समझी जाती है। पुत्र महाराज का चेला हो जाता है, और उसकी विधवा या सधवा माता महंताइन बन जाती है। यह हाल सुनकर जान पड़ा कि पुराने ग्रंथों की चाल को छोड़ महंतादिकों ने विवाहादि के नवीन क्रम जारी कर दिए हैं, और वे सब हिंदुओं को माननीय हो गए हैं। लोग उन्हीं नाजायज़ गर्भ से उत्पन्नों के चरणों में सीस नवाकर अपने को कृतकृत्य मानते हैं !

इति पंचपुराणे प्रथमस्कंधे एकोनचत्वारिंशत्तमोऽध्यायः

चत्वारिंशत् अध्याय

रोगी का रोग

कई दिन हुए, एक ऊँचे मकानों की तंग गली में होकर जाने का अवसर मिला। दोनों तरफ़ बड़े विशाल मंदिर थे। बीच में एक लालटेन टिमटिमाती हुई ऐसी जान पड़ती थी, मानो अँधेरे की कराल कालिमा से मार भगाई हुई यह अपनी माता म्युनिसिपालटी को याद कर रही थी। काम था ज़रूरी। समझा गया कि उस मार्ग से होकर जल्दी निकल जाना होगा। आधी दूर पहुँचे थे कि चिराग़ गुल। हमने बुझानेवाले से पूछा—"यह क्या किया?" वह पहले तो बोला भी नहीं, फिर कुछ अकड़कर कह चला कि आसमान में चाँद निकल आया। अब लालटैन की ज़रूरत नहीं। इसी प्रकार की दो-चार कहता हुआ यह गया, वह गया। लीजिए, रोशनी के इंतज़ाम की तारीफ़ करके रास्ता टटोलना पड़ा। इतने में एक मकान के ऊपर कुछ प्रकाश दिखाई पड़ा।

जी में आया, मकानवाले से प्रार्थना करें कि ऊपर से रोशनी दिखा-कर इस अँधेरी गली-रूपी वैतरणी से पार कर दे। पर कुछ कहने की हिम्मत नहीं पड़ी। अंदर से "हाय-हाय" और "राम-राम" के शब्द के साथ ये बातें सुनने में आईं—भगवान् किसी को रोगी न करे, और करे, तो पास में टैंट की गरमी हो। कल मैं डॉक्टर साहब के पास गया। वह नाचते हुए-से आए। नाड़ी पकड़ी, और छोड़ दी। इस टेलीफ़ून से काम नहीं निकला। बोले, हाल कहो। मैंने हाल कहना शुरू किया, और उन्होंने नुस्ख़ा लिखना। मैंने कहा कि हाल तो सुन लीजिए। वह बोले, चोप, और एक काग़ज़ का टुकड़ा देकर दवा लेकर पीने की आज्ञा दी। सामने कंपौंडर की तरफ़ इशारा किया। ख़ैर, आफ़त का मारा

वहाँ जाकर खड़ा हुआ। खड़े-खड़े टाँग दर्द करने लगीं। बड़ी देर के बाद कंपौंडर महाप्रभु ने शीशी उठाई, उसमें दो-तीन माशे दवा छोड़कर फिर मुँहामुँह पानी भर दिया, और उसे एक काग़ज़ में लपेटकर बोले, तेरह आने लाओ। तेरह आने का नाम सुनकर होश उड़ गए। तीन आने रोज़ का नौकर और तेरह आने की दवा! कहा, महाराज कंपौंडरजी, हम ग़रीब ब्राह्मण हैं। इस पर वह घुर्राया, और शीशी टेबुल पर रखकर बोला—जाओ, पैसे लेकर आओ। हाथ जोड़कर कहा—ग़रीबों पर दया कीजिए। वह कह उठा—यहाँ ग़रीबों पर दया नहीं होती। फिर मैंने उससे गिड़गिड़ाकर कहा—दया तो सभी जगह होती है। इस पर वह कहने लगा—ये सब बातें डॉक्टर साहब से जाकर कहो। ख़ैर, मैं दौड़ा हुआ डॉक्टर के पास गया। वह मरीज़ के घर गए थे। मैं मरीज़ उनकी आशा में बैठा बड़ी देर तक उनको याद करता रहा; पर वह जब नहीं आए, तब चला आया।

यह सुनकर मार्ग टटोलते हुए हम आगे बढ़े। अब मालूम पड़ा कि इस गली से पार होना भवसागर के पार होने के समान कठिन है। अंत को उस रोगी के रोग में ख़लल डालना पड़ा। उसको पुकारा, और वह ऊपर से प्रकाश दिखाने लगा। यह मानना पड़ा, डॉक्टर से रोगी के हृदय में ज़्यादा दया है। रोगी महात्मा को धन्यवाद देकर म्युनिसिपलिटी की वागुरा से मुक्त हुए।

इति पंचपुराणे प्रथमस्कंधे चत्वारिंशत्तमोऽध्यायः

एकचत्वारिंशत् अध्याय

दुलारे लल्ला

नैमिषारण्य की युनिवर्सिटी के प्रोफ़ेसर मिस्टराग्रगण्य सूतजी पुरानी इतिहास की कुरसी पर जब विराजमान थे, तो उन्होंने

अनेक पुराण और उपपुराणों की आलोचना कर डाली थी। वे सब बातें आजकल इतिहास में नहीं मानी जा सकतीं। इसका कारण यह है कि इतिहास के पुराने माने चाहे जो हों, पर "पंच" लोगों में इतिहास को हास्य कहने की जो बात है, वही मानी जानी चाहिए। व्याकरण की टाँग तोड़नेवाले पंडित अब नहीं रहे; नहीं तो वे यह कहते कि हस धातु से 'हास' बना है, और जो हँसना सिखावे, वह इतिहास। यह सुनकर लोगों को शंका करने की जगह नहीं है; क्योंकि आजकल के इतिहास जाननेवालों में पुराणों की हँसी उड़ाने के सिवा और कुछ योग्यता आ ही नहीं सकती। सैकड़ों आदमी बाप को बेवकूफ़ कहते हैं, तो हज़ारों अपने दादा को शीतलादेवी के वाहन का सगा बनाने में नहीं हिचकते, और करोड़ों ऐसे हैं, जो अपने आजा-परपाजा को बिलकुल उल्लू का पट्ठा मानते हैं। इतिहास का यही प्रत्यक्ष फल देखने में आ रहा है। ऐसी अवस्था में सूतजी की मतलब-भरी बातों को ये अल्हड़ बछेड़े क्या समझ सकते हैं? उनकी समझ बिलकुल नहीं समझ सकती कि भविष्य-पुराण कैसे बनाया गया? इतिहास भूत-काल की बातों का समूह होता है; उसमें भविष्य कैसा? इस बखेड़े को न भी बढ़ावें, तो भी इतना तो ज़रूर पाया जायगा कि पुराने लोग इतिहास की हद मानने में आजकल की हद से ज़्यादा बढ़े हुए थे। अब के लोग भूत-काल ही को इतिहास मानते हैं, और पुराने लोग भूत और भविष्य, दोनों को इतिहास मानते थे। उसी भविष्य-पुराण में कहीं पर 'दुलारे लल्ला' का हाल भी ज़रूर लिखा गया होना चहिए। जिन लोगों पर भगवान् की कृपा या दैव-योग का संयोग आकर कुछ ऐसे ढंग से पड़ता है कि वे सब नियम-उपनियम तोड़कर उसी तरह भागने लगते हैं, जैसे बँगरहा बैल, और सब ऐसे लोग नियम पर चलनेवालों का उलटे गला घोटने

को तैयार हो जाते हैं। तब उनकी गिनती 'दुलारे लल्ला' की श्रेणी में आ जाती है। पुराने ज़माने का तो हाल अलग कीजिए। शाही दिनों में राजधानियों में सैकड़ों ऐसे 'लल्ला' हो गए हैं। बादशाहों के महलों से संबंध रखनेवाले सब क़ानूनों के ऊपर थे। उनकी प्रत्येक बात कौंसिल के उन प्रस्तावों के समान थी, जो अधिक राय की सहायता से रद होना जानते ही नहीं। पर पुराने 'लल्ला' अपनी मौज में भरे नवाब, राजा और बाबू बनकर रात-दिन मौजों में पड़े उछल-कूद किया करते थे। देश में ब्रिटिश शासन का आसन जमते ही इस नवाबी 'लल्ला'-गण का पता नहीं रहा। लोग कहने लगे थे कि इस राज्य की न्याय की चमक को ये लोग सह नहीं सकते, अतएव किसी कोने में छिपे होंगे। अब इन जीवों का पता लगा है।

जान पड़ता है, उस पुराने 'लल्ला'-समूह ने अवतार लेकर गोरे संवाद-पत्रों का रूप धारण किया है। यह नहीं कहा जा सकता कि किस गुप्त संबंध से इनको क़ानून के ऊपर हरताल पोतने और मन-मानी हाँकने का अधिकार प्राप्त हुआ है; पर इनकी सब बातें सूचित यही करती हैं कि हैं ये पुराने 'दुलारे लल्ला'। सरकारी गुप्त बातों को छिपाने का क़ानून तो बना, पर ये बराबर गुप्त रहस्य छापते रहे। झूठी बातें कह डालना इनके बाएँ हाथ का खेल है। इसलिये यह ऊपर लिखा ख़िताब आजकल इनके लिये ठीक जमता है। इन 'लल्ला' लोगों की कथा सूतजी के फ़रमान से भविष्य-पुराण के किसी पुराणाचार्य को यों लिखनी चाहिए—

नैमिषारण्य के सूतजी शौनकादिक मुनियों से कहते भए कि कलिकाल में नाना प्रकार के दुलारे लल्ला प्रकट होयँगे। ये सब दया की वृत्तिन के वृक्षन को अपनी लेखनी की कुठारन तें काट-कार भलमनसी को संहार करेंगे।

ये बड़ी टर्र के जीव कहावैंगे, और इनके आगे डरन के मारे बड़े साहबन की पतलूनन में गीलेपन की कौन कहे, बिगड़नेपन की अवस्था आय जायगी।

इनके आतंक सों सब अमला, गमला और हाकिमन की नानी मरैगी, और इनकी खूब पूजा होयगी।

नोटिस के नैवेद्य से प्रसन्न होनेवाले ये दुलारे लल्ला दिग्गजन की भाँति भारत की भूमि पै कोने-कोने बैठकर देश की मही को दबाए रहेंगे।

समुद्र के तट पर मद्य-राशि नगर में एक 'मेल' नामधारी दिग्गज दक्षिण-दिशा में बैठैगो। या दक्षिण के कृतांत के सहोदर के समान सबकूँ विकट रूप दर्शाय के हाहाकार की अशांति को सोतो बनि जायगो।

कालीघाट के निकट खरगोशन की बस्ती में 'मयन' नाम के दानव को नामराशी दूसरो दिग्गज प्रकट होयगो। या गरीबन को ध्वंसकारी सर्वदा कठोरता की तरवारन की धार सों एकता के गले में भोंकाभोंकी के पाप को बुरो नाहिं समुझैगो।

गंगा और जम की तनया के संगम पर जमराज के स्वभाव के भाव सों भरो एक विराट् दिग्गज प्रकट होयगो। या नैवेद्य की पूजान सों पेट को नगारो बनाय के सबके पेट काटिबे को नगारो बजायो करैगो। गरीबन को पानी अरु रोटी को हरनवारो या 'पानी को अरि' सबसे भयंकर होयगो।

पांचाल-देश के प्राचीन लवपुर-ग्राम में एक पोस्ती की 'पोस्त' पश्चिम-दिशा को दिग्गज प्रकट होय के पंजाब को दाबिबे के हेतु अवतरित होयगो। या पोस्तिन की तरह सब सत्यवादिन को असत्य दिनाइबे की पीनक में झूमते रहैगो।

इतनी कथा सुनकर शौनकादिक मुनि सूतजी से पूछने लगे कि

महाराज, यह दिग्गज की और विशेष कथा सुनने की हमारी सबकी इच्छा है।

सूत उवाच—अर्थात् सूतजी कहत भए कि हे मुनीश्वरो, तुमने या जग के कल्याण की बात पूछी। किंतु या दशहरे को अवसर है। लंका के रावण की लीला में सब लगे हैं। इनकी कथा सों रावण की कथा फीकी होय जाइबे को डर है। तासों अब इतनो ही सुनि कै संतोष करौ। फिर काहू पुनीत समय में इनको आख्यान कह्यो जायगो।

गोरे पत्रन को सदा, सुंदरवर इतिहास ;
पढ़े पाप कटि जात हैं, होत अंत को नास।

इति पंचपुराणे प्रथमस्कंधे एकचत्वारिंशोऽध्यायः

द्विचत्वारिंश अध्याय

मेरा महत्त्व

एक हँसोड़ बाबू लिखते हैं—जनाब एडीटर साहब, जबसे मैंने सुना कि प्रजा को अधिकार मिलनेवाले हैं, तब से मेरा अपनी तबियत पर अधिकार जाता रहा। "चौबेजी छब्बे बनने चले, पर दुबे ही रह गए"। चाहते थे प्रबंध पर अधिकार, और यहाँ तबियत पर से भी अधिकार चला गया।

मैं 'मदरास-मेल' और उसकी श्रेणी के जीवों से हमदर्दी करता हूँ। उनकी और मेरी एक-सी कैफ़ियत है। हम दोनों एक ही नाव के मुसाफ़िर हैं। वे कमर्शियल कम्यूनिटी की बड़ाई का पक्ष लेते हैं। मैं उनसे इस बात से अत्यंत प्रसन्न हूँ। मैं चाहता हूँ, वे अपनी इस कमर्शियल कंपनी के साथ-साथ सारे हिंदोस्तान की (पिण्ट्रिकल) कंपनियाँ भी शामिल कर लें, और उन कंपनियों के अंग, उपांग,

भाँड़, भगतियों, और ढाढ़ी-वेश्याओं की एजेंसी के जनरल मर्चेंटों को भी भूल न जायँ। ऐसा करने से उनकी जमात और भी बढ़ जायगी, और देहातियों के पक्ष को लेकर झूठी परकटी उड़ाने के पाप-कर्म से अलग रहना पड़ेगा। यदि वे इस बात को मानना पसंद न करें, तो फिर वज़ीर साहब के हिंदोस्तानी सिकत्तर के आने तक हमारी जमात क्यों न ज़मीन-आसमान के कुलावे मिलाने पर कमर कसे? क्यों न हम अपने 'विचार' या महत्त्व का झंडा कांग्रेस और होमरूल-लीग, दोनों के ऊपर ले जायँ? हम किसी जमात से किसी बात में कम नहीं हैं। एक तो यह कि हमारी बड़ाई संसार में विख्यात है। किसी एक जमात ने तो कहीं सो-पचास कंपनियाँ खोली होंगी, पर हमारे इश्क़-समाज की कंपनियाँ और दूकानें हर शहर और आबादी को आबादी की रौनक़ दे रही हैं। तमाम शहरों के चौक हमारे ही भाई-बंदों की चौकस कार्रवाई से चमक रहे हैं।

करोड़ों रुपए के बाजों और चमक-दमक के सामानों की बिक्री हमारे ही सबब से है। इसलिये कमर्शियल कम्यूनिटी की तिजारत का बढ़ना हमारे ही कामों का नतीजा है। अतएव ज़ोर से कहना पड़ता है कि गाने-बजानेवालों और तायफ़ों की जमात को अलग करके जो सुधार या रिफ़ार्म किया जायगा, वह सच्चा सुधार कभी नहीं होगा। मैं न्याय, इंसाफ़ और भलमंसी की दुहाई देकर कहता हूँ कि सुधार में पूरा अधिकार बाज़ार में बैठनेवाली स्त्रियों और उनके सहोदर नाचने-गानेवालों को ज़रूर मिलना चाहिए। बल्कि होना तो यह चाहिए कि और को नहीं, केवल उन्हीं को अधिकार दिया जाय, मुसलिम-लीग, कांग्रेस और होमरूल-लीग, सब बंद कर दी जानी चाहिए, और एनीबेसेंट तथा उनके साथी और-और लोग जो उनमें गुल मचा रहे हैं, वे सब नज़रबंद कर

दिए जायँ। मदरास-मेल और उसके मेल के पत्रों को छोड़कर सब पर सेंसर लगा देना भी मुनासिब है। तवायफ़ और कमर्शियल कंपनी को छोड़कर और किसी की राय नहीं मानी जानी चाहिए। लोग इसको पढ़कर हँसी भले ही उड़ावें, मगर बात यह है जिन लोगों की तरफ़ से मैं बोल रहा हूँ, वे ही असली अधिकारी हैं। ऐसा कोई ग्राम या क़सबा नहीं है, जिसमें तवायफ़ या कसबी न जाती हो। इसलिये ग्रामीण और देहातियों की पंचायत की सर-पंची हमको प्राप्त है। करोड़ों रुपए हमारी जमात से देश में नित्य ख़र्च होते हैं। हमारे मत में सुधार में ये बातें होनी उचित हैं—

(१) सब कौंसिलें तोड़ दी जायँ।

(२) प्रबंध का अधिकार अँगरेज़ या हिंदोस्तानी, चाहे जिसके हाथ में हो, पर यह शर्त है कि वह अफ़ीम खाता हो।

(३) शिक्षा से झगड़ा फैलता है। वह बिलकुल बंद की जाय, और अब नाचने-गाने की तालीम का काम जारी किया जाय।

(४) हर काम में गाने और नाचनेवालों की राय ली जाय।

ये चार बातें चतुर्वर्ग के समान देश, समाज और नीति के लिये परमोपकारी हैं।

आपका कृपाकांक्षी—

एक भाँड़

इति पंचपुराणे प्रथमस्कंधे द्विचत्वारिंशोऽध्यायः

त्रिचत्वारिंश अध्याय

लाला की ललाई

बादशाही अमलदारी के चले जाने के बाद, चिरकाल तक, पुराने साँचे में ढले लोग नवाबी ज़माने को याद करते रहे।

उनको नवीन न्याय और उत्तम प्रबंध की कुछ भी चाह नहीं थी। वे अपनी उसी पुरानी चाल को चलाना चाहते थे, जिसमें हाकिम की इच्छा सब क़ानूनों के कान काटती है। इस शासन-पद्धति में मुख्य आसन ख़ुशामद और ठकुरसुहाती को दिया गया था। जो जितनी हाँ-में-हाँ मिला सके, वही लायक़। जो दाँत गिड़गिड़ाने में दक्ष हो, वही सर्व-शास्त्र-पारंगत। जिस प्रकार आज-कल युनिवर्सिटी की उपाधि पाए लोग अच्छे समझे जाते हैं, वकील, बेरिस्टर आदि शिक्षित पुरुष मानास्पद गिने जाते हैं, उसी प्रकार शाही समय में ख़ुशामदियों की तूती बोलती थी। वे सब बात में बढ़े-चढ़े गिने जाते थे। ख़ुशामद-देवी की उपासना सब कुछ मनोवांछित फल दिलाती थी। इसकी कृपा से न्याय को अन्याय करा देना एक साधारण बात थी। अतएव चाटुकारिता ही जीवन का प्रधान साधन मानी जाती थी। एक बात और भी थी। आजकल शिक्षित डिगरी की दुम लगा कर भी आजन्म नौकरी की टोकरी का बोझा लादते हुए ही संसार-यात्रा समाप्त करते हैं। पुराने लोग ठकुरसुहाती की कृपा से आजन्म स्वतंत्र ही रहकर समय व्यतीत करते थे। नई और पुरानी चाल की उत्तमता का झगड़ा कहीं एकडेमिक अर्थात् दार्शनिक न हो जाय, इसका बड़ा भय है। क्योंकि अनेकों पुरुष नौकरी की कृपा से कोट-पतलून की टिकटिकी में लदकर ठंडी सड़करूपी नंदन-कानन की हवा खाने जाया करते हैं, और ज़रा-सी बात पर नवीन दासत्व का पक्ष लेकर बटुक-नाथ के मंदिर की रक्षा करनेवालों की भूँकनेवाली परिपाटी पर चलने को बुरा नहीं समझते। अतएव इस झगड़े को न बढ़ाकर कथा पर ध्यान देना चाहिए। देश में अभी पदस्थ लोगों की तान-से-तान मिलानेवाले इतने हैं कि वे कांग्रेस के समान ऐंटी कांग्रेस करके प्रसन्नता-पूर्वक सब प्रकार के मंतव्य पास करने की हिम्मत अपने

पास रखते हैं। खुशामद को बुरा कहा नहीं कि जी हुजूर की खुशामद-मंडली धावा करके आराम से बैठने में भी मीन-मेख की रेख लगा सकती है। अतएव हाँ-में-हाँ का सुर मिलानेवालों को प्रणाम करना उसी प्रकार ठीक है, जिस प्रकार गोस्वामी, कवि-शिरोमणि, तुलसीदासजी ने रामचरित-मानस में लिखा है—

पुनि बंदौं खल जन सति भाए;
जे बिन काज दाहने बाँए।

जान पड़ता है, हमारे हिंदी-कवि-सिरमौर गोस्वामीजी ने खुशामदियों की वंदना छोड़ दी है। इसकी यहाँ पर पूर्ति हो जानी चाहिए—

वंदन करहुँ खुसामद चारी;
इनको प्रकट प्रभाव विचारी।
हाँ-में-हाँ करि जीतैं सबहीं;
हाकिम विमुख न इनसों कबहीं।
साहब घर लै डाली डोलैं;
गिड़गिड़ाय बत्तीसी खोलैं।
झुकि-झुकि करैं बंदगी ऐसी;
साखी साख* बोझजुत जैसी।
'जी हुजूर' को मंत्र उचारें;
'खुदावंद' के बहैं फुहारें।
सहेबहि माई-बाप बनावैं;
उलटी उलट तिन्हैं समुझावैं।
पीड़ित प्रजा कहैं सुख-पूरी;
है दरिद्रता इन सों दूरी।

---

*साखी=वृक्ष

जग खुसामदी जदपि बहु, मुख्य भेद तिन तीन ;
सामाजिक, नैतिक प्रकट, पुनि पैसाचिक हीन ।

सामाजिक की कथा पुरातन ;
सुने होत मन सबको पावन ।
जग महँ अन्य देवता गायन ;
करत सबै कहि नगदनरायन ।
जिनके पास नगद है पैसा ;
वही पंच, हो चाहै जैसा ।
मूरख भोलानाथ कहावै ;
लंपट कृष्ण भगत ठहरावै ।
कालो भैंसासुर की सूरत ;
बनत पैंठि सुंदरता-मूरत ।
रंडिन-मुंडिन को व्यभिचारी ;
तिलक लगाय बनत आचारी ।
पापी केतेहु भए अनेकन ;
बड़ेपने जिन पाइ विवेकन ।

पाप-भरे धन-मद-सहित, जब लाला कहलाय ;
तब खिताब की लालसा, साहब तक लै जाय ।

सामाजिक खुसामदी जेते ;
हैं खिताब पर लट्टू तेते ।
जिलाधीस इनके कुल देवा ;
लै-लै जायँ सदा उत मेवा ।
मेमहि कुल देवी करि मानैं ;
बाबा-गन कहँ बाबा जानैं ।
बैरा को गुरु-सो सनमानैं ;
पितामही आया कहँ जानैं ।

बँगले इन हित तीरथ पावन ;
नासन पाप, खिताब-दिखावन।
हाँ-में-हाँ नित बोलैं लाला ;
पाय खिताब हटै उर साला।
इनके और न इष्ट कछु, है खिताब की चाट ;
मान हेत नाचत फिरैं, रचैं अमीरी ठाट।
दूजे ठकुर-सुहातीवारे ;
परम भयंकर विषम उचारे।
नित्य बने कुरसी-अधिकारी ;
मिथ्यावाद बनाय विचारी।
प्रजा हेतु जब साहब बोलैं ;
तब यह हिय को माहुर घोलैं।
कहैं बगावत बात बनाई ;
धमकावैं कहि मूढ़ ऋुठाई।
अगली सभा कलेस करारी ;
करैं धूम तें अंटी भारी।
कहैं सभा दल झूठ बनावै ;
अनहित प्रजा सबै समुझावै।
स्वारथ भगत देस के नासक ;
यह मत्सरता के परकासक।
तीजे महा भयंकर, चाटुकारिता केर ;
परम उपासक जौन तिन, विनवहुँ लगै न देर।
महाखुसामद के यह चेरे ;
खल सम सर्प सत्रु सब केरे।
बोलैं झूठ, बनावैं निंदा ;
साहब-पद समुझैं अरविंदा।

केहि को बागी कहि बिस्तारैं ;
केहि फिर राजद्रोह कहि डारैं।
बस लाला की यहै ललाई ;
पुस्तिन-पुस्तिन ते चलि आई।
इनको बिनवैं सदा चतुरगन ;
बचे रहैं आपत्ति काल सन।
बाबा तुलसी ने यह छोड़ी ;
वही बात अब पंचन जोड़ी।

इति पंचपुराणे प्रथमस्कंधे त्रिचत्वारिंशोऽध्यायः

चतुश्चत्वारिंश अध्याय

ठाकुरजी को हवालात

लाला चमगीदड़मल कई बातों में चमगीदड़ों से मिलते थे। वह रात को जागते और दिन को मसनद के गधे बने खुर्राटे लिया करते थे। यही एक ऐसी बात थी, जो "यथा नाम तथा गुणः" की कहावत का जीता-जागता उदाहरण थी। लाला ने झूठ बोल-बोलकर और सूद-दर-सूद की खाल खींचनेवाली वृत्ति की बूचड़ प्रथा का पालनकर बड़ा धन जमा कर लिया। वह थोड़े ही दिनों में महाजन या महाजिन्न कहलाने लगे। अब इनमें से रही-सही रहीसों की कृपा से बिलकुल सत्य का सत निकल गया, और सारा समय रुपया जमा करने के असत् कार्य ही में दिन-रात लगने लगा। 'महाजिन' होकर लाला चमगीदड़ ने एक ठाकुर-द्वारा बनवाया, और उसको स्वर्ग का सार्टीफ़िकट समझकर बड़ी धूमधाम की। आरंभ में उसमें रंडियों ने इश्क़बाज़ी के स्तोत्र गाए, नाचनेवाले लौंडों ने पाप का पूरा पारायण किया, भाँड़ों ने

धर्म-कर्म और शर्म को तिलांजलि देने के पाठ पढ़े। इन सब बातों से लाला का मंदिर बिलकुल कामदेव का क़ब्रस्तान या समाधि-मंदिर बन गया, जिसमें सदाचार और धर्म, दोनों को 'दफ़न' होने को जगह मिल गई। लाला चमनीदइ को इस बात का चिरकाल तक बड़ा घमंड रहा कि उनके ठाकुर-मंदिर में धर्म के कार्य होते हैं, जिनके कारण उनको कम-से-कम स्वर्ग जानेवाली रेल के फ़र्स्ट क्लास में बैठने का टिकट ज़रूर ही मिलेगा। इसी विचार से वह 'परसाद' बाँटने के साथ ताना-रीरी की उपासना ज़रूर ही करता, रहस, नौटंकी और रंडिका का नृत्य कराकर ख़ूब वाहवाही लूटता, और कलियुगी इश्क़बाज़ों के भक्तमाल में चमकता हुआ सितारा बनने की लालसा में बहुत कुछ धन ख़र्चता रहा। अंत में यह महाजिन जिन्नलोक को सिधारा। इसके दुनिया से कूच करने के बाद मंदिर का प्रबंध ट्रस्टियों के बँधन में फँसा। ठाकुरजी की पूजा की चाल बदल गई। वह एक पुजारी-रूपी चपरासी या जेल के दारोग़ा के सिपुर्द हुए। क़ैदियों का-सा 'रेसन' मिलने या भोग लगने का विधान हो गया। दिन-भर बेचारे ठाकुर ताले में बंद रहकर काल-कोठरी का अनुभव करते। प्रातःकाल कुछ देर हवा देने के ढंग का द्वार खुल जाता, और दो-तीन तोले मीठा उनको भोग लगता, या यों कहिए कि प्राण-रक्षा के निमित्त दिया जाता। बाद को पूजा के अरि महाराज पिंड बनाने के मोटे चावल और दो पनेठी तथा उर्द की दाल की अभक्ष्य रोटी ठाकुर महाराज के सामने लाकर पटकते, और ५ मिनट की टायँ-टायँ के उपरांत इस भोगरूपी रोग से ठाकुरजी पर आरती और धूप का आक्रमण करके फिर फाटक बंद करते। अब देव-मूर्त्ति तीसरे पहर तक फिर बंद रहती, और सायंकाल को धेले के खीरे का भोग लगाकर फिर काल-कोठरी में डाल दी जाती। इस प्रकार की हवालातों में तो

श्रीकृष्ण की मूर्तियाँ बंद हैं, और उनसे भी कड़ी जेल, जो शायद काले पानी से किसी अंश में कम न होगी, पार्वती-पति चंद्रशेखर महादेव को दी जाती है। यह बेचारे कहीं-कहीं अक्षत और लोटा-भर पानी पा भी जाते हैं ; पर अधिकांश में हमेशा के लिये बंद या नज़रबंद होकर रूस की कड़ी जेल का अनुभव किया करते हैं। जहाँ-जहाँ मंदिरों के बनानेवालों ने ज़मीन की छाती पर ये मंदिर-रूपी बोझ खड़े किए हैं, वहीं दो-चार को छोड़कर बाक़ी के यही हवालाती दृश्य देखने में आते हैं। उस पर तमाशा यह कि मंदिरों के बनानेवाले या ट्रस्टी अपने काम को धर्म का महाकाम समझकर जब अपने काम की तारीफ़ करने लगते हैं, तो बिलकुल आपे से बाहर होकर बेकाम हो जाते हैं। हाल में एक मंदिर में लौंडों के नाच की नौटंकी की पाप-लीला का समारोह था। सबको बुलावे के कार्ड भेजे गए, और नगर-भर के निकम्मे इस मेले में जमा हुए। मंदिर के ट्रस्टी अपनी तोंद पर हाथ फेरते, गले में मोटा तोड़ा डाले, सबको 'सलामें' करते और अपनी ट्रस्टगीरी का नमूना दिखा रहे थे। एक आदमी वहाँ सबके सामने आपकी बड़ी तारीफ़ें करता था, और लोग वाह-वाह करके परसाद की दोनी लेकर चले जाते थे। थोड़ी देर के बाद यह दोनीपन समाप्त हुआ।

चमगीदड़मल के मंदिर के गूदड़दास ट्रस्टी की प्रशंसा के नोट जो लिखकर रक्खे थे, उनको पढ़ा, तो तारीफ़-नामा यों निकला—जिस दिन चमगीदड़ मरा, लाला गूदड़ ने सारे माल पर क़ब्ज़ा कर लिया। ठाकुरजी के गहने में गहन लगा दिया, बेंच-खोंचकर जहाँ-का-तहाँ कर दिया। देव-मूर्ति की सोने की आँखें निकालकर ताँबे की लगा दीं। मोटे अन्न की रोटी भोग में चला करके किफ़ायती जेल का-सा रैसन ठाकुरजी के लिये नियत कर दिया। सब मिलकर १०१ रंडियों के चरणों से मंदिर को कृतार्थ किया गया।

साँझी में ग्यारह हज़ार ग्यारह सौ नौ श्रादमियों ने लौंडे को पूरा। २०७ लौंडे मंदिर में नाचे। ८८ हज़ार क्यूबिक फ़ीट चरस के धुएँ से मंदिर को धूनी दी गई, और २० हज़ार क्यूबिक फ़ीट गाँजे की दुर्गंध-भरी हवा ने देव-मंदिर के वायु मंडल को दुरुस्त किया।

कई हज़ार क्यूबिक फ़ीट हवा में शराबियों की पाप-भरी श्वास ने प्रवेश किया। लाखों फ़ीट वायु मंडल चर्बी की बत्तियों से शुद्ध किया गया। इसके सिवा ६ लाख "वाह", "इश्क़", "बुलबुल", "हमदम", "प्यारी", "मयख़ाना", "लब", "बोसा", "क़ातिल", "बिस्मिल", आदि शब्दों का उच्चारण हुआ। तीन बार "राधिका" का, ४ बार "कृष्ण" का नाम लिया गया। ब्रह्म का नाम एक बार भी नहीं लिया गया। ६० हज़ार ग़ज़लें, ८ हज़ार ठुमरियाँ और दादरे गाए गए। प्रैक्टिकल कार्यों में कई बार स्त्रियों को निकम्मों ने छकेला। दो भ्रूण-हत्या के काम हुए। कुछ ऐसी भी बातें हुईं, जिनको कहना भी लेखनी को लज्जित करना है। यह ट्रस्ट के एक अंश की रिपोर्ट है। पढ़नेवाले यदि कुछ ज्ञान प्राप्त करें, तो पुण्य के भागी अवश्य हो सकते हैं।

इति पंचपुराणे प्रथमस्कंधे चतुश्चत्वारिंशत्तमोऽध्यायः

पंचचत्वारिंश अध्याय

बहादुर बीबी

ज़माना करवट बदलता है। पंडित के मिस्टर हो जाने में डर नहीं रहा, और बाबुओं की कमरें धोती-पायजामे की अमलदारी से निकलकर बी पतलून की हकूमत में चली गईं। जो छुआछूत सदाचार का काम देती थी, वह अब मूर्खता देवी की ध्वजा समझी जाने लगी। तब ऐसी दशा में बीबियों में बहादुरी का अंश आ

गया, तो आश्चर्य नहीं करना चाहिए। दमकलापुर की 'आबोहवा' अर्थात् जल-वायु का कुछ ऐसा प्रभाव था कि वहाँ के ग़रीब-अमीर, सब मोटे-ताज़े होते थे। अमीर तो तोंद की मारूसी या बपौती संपत्ति पाने के अधिकारी हर जगह समझे जाते हैं। पर इस आबादी के ग़रीब भी छोटी सूस के सगे नहीं, तो सौतेले भाई ज़रूर ही दिखाई पड़ते थे। यहाँ ग्राम-भर के लड़के और लड़कियाँ मोटे-मोटे तुंदिल तथा गदबदे थे, और हड्डियों के पंजर-से आजकल के लोग स्वप्न में भी नहीं दिखाई देते थे। दमकलापुर की बाज़ार की उपमा अब कहीं नहीं देख पड़ सकती। गोल-मोल आदमियों की भीड़ देखते ही बनती थी। जिसको देखिए, ख़ासा भंगभवानी के उपासक चतुर्वेदी या चौबे की बराबरी करता दिखाई देता था। इसका कारण ठीक बताया नहीं जा सकता। आजकल के अर्थ-शास्त्र के शास्त्री आबादी को उन्नति-संपन्न और समृद्धशाली कह सकेंगे; किंतु जब उनको यह मालूम होगा कि दमकलाग्राम के लोग बड़े ग़रीब थे, तब उनको अपना अर्थ-शास्त्र व्यर्थ जचने लगे, तो कुछ आश्चर्य नहीं। ख़ैर, इस फ़ाक़े-मस्त बस्ती की एक कन्या से मिस्टर टेंटेराम की शादी हो गई। टेंटें जब कॉलेज की चरागाह में हाँका जाता था, तब १८ वर्ष का होगा। उस समय इसको विश्वविद्यालय की दुम मिलने के साथ ही दमकला की कन्यारूपी दुम के पाने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। कन्या का नाम था भीमसेनी, और वह वास्तव में नाम के समान गुण रखती थी। विवाह के समय भीमसेनी कोई १२ वर्ष की होगी। टेंटेराम २० वर्ष के होने के कारण समझे गए कि वह उसके उपयुक्त वर हैं। पर बात कुछ और निकली। चार वर्ष बी० ए० की चाँदमारी में प्रारब्ध की गोली लगने के समय तक टेंटेराम के ख़ून ने तो बढ़ने से इनकार कर दिया, और उसकी पाणिगृहीती पत्नी ने वह विकास दिखलाया कि

बड़े-बड़े विकास-वादियों की नानी उसका सिद्धांत निकालने में मरी नहीं, तो अधमरी ज़रूर हो गई। श्रीमती भीमसेनी अर्ज़-तूल में बराबर-सी हो गईं, और उसके लिये जो बड़ा घर समझा गया था, वह बहुत छोटा जँचने लगा। कुछ दिनों के बाद मिस्टर के सांसारिक भाग्य का उदय हुआ, और वह सौ रुपए माहवारी पर नौकरी की टोकरी उठाने के योग्य हो गया। सस्ते समय में सौ रुपए से भोजन-आच्छादन के सिवा और भी सौ काम बन सकते थे; पर अब सौ-सवा सौ रुपएवाले फ़क़ीर नहीं, तो भिखमंगों की हालत में रहकर अपने कर्मों को लानत ज़रूर दिया करते हैं। मिस्टर टेंटें की भीमसेनी के कोई संतान नहीं थी, इस कारण वह दाना-घास से कुछ बचा भी लिया करता था; किंतु कठिनता यह थी कि श्रीमती के मटके-से पेट में मूसल-से हाथ-पैर पहलवानों की परंपरा के थे, और उनको सुंदर बनाने के लिये आभूषणों की दरकार थी। उस पर तुर्रा यह कि मामूली वनिता के जितने सोने में बाँह-भर के आभरण बन सकते थे, उतना सोना श्रीमती टेंटें-पत्नी के एक गहने के लिये ही पर्याप्त था। यह देखकर टेंटेंराम की नानी क्या, परनानी तक मर गई। इधर सौ आए, और दो-चार दिन बाद मुफ़लिसी के दर्शन होने लगे। वह बड़ा घबराया। उसको अर्थ-शास्त्र की बातें छोकरों का खेल जँचने लगीं। वह ग़रीबों के भाग्य पर कभी-कभी रो देता, और कभी यहाँ तक गरम होता कि देश को अमीर या आगे से अधिक सुखी माननेवालों को खोटी-खरी तक कह उठता। इन सब बातों को भीमसेनी देवी कुछ नहीं समझती थीं। और, समझतीं क्योंकर? मोटे अंग बिना गहने के पुरुष के-से लगने लगते थे। रात-दिन अलंकार की पुकार करने के सिवा सुंदरता क़ायम रखने का उसके लिये कोई द्वार नहीं था। इस प्रकार यह युद्ध २७ महीने चलता रहा। पेट

काट-काटकर टैंटं ने हज़ार रुपए बचाए, और वे श्रीमती लेडी के ख़ाली एक कड़ों की जोड़ी में आ गए। मिस्टर टैंटराम बड़ा लाचार था। धमकी देकर समझाने की उसकी हिम्मत नहीं पड़ती थी। चहरे को वह मानती न थी। टैंटराम ने परोस की एक पुरानी बीबी के द्वारा सुलहनामा करने की बात सोची, उससे जाकर सब कच्चा चिट्ठा कहा, और गिड़गिड़ाकर भीमसेनी को समझाने की प्रार्थना की। आजकल यह बात प्रकृति के अंदर आ गई है कि नौकर बाबू को अपने दासत्व का जितना घमंड होता है, उससे हज़ारगुना उसकी बीबी को होता है। वह इस बात को तो नहीं समझती कि उसके पति को हरएक के लिये दासानुदास लिखने और झूठ की सृष्टि के आकाश और पाताल के कुलाबे मिलाने में जीवन व्यतीत करना पड़ता है। भीमसेनी देवी में यह भाव कुछ विशेष रूप से था। अपनी परोसिन से यह सब हाल मालूम होते ही वह प्रचंड क्रोध करके घर में आई। और मिस्टर टैंटराम का हाथ पकड़ कर बोली—"क्यों जी, तुम दुनिया-भर की पोशाकें पहनते हो, और मेरे एक जोड़ी कड़े बनवाने में तुम्हारे पेट में बड़े-बड़े दर्द होने लगे?" कैफ़ि-यत तलब करने के पहले श्रीमती ने मिस्टर का हाथ बड़े ज़ोर से पकड़ा था। वह टस-से-मस न हो सका। डाँट सुनकर, आख़िर था तो पति ही, उसमें भी कुछ मालिकाना या स्वामित्व का घमंड आ गया। बोला—"यह खूब कही! तुम्हारी मेरी क्या बराबरी?" बात पूरी भी नहीं होने पाई, श्रीमती ने ऐसा करारा थप्पड़ लगाया कि मिस्टर के वज्र-सा लगा। वह अपनी पतलून सँभालता हुआ गरदन झुकाकर एक तरफ़ हट गया। फिर क्या हुआ, यह मालूम नहीं हो सका; क्योंकि कंथा के रिपोर्टर अपना पोर्टफ़ोलियो-रूपी सामान का बंडल लेकर अलग भागे।

इति पंचपुराणे प्रथमस्कंधे पंचचत्वारिंशत्तमोध्यायः

षट्चत्वारिंश अध्याय

अवतारी बाबू

इधर कई सौ वर्षों से कोई अवतार संसार में अवतरित क्यों नहीं हुआ, इसका पूरा जवाब भगवान् के यहाँ से मिलना चाहिए। किंतु ऐसा होना संभव नहीं दिखता; क्योंकि भगवान् की शासन-प्रणाली कुछ ऐसे ढंग की जान पड़ती है, जिसमें सवाल-जवाब का बखेड़ा नहीं। इधर पुरानी किताबों में एक कल्कि-अवतार का हाल लिखा हुआ मिलता है, और नवीन लोगों में अवतार की धूम, धुक्का-फ़ज़ीहत बहुत कुछ हो चुकी है। किंतु इन झगड़ों से कोई झगड़ा तय नहीं होता देख पड़ता। हाँ, इतना अवश्य प्रकट होता है कि अवतार होता या हो सकता ज़रूर है। इसकी कोई प्रत्यक्ष पहचान नहीं है। न अवतार का किसी ने ठीक लक्षण ही कहा है। पर कपर्दिकामल के वंश में एक बाबू साहब अपने को अवतार मानने लगे हैं। उनका यह ख़याल है कि अवतार वह है, जो कुटुंब में सबसे बढ़कर हुआ हो, और वह गंगा का लोटा लेकर ख़ानदान में अपने को सबसे बड़ा कहने में तत्पर हैं। वह कहता है कि बड़ा आदमी शरीर की लंबाई-चौड़ाई से नहीं गिना जाना चाहिए। बड़ा वह, जो बुद्धि में बड़ा हो, विचार में अधिक हो, सामाजिक सुधार में सबसे सौ-पचास क़दम आगे हो। अवतारी बाबू अपने में ये सब गुण प्रत्यक्ष रूप से रेखा-गणित के साध्यों के समान सिद्ध करने को प्रस्तुत है। वह कहता है कि उसके अंदर ऐसी करामात भरी है कि आदमी की कौन कहे, परमेश्वर तक की ग़लतियाँ निकाल सकता है। और, यही एक ऐसी बात है, जिससे उसका अवतार होना सूर्य और चंद्रमा के समान प्रतिपादित होता है।

इस प्रकार की बातों से उसका नाम बस्ती-भर में "अवतारी" पड़ गया है। उसका यह नाम या उपनाम गली-गली कूचे-कूचे लोग जान गए हैं। वह जहाँ कहीं जाता है, लोग घेरकर खड़े हो जाते और उसकी बातों को सुनकर आपे से बाहर होनेवाली प्रसन्नता के रंग में भर जाते हैं। हाल की होली में कुछ लोगों ने एक समाज जमा किया, और दैवयोग से अवतारी बाबू भी वहाँ जा निकला। देखकर लोग बड़ा भारी क़हक़हा मचाने लगे, और सबके बीच में इसको बिठाकर पूछ-पाछ करने लगे। जब बहुत चायँ-चायँ मची, तब यह निश्चय हुआ कि अवतारी की विद्या-बुद्धि का नमूना देखना चाहिए। इस इरादे के प्रवाह में पड़े लोग अनेक प्रकार के चित्र-विचित्र कथन करने लगे, जिसमें अवतारी ने अपनी सुधार की योग्यता का पनाला बहाना आरंभ किया। कहा—"आदमी और जानवर, दोनों भाई हैं। उनमें जो अँगरेज़ी विद्या के संस्कार से संस्कृत हो गया, वह तो आदमी-श्रेणी में मुक्त हुआ, बाक़ी सब जानवर रह गए।" इस सूत्र के आधार पर उसने सिद्ध करना चाहा कि "स्त्री-शिक्षा होनी चाहिए; क्योंकि अशिक्षित जानवर के साथ शिक्षित मनुष्य का विवाह होना 'मनु' के विरुद्ध चाहे हो या न हो, पर आजकल की युनिवर्सिटी के कारख़ानों से बने हुए मनुष्यों के ख़याली पुलावरूपी वेद या लवेद के ख़िलाफ़ ज़रूर पड़ता है।" अवतारी ने छुआछूत का यों मंडन किया "कि आदमी और जानवर जब भाई-भाई हैं, तो दोनों का आचार मिलता-जुलता रहना चाहिए। जानवर सब स्वतंत्र हैं। वे छुआछूत की परतंत्र प्रणाली को बिलकुल नहीं मानते। इसलिये उनके सगों में इतनी बात ज़रूर होनी चाहिए कि कभी वे इसे मानें, और कभी न मानें।" अवतारी ने इस 'प्वाइंट' या विषय को प्रत्यक्ष प्रमाण से सिद्ध कर दिया। कहा—"एक आदमी, जो

घर में छुआछूत का स्वाँग दिखाता है, वही बाज़ारू औरत के घर को अपने धर्म के आचार का 'क़त्लगाह' या बूचड़ख़ाना बनाने में ज़रा नहीं रुकता।" यह भी कह डाला कि "कंठी और जनेऊ के पट्टों से अंकित लोग वेश्या के घर में स्पर्शास्पर्श के ज्ञान को बिलकुल भूल जाते हैं, और उसके घर को भैरवी-चक्र या जगन्नाथपुरी की उपमा देने तक के पाप से नहीं डरते।" इन जीते-जागते उदाहरणों के साथ अवतारी ने कहा कि "होटल में खाना या मियाँ के घर दावत उड़ाना, उस हालत में बुरा नहीं है, जब एक दिन खाय और एक दिन न खाय।" इस प्रकार की बहुत-सी बातें कही गईं; पर सबसे बढ़कर यह हुई, जो सुधारकों के काम की थी। कहा—"शादी का झमेला बिलकुल झमेला है। विवाह होना जानवर-संप्रदाय के प्रतिकूल है। विवाह यदि हो, तो उसके क़ायदे बदलने उचित हैं। पहली बात यह हो कि कन्या बिदा होकर वर के घर न जाय; क्योंकि वह वर अर्थात् चुना गया है कन्या के पक्षवालों से, उनके पसंद की चीज़ है। अतएव ख़रीदे हुए जानवर की तरह बीबी के अस्तबल में उसे बँधना चाहिए। अगर ठहरौनी की नीलामवाली कार्यवाही से वर बनाया गया, तो क़ानूनन् वह दाना-घास घर में नहीं खा सकता। दूसरी बात यह है कि कन्यादान दिया जाना ठीक नहीं। दान त्यागने को कहते हैं। कन्या को चाहिए कि वह मा-बाप का दान किया करे। इससे पुनर्विवाह में पुनः दान का आक्षेप मिट जायगा, और विधवा दूसरे पाणिग्रहण में दूसरे कुटुंबियों का दान कर दिया करेगी। तीसरी बात यह ज़रूरी है कि लड़कों के संस्कार तो स्कूल-कॉलेजों में हो जाते हैं, अब लड़कियों का यज्ञोपवीतादि संस्कार होना समय और बुद्धि से ठीक दिखता है।" अवतारी की ये बातें सुनकर लोग दंग हो गए, और उसका सार्वजनिक भाषण कराने की बात तय करके अपने घर को रवाना हुए। व्यास-

कथा के रिपोर्टर अवतारी की व्याख्यानशाला में पहुँचने को बस्ता बाँधने लगे। नई रोशनी का जय-जयकार बोलकर लोगों को संसार में अवतार होने की सूचना दे दी गई।

इति पंचपुराणे प्रथमस्कंधे षट्चत्वारिंशत्तमोऽध्यायः

सप्तचत्वारिंश अध्याय

पेट की पेटी

बाबा मस्तराम के आश्रम पर कई महीने बाद हाल में जाने का अवसर मिला। देखा, बाबाजी आगे से कुछ अधिक मोटे-ताज़े और उमंग में भरे थे। न उनको लड़ाई का ग़म, न किसी सुधार की चिंता; अपनी भजन की धुन में हर बात में भगवान् का कथन मिलाकर लोगों का ध्यान परमार्थ की तरफ़ फेर देने का स्वभाव उनमें वैसा ही अब भी पाया गया। जाते ही कुशल-प्रश्नानंतर बाबा ने कहा—"अगर कोई कमेटी होती, तो मसखरे भगवान् से पूछते कि दुनिया में क्यों गड़बड़ी डाल रक्खी है? कई बातों को देखकर यह मानना पड़ता है कि एक ही आदमी की हुकूमत ठीक नहीं होती। भगवान् की सहायता के लिये एक 'एक्ज़ी-क्यूटिव' कौंसिल नियत हो जाय, तो चिरकाल का झगड़ा मिट जाय।"

बाबाजी झूमते हुए गुनगुनाकर कुछ कविता कहने लगे, जिसके ये पद साफ़-साफ़ सुनाई दिए, बाक़ी गुनगुनाहट में छूट गया—

भगवान, लोग भूल तुम्हारी कहें ज़रूर।
इसमें न किसी ढंग का कुछ भी ज़रा क़सूर।
जब चारों तरफ़ मारकाट द्वंद हो रही;

करते न इंतज़ाम, तो क्यों मुग्ध हो गए ?
पत्थर पड़े समझ में, अरे कुछ तो बोलिए ;
पत्थर में रहके ईश, क्या पत्थर ही हो लिए ?

इस स्वाभाविक, सरल और हृदय के उद्गार में बड़ा अलौकिक आनंद था । बाबाजी की आँखों में जल भर आया । फिर बोले—

दयानिधि में जो हो दया की कमी ;
साधुओं की रहेगी कैसे हमी ?

जब महाराज अपने मंगलाचरण के समान भजन-भाव से चुप होकर बैठे, तो एक ने पूछा—"संसार के क्लेशों का क्या कारण है ?" मस्तरामजी बड़ा क़हक़हा मारकर बोले—"पेट, पेट, और पेट !!"

बाबा मस्तराम कभी-कभी एक बात को कहकर ठहर जाते थे, और फिर, थोड़ी देर के बाद, जिस प्रकार नदी का सोता अवरोध पाकर बड़े वेग से चले, उसी प्रकार आपका धारा-प्रवाह चलने लगता था । आपका यह प्रवाह फिर यों चला—"पेट एक बड़े महत्त्व की चीज़ है । जानदार के लक्षण करने में लोग व्यर्थ खोपड़ी हलाल कर रहे हैं । लक्षण यह होना चाहिए—जिसमें पेट की पेटी हो, वह जीव, बाक़ी सब जड़ ।" इतना कहकर आप कह चले—"पेट बनाकर भगवान् ने वह काम संसार के जन-समाज के साथ नहीं किया, जो आर्म्स ऐक्ट करता । लोग इससे तंग आ गए । स्वतंत्रता का नाश, तंदुरुस्ती की ख़राबी, आलस्य, बुढ़ापा, सब इसी का महाप्रसाद है । बिना पेट की पेटी के पहाड़ का पुत्र पहाड़ हज़ारों वर्ष जी सकता है ; और आदमी का बेटा सौ वर्ष तक कोई विरला ही पहुँचता है । और देखिए, पहाड़ का बेटा मौज से पड़ा रहता है । न उसको आधि न व्याधि, न फ़िक्र न चिंता, न नौकरी

न मातहती। इसलिये सारी-की-सारी बुराई का भंडार यह पेट है। फिर आप बोले—

पेट की लपेट सों चपेटन में धाय-धाय
सेठन की ऐंठ-भरी बातें सहिबो पस्यो;
मूरख ललागन में आशा की लुलागन में
चाटुकारिता की चाह माहिं रहिबो पस्यो।
कारन अकारन अँगारन-सी बातें सुनि
रोष रोकि मन माहिं गम सहिबो पस्यो;
अरे पेट, तेरे बस अक़िल के औंधन को
माटी के धोंधन् को चतुर कहिबो पस्यो।"

इति पंचपुराणे प्रथमस्कंधे सप्तचत्वारिंशत्तमोऽध्यायः

अष्टचत्वारिंश अध्याय

बरात-तत्त्व

एक पुरानी गली में पुराने पंडित साहब बड़ी तेज़ तबियत के आदमी थे। वह अँगरेज़ी पढ़े तो नहीं थे, पर 'अँगरेज़ीबाज़ों' के कान काटने की योग्यता ज़रूर रखते थे। वह प्राचीन तत्त्वानुसंधान में पूरे सिद्धहस्त थे, और ऐसे-ऐसे जवाब निकालते कि नवीन लोग उनको मान जाया करते थे। उन्होंने एक ग्रंथ—'बरात-तत्त्व'—लिखा है, जिसमें अनेक बातें साहित्य की दृष्टि से मज़ेदार ज़रूर माननी पड़ती हैं। लिखा है—"बरात शब्द बर से निकला है। बरआत से बना बरात, अर्थात् जिसमें बर यानी चुना हुआ दूलहा आता है, उस जलूस का नाम बरात।"

फिर बताया है—"बरात याने बरात—तात्पर्य यह कि भोजन की लालसा से वर के साथ जानेवाले पूरा मतलब न होते देखकर

वरने लगे हैं, इसलिये इसको वरात कहते हैं।" एक विचार-शास्त्रज्ञ ने वरात का लक्षण इस प्रकार लिखा है—"वेतुके लोगों की भीड़ को एक लंबी क़तार में चलाना और उसमें एक बुद्धिहीन को दुलहा बनाकर गली-गली घुमाना वरात है। वरात में सबके पहले एक चौपाए पर झंडा लेकर आदमी को चढ़ाने के माने यह मालूम होते हैं कि अभी वेवकूफ़ी की पताका लेकर चलनेवाले बहुत-से हैं।"

२५ वर्ष हुए, एक तबियतदार लेखक ने एक वराती जलूस का हाल यों लिखा था—"सायंकाल को चौक में होकर जाने का अवसर मिला। क्या देखा कि एक घोड़े पर एक फ़क़ीर फटे कपड़ों की पोशाक पहने बंदर की नक़ल करता हुआ सामने आया। उसके हाथ में फटे हुए चीथड़ों का नातेदार झंडा ऐसा मालूम होता था, मानो वरात-निकालनेवालों की समझ का गूदड़ हो जाने की सूचना देता था। उसके पीछे दो-तीन मरियल टट्टू 'क़ब्रस्तान' के यात्रियों के समान चल रहे थे, और उन पर नंगे पैर जीर्ण-वस्त्रधारी सवार डंका क्या बजाते थे, मानो वराती लाला की रही-सही समझ की नीलाम की डुग्गी पीट रहे थे। इनके पीछे अंगरेज़ी बाजे के बजानेवाले भंगी धोंबों का राग बजाते सामने आए। यह वरात का तीसरा भाग या डिविज़न था। यह इस बात की सूचना थी कि या तो लाला की बुद्धि भंग हो गई, और वह भंगियों का साथ देता है, या यह कि धर्म-भंग होने में अब कुछ कसर बाक़ी नहीं है। यह बात उन सुधारकों के काम की ज़रूर है, जो ऊँची जाति को नीचा और नीचों को ऊँचा किया चाहते हैं। इसके बाद पाद-त्राण-विहीन, चीथड़े लपेटे लोगों की क़तार झंडियाँ लिए निकली, जो शायद दुलहे साहब की सेना की जगह रक्खी गई होंगी। वह इस भाव को प्रकट करती थी कि पुरानी ललाई का राज्य अब इतिश्री की अवस्था पर आ पहुँचा है।"

बरात का यह वर्णन बड़ा मनोरंजक है ; पर महात्मा 'निर्भय' कवि की ये बातें उससे किसी विषय में कम नहीं है—

जब पड़े बुद्धि में बड़े पत्थर, छोकरों के विवाह होते हैं ;
बन बराती जो फूकते दौलत, बेवक़ूफ़ी के 'बाग़' बोते हैं ।
रंडियों को बुला लें महफ़िल में बस, अमीरी की यह निशानी है ;
गिड़गिड़ाते हैं दाँत बा-बाकर, मानो वह बाबुओं की नानी है ।

इति पंचपुराणे प्रथमस्कंधे अष्टचत्वारिंशत्तमोऽध्याय:

ऊनपंचाशत् अध्याय

बौखल की मित्रता

किस पूर्व के पाप से आदमी को बौखल मित्र मिलता है ? या यों कहिए कि कौन-सा पाप दुनिया की दौड़ में आदमी को नास-मफ़ के साथ जोत कर चलाता है ? ये दोनों बातें एक ही थैली के चट्टे-बट्टे के समान हैं । इसका जवाब तो कोई कर्म-विपाक के जानने-वाले ही ठीक-ठीक दे सकेंगे; पर अनुभव ने यह बताया है कि ग़रीबी की पाप-लीला से ऐसे मानव पुंगवों से पाला ज़रूर ही पड़ता है । लाला टिमडिमराय एक मोटी आमदनी के आदमी हैं । इनकी बुद्धि और योग्यता जानवरों से इतनी ज़रूर बढ़ी है कि यह कपड़े पहन सकते हैं, बातें बना सकते हैं, और अहंकार करके लोगों को मुँह चिढ़ा सकते हैं, बाक़ी सब कामों में बिलकुल बछिया का ताऊ-पन ही दिखाई देता है । इनकी दोस्ती एक ग़रीबी के पाले के मारे विप्रदेवता से हो गई, जो पैसा कमाने की चाल को छोड़कर और सब कुछ कर सकते हैं । यह बेचारे डिमडिम के पास जाकर नित्य बैठते और हाँ-में-हाँ मिलाकर सृष्टि की बनावट की भूल का प्रत्यक्ष

उदाहरण हो रहे हैं। लाला डिमडिम की मोटी आमदनी उनके पास उन्हीं के-से लोगों को ज़्यादातर घसीट लाती है। अतएव विप्र-देवता पत्तीस दाँतों में जीभ के समान रहते हैं। इस चौखल-मंडली के सभापति डिमडिम हैं, और उनकी बात को बड़ा करने-वाले रात को जमा होकर समाज में मूर्खता देवी के ख़ज़ाने में ख़ूब बातें जमा करते हैं। पंडित सबकी सुना करते हैं, और जब बोलते हैं, तो मंडलीवाले उनकी टाँग लेने में कसर नहीं करते। इस चौखल-समाज के उपसभापति के समान एक साहब हैं, जिनका नाम न लेकर काम बनाना ही ठीक होगा। आपका जन्म बलवे के दिनों के बाद हुआ था, इसलिये थोड़ी-सी अँगरेज़ी-फ़ारसी पढ़कर आप किरा-नियों में पंडिताई छाँटते-छाँटते अपनी चुटिया छाँटने लगे। यहाँ तक कि वह गिलहरी की दुम के समान होकर जुआर के भुट्टों की मूछों के समान हो गई। इनकी जाति में बाप के मरने के बाद यज्ञोपवीत का सार्टीफ़िकट बाप की जायदाद के काग़ज़ की तरह मिलता था। बूढ़ा भी एक ही मज़बूत निकला। लड़के के बाल पक गए; पर उसकी कमर ने ख़म तक नहीं खाया। लड़के ने समझा, यह यमराज से सुलहनामा कर आए हैं। माल-ताल की आशा छोड़ना चाहिए। यह विचारकर वह किरानियों की सोहबत में ज़्यादा रहने लगा, और एक काली बीबी का प्रेम उसको किरानी होने की अवस्था पर ले गया। एक शुभ रविवार के दिन ईसाइयों के पाधा एक मिस्टर साहब ने उसको मूड़ने का दिन नियत कर दिया। जान पड़ा, यह हिंदू-संसार से अलग हुआ; पर मामला कुछ और निकल पड़ा। उन दिनों महात्मा स्वामी दयानंद के लेक्चरों के गोलों का ख़ूब ताँता बँधा हुआ था। वे गर्ज-गर्जकर ऐरे-ग़ैरे धर्म के क़िलों पर बुरी तरह गिर रहे थे। उनके वेग में पड़कर यह किरानीपने को छोड़ समाजियों में जा

घुसा, और रंडा-विवाह आदि को लेकर कुछ और ही गीत गाने मूँड-मुँड़ा बैठा। फिर समाज को छोड़कर इधर-उधर भटकता अब लाला डिमडिम की मुसाहबी में जा घुसा है। दूसरे एक लाला डिमडिमराय के बड़े अंतरंग या प्राइवेट सेक्रेटरी हैं। आप मुंशीजी के ख़िताब से पुकारे जाते हैं। तीसरे एक झंझनमल हैं। चौथे बैंगनदास हैं। पाँचवें ढुंडेगुरु और छठे दिवालीराम हैं। इन सब महात्माओं का पूरा तो क्या, अधूरा वर्णन भी इस स्थल पर नहीं हो सकता। अतएव नाम-माहात्म्य पर ही पाठकों को संतोष करना चाहिए। एक दिन की कथा सुनने लायक़ हुई, और वह यों थी कि लाला डिमडिमराय की वर्षगाँठ का दिन था। घर में बहुत-से लोग जमा थे। बात यह हो रही थी कि कोई जलसा होना चाहिए। सबने अपनी रुचि के अनुसार बातें कहीं। एक ने कहा—कि नाच हो, दूसरे ने बताया गान हो, और तीसरे ने दावत की सुनाई। इस प्रकार जब सब लोग कह चुके, तो डिमडिम के मित्र, पंडित ने कहा कि वेद का पाठ होना चाहिए। वेद का नाम सुनते ही लाला लाल-बबूका हो गया। उस पर अमीरी के आरज़े ने ज़ोर मारा। दौरा बड़े वेग से चढ़ आया। आयँ-बायँ बकने लगा। पंडित की अप्रतिष्ठा में केवल हाथ चलाने को छोड़कर उसने और कोई बात उठा नहीं रक्खी। लाला के मुसाहब लोग पंडित रामधन की हँसी उड़ाने लगे। रामधन चुपचाप सुनता रहा; पर बहुत कहा-सुनी से उस पर भी क्रोध का भूत चढ़ आया, और जैसे भभक उठने के पदार्थ से भरा एक गोला फूट कर चारों तरफ़ फैल जाता है, वैसे ही वह लाला के मुसाहबों पर बुरी तरह टूट पड़ा। फल यह निकला कि मार-पीट हो गई, और उसमें विप्रदेवता बुरी तरह चोट खा गए। चलते हुए पर फिर भी लोगों ने खोटी बात कही, और फन में चोट खाए हुए सर्प की तरह ब्राह्मण ने एक हँडिया उठा कर मारी,

जिससे डिमडिम के भी चोट लगी। चारों तरफ़ टायँ-टायँ होनी लगी, और लाला तथा पंडित को दो सगे की इतिश्री हो गई।

इति पंचपुराणे प्रथमस्कंधे एकोनपंचाशत्तमोऽध्यायः

पंचाशत्तम अध्याय

नवीन पारायण

अब धीरे-धीरे पुरानों का समय चला जा रहा है, और नवीनों की बारी आती जाती है। जिधर देखिए, उधर नवीनता अपना रंग जमाती फिरती है। सिर से पैर तक बाबू लोग तो साहबों की नक़ल की मोटी-तसवीर हो ही चुके थे, अब नए फ़ैशन की तोपों ने पुराने पंडितों के शरीररूपी क़िलों पर अधिकार जमाना आरंभ कर दिया है। जिनकी खोपड़ी में "टिट्ढाएय"की तरकारी का अचार पड़ कर पंडिताई की फफूँदी लग गई थी, और शायद उसी को दूर करने के लिये सुँघनी की बारूद के गोले नासिका की तोपों द्वारा चलाए जाते थे, और जिनकी धोती में बालिश्त-भर के किनारे चारों तरफ़ से सनातन-धर्म के क़िले की रक्षा की परिखा होकर नवीन आचारों और विचारों को रोक किया करते थे, वे ही पंडित नवीनता के शिकार बनकर बुरी तरह मारे जा रहे हैं। किसी की तोंद पर कोट की अमलदारी है, किसी के सिर पर 'फ़ेल्ट' टोपी, जो श्रीमती मुसलमान बनानेवाली 'टर्किश कैप' की सगी बहन से किसी तरह कम नहीं है, अपनी पूरी क़िलेबंदी कर चुकी है। ऐसे समय में यह उचित मालूम होता है कि अब पुरानी कथाओं की जगह नई बातें चलाई जायँ, और रामायण तथा भारत की जगह उन समाचार-पत्रों के पाठ सुनाए जाया करें, जो लड़ाई की ख़बरों से भरे लदे हुए जीवों की तरह बाज़ारों में नीलाम की आवाज़ के ढंग से बेचे जाते हैं। कहते

हैं, पास की एक बस्ती में इस प्रकार अख़बारी चाल की कथा का आरंभ भी हो गया है, और लंबे टीके को साइन-बोर्ड लगा कर चलनेवाले कई पंडितों ने इस काम को अपने पवित्र चुटिया-तीर्थों के ऊपर लिया है। यह चाल बहुत ठीक भी है, और इसमें केवल एक बात के सिवा और किसी का भय नहीं है। इसकी उत्तमता और नीचता तो समय पाकर स्वयं खुलेगी; पर इतना ज़रूर कहा जायगा कि यदि वह कथक्कड़-वृत्ति अख़बारवालों की नानी-दादी स्वप्न में दिखा देगी, इसमें कुछ भी संदेह नहीं है। इस कथा का नमूना इस प्रकार है—

> ओंनमोऽस्तु ते व्यास विशालबुद्धे;
> होना न तुम यार कभी भि बुड्ढे।
> येन त्वया भारत तैल पूर्णः;
> प्रज्वालितो ज्ञानमयः प्रदीपः।
> वंदौ 'सूटर' देव, कृपासिंधु संवाद वह;
> तुमरी माया देव, खबर न साँची मिलतु है।

व्यासोवाच। श्रीगणेशाय नमः। श्रीराधाकृष्णाभ्याम् नमः। श्रीकम्पोजीटरास्टिक देव्यै नमः। श्रीप्रेसाय नमः। श्रीगोलाभोला-रूपस्त्रादेवाय नमः।

एक समय के विषे आर० के० रेलवे की पुनीत लाइन के निकटस्थ नैमिषारण्य-तीर्थ की कानफ़्रेंस में शौनकादिक ऋषीश्वरों ने पौराणिक सूतजी को प्रेसीडेंट की कुरसी पर बैठा करके थपोड़ी प्रदान करने में हीजड़ा-संप्रदाय का पूरा अनुकरण किया। महाराज, उस समय नाना प्रकार की तालियों की ध्वनि से आकाश-मंडल परिपूर्ण हो गया। कितने ही लोगों ने "हुर्रे-हुर्रे" की ध्वनि का तौर लगा दिया। इस उत्कंठा से भरे श्रोताओं की इच्छानुसार सूतजी ने अपना भाषण आरंभ किया। श्रीमान् सूतजी ने कहा

कि वेद और लवेद, ये दोनों चिरकाल से चले आते हैं। जब तक अदालतों में संस्कृत-भाषा बोली जाती रही, तब तक तो वेद राज्य रहा। उसके बाद फिर लवेद ने ज़ोर पकड़ा। बढ़ते-बढ़ते अब वेद ने बिलकुल लवेद से हार खा ली है। यहाँ तक कि द्विवेदी, चतुर्वेदी और त्रिवेदी सब लवेदी कहे जा सकते हैं; क्योंकि विचार की विचित्रता यही बता रही है। जब वेद पढ़े नहीं, और नाम के साथ उसका साइन-बोर्ड लगाया गया, तो फिर लवेद में बाक़ी क्या रहा ? यह तो यही हुआ कि "हाथ धोने को पानी नहीं, और नाम दर्यावसिंह।" सूतजी ने फिर बताया कि लवेद-शास्त्र का कलियुग में बड़ा माहात्म्य है। जिस प्रकार पुराणों में कहा है— "कलौ चंडो विनायकौ", उसी प्रकार भविष्य-पुराण की किसी मंडली में यह भी पास हो चुका है—"लवेदो परमो धर्मः"। यह बात भी समझने की है कि जब बिना परीक्षा के नाम में एम्० ए०, बी० ए० लगानेवाले के कुरसी पर बैठनेवाले अंग पर बेंत मारे जाने का क़ानून ठीक समझा जाता है, तब वेदत्व का नाम में ख़िताब लगानेवाले क्योंकर कोरे कपड़े की तरह अछूत बनकर आड़ में बैठे रह सकते हैं ? ये सब बातें लवेद-शास्त्र से सिद्ध होती हैं। इस पर सूतजी के आगे शौनकादिकों ने हाथ जोड़कर कहा कि महाराज, हमको लवेद महाराज की परायण ज़रूर ही सुनाइए।

लवेद का माहात्म्य सूतजी पौराणिक ने यह कहा कि इससे संसार की चाल उलट-पुलट हो जाती है। इसमें एक व्याख्यान बड़ा मनोहर है। लंपट-बाज़ार में एक लाला का घर था। इनका लड़का नामधारी था। वह कई वर्णमालाओं का पंडित था। ए० बी० सी० डी० में इतना ऐबी था कि 'ज़ेड' तक अक्षर पहचान लेता और फ़ारसी में 'अलिफ़' से लेकर 'हमज़ा' तक को हज़म कर चुका था। नागराक्षर में लिखी हुई लेखमाला को ई-ई

ऊँ-ऊँ कर बाँच लिया करता था। इतनी ही इसकी विद्या की पूँजी थी। कुछ दिनों बाद जब बाप के मरने का मौक़ा पाकर वह उनकी पुरानी गद्दी का महंत बन गया, तब तो उसने खूब केंचली बदली।

अब क्या था? कपड़े जब फ़ीट-फ़ाट के बन गए, और टेंट में कुछ माल आ गया, तब लियाक़त ज़रूर आनी चाहिए थी। देखते-देखते वह लबेद का पूरा आचार्य हो गया। इससे यह बात ज़रूर सिद्ध हुई कि लवेद की उत्पत्ति किस प्रकार होती है। जब विद्या-विहीन होकर विद्वान् बनना चाहे, तभी मनुष्य लवेदज्ञ कहा जाता है। एक दिन का वर्णन है कि लवेदाचार्य पुरोहित लोग पैसा सीधा करने के मतलब से डटे थे। वहाँ पर धर्म की बड़ी चर्चा रही। इस अवसर पर लवेद की अनेक बातें सुनने का अवसर आया। पहले पुरोहित ने सनातन-चाल पर लवेद की यह बात सुनाई कि धर्म कोई चीज़ नहीं है। वह कपड़े के फ़ैशन की तरह सर्वथा बदला करता है। जैसे स्पर्शास्पर्श का मामला है। कुछ लोग विजातियों को छूकर नहाते थे। पर जब मुसलमानों की बढ़ती हुई, तो वह विचार छोड़ दिया गया। अब यवनी से अनेक प्रकार से संबंध में भी दोष नहीं रहा। अतएव लवेद-शास्त्र का पहला सूत्र यह बना—"यवनी स्पर्शे दोषो नास्ति" यवनी और महाजन का बिरादराना संबंध है। इसमें दोष नहीं—लवेद-शास्त्र दर्शनात्। ऊपर लिखा सिद्धांत जब स्थिर हो चुका, तब फिर और बातें चलीं। उस पर जो कुछ कहा गया, उससे यह मतलब निकला कि सोने का नाम कांचन है, और कलियुग में कांचन तो लोगों के पास है नहीं। इसलिये काँच को सोना मानना ठीक है। सोने का पात्र हवा से शुद्ध हो जाता है। बस, मतलब यह निकला कि सीसे में दोष नहीं। उसके कारण लवेद का यह मत निकला—

"ग़लास दोतलादयः सदा शुचयः ।"

इति पंचपुराणे प्रथमस्कंधे पंचाशत्तमोऽध्यायः

एकपंचाशत्तम अध्याय

नपुंसकालंकार

प्राचीन लेखकों ने अपने समय तक के भावों का वर्णन ग्रंथों में लिखा है। उसके बाद जो भाव लोगों में प्रकट हो गए, वे नहीं दिए गए। महाभारत के बाद नवीन प्राकृतिक बोली परिवर्तित होकर जब हिंदी-भाषा बन गई, तब नपुंसकलिंग व्याकरण के राज्य से निकाल दिया गया । इससे यह सूचित होता है कि लोग नपुंसक के नाम को बुरा समझते हों, तो कुछ आश्चर्य नहीं। पर वैयाकरणों की यह ढोंग ज़्यादा करामात रखती नहीं दिखती ; क्योंकि व्याकरण में क्लीवहीन भाव होने पर भी कुछ वीरता देवी प्रसन्न नहीं हुई, और आर्म्स ऐक्ट की परम कृपा तथा स्वार्थ और मूर्खता के विस्तार से देश-भर में नपुंसकत्व का भाव विराट् रूप से फैल गया। अब इसका इतना महत्त्व हो गया है कि क्लीव के गुणों या अवगुणों पर एक ख़ासी "फ़िलासफ़ी" लिखी जा सकती है। अलंकार के ग्रंथों में जहाँ शब्द और अर्थ की बारीकियाँ निकाली गई हैं, वहाँ नपुंसकालंकार के 'एमेंडमेंट' या उपप्रस्ताव के जोड़े जाने की बड़ी ही आवश्यकता प्रतीत होने लगी है । इस गहन-विषय पर विचार करने के लिये किसी सम्मेलन में कोई कमेटी अवश्य बैठनी चाहिए,और वह घर-बैठी के समान बैठकर ही चुप न हो रहे, तो इस बात पर बड़ी-बड़ी बातों का पता लग सकता है। नपुंसकों की उत्पत्ति और स्थिति का विषय देश में पूर्णरूप से फैलना चाहिए, और क्या आश्चर्य है कि उससे कुछ लाभ भी हो जाय ! इसीलिये

यह मामला देश और साहित्य-सेवियों के विचारने योग्य है। इस अलंकार का आविष्कार होने के प्रथम यह देखना आवश्यक है कि ऐसे लोगों की उपाधि का अधिकार किनको है? कारण, नवीन वर्ष की उपाधियों के साथ-साथ ही सब उपाधियों का निर्णय हो जाना भी प्रचलित प्रथा से ठीक मालूम पड़ता है। कहते हैं, नपुंसक भाव की उत्पत्ति इंजील के ख़ुदा के घर से हुई है। उसने पहले बाबा आदम को बनाया, और फिर उसकी पसलियों से 'हिवा' अर्थात् आदम की स्त्री को उत्पन्न कर दिया। यह बात बड़ी ग़लती की हुई। बिना विवाह के उत्पत्ति का क्रम चलाना ही नपुंसकता का आदि कारण हो गया। ख़ैर, यह बात तो बड़े पुराने ज़माने की है। तब से लेकर शाही ज़माने तक भारतवासी इस ग़लती का परिमार्जन करते ही रहे। भगवान् ने अर्जुन से कहा था—"क्लैब्यं मास्म गमः पार्थ" अर्थात् हे कुंती के पुत्र, नपुंसक मत बन। उस पर महाभारत हो गया। अब आप एक आदमी को क्या, उसके बाप तक को नपुंसक कह दीजिए, और महाभारत करने के बदले वह बत्तीस दाँतों की नारियल की-सी टूटी खोपड़ी दिखाकर चुप हो जायगा। मतलब यह कि अब नपुंसकता कोई बुरी बात नहीं रही। वह शब्द एक अलंकार का अधिकारी हो गया। आजकल सब कार्यों में यह अलंकार शोभा देनेवाला है। प्रत्येक बात की, जो सभ्यता से कुछ भी संबंध रखती है, इसी से शोभा है। जो अपना कर्तव्य उचित रूप से पालन न करे, वही नपुंसक। इस परिभाषा को सब जगह लगाकर देख लीजिए। बस, राम-कहानी सब आगे आ जायगी, किसी से पूछने की ज़रूरत नहीं। नपुंसकालंकार का यथार्थ विवरण जानने के लिये दूर जाने की आवश्यकता नहीं। यहाँ से थोड़ी दूर पर एक अवतारी जीव प्रकट हुए हैं। उनके सभी आचरणों में इस भूषण की शोभा पूर्ण रीति से

दर्शन देती हैं। आपके यहाँ प्रातःकाल के संध्या-वंदन के समान एक स्तोत्र का पाठ होता है, जिसको वह तो इष्टदेव की प्रार्थना कहते हैं, पर और लोग नपुंसक-स्तोत्र का नाम देकर संबोधन करते हैं। इस प्रसंग में सब बातों को छोड़कर पहले उसी का वर्णन समीचीन समझा जाता है—

अथ नपुंसक-स्तोत्रम्

नपुंसको, तुम बलवान् हो बड़े;
मजाल किसकी तुमसे जो आ लड़े।
कभी जो हों आप ख़फ़ा महाबल;
तो गालियों के बम ख़ूब ही चलें।
मटक के चलना, फिर ख़ूब नाचना;
विचित्र रूपोंयुत भीख माँगना।
कलह की बातों में सदा महा अड़े;
नपुंसको, तुम बलवान् हो बड़े।
न तुम कभी युद्ध करो, न शस्त्र लो;
न तोप-बंदूक़ समान अस्त्र लो।
तथापि लड़ने में प्रसिद्ध हो कड़े;
इसी से क्लीबो, बलवान् हो बड़े।
अगर हो लेखक, तब तो करो नक़ल;
व बन के बैठो कविरत्न की शक़ल।
इधर-उधर की बस जोड़-जाड़के;
बनो धुरंधर तुम आँख फाड़के।
कहीं जो कौंसिल पर पाओ मेंबरी;
करोगे बातें तब तो अडंबरी।
कभी न होगा तुमसे अजी भला;
नपुंसको, है यह आपकी कला।

कहीं नपुंसक यदि हों रिपोर्टर ;
सभा के सब काम धरें हि बोरकर ।
भला किसी को न कहेंगे भूल से ;
बने नपुंसक, गुण-हीन फूल-से ।

उपमा और उपमेयादि के झगड़ों को आजकल के विद्वान् अच्छा नहीं समझते। इसके कारण दो ही हो सकते हैं। या तो वे उनको अच्छी तरह समझते नहीं, या उनकी बारीकी या सूक्ष्मता की आवश्यकता नहीं देखते। अब साहित्य के ऐसे भी लेखक हो सकते हैं, जिनकी तीन पीढ़ियों में अलंकारादि से बिल्ली-कुत्ते का-सा बैर हो, और वे उनको वैसा ही बुरा समझते हों, जैसा, नवीन शिक्षित लोग ब्राह्मणों को। प्राचीन रीति के अनुसार कानों में कुंडल, हाथों में कड़े और दूसरे अंगों में गहने पहनना स्त्रियों का काम समझा जाता है, और मूछों पर ताव देकर लाठी, सोंटा या और अस्त्र बाँधकर चलना वीरता या मर्दानगी का चिह्न माना जाता है। अब लाठी-सोंटा रखना वीरता में नहीं गिना जाता। यह बदमाशी के राज-चिह्नों के अंतर्गत समझा जाता है। रहा शस्त्र का बाँधना। सो वह आर्म्स ऐक्ट की नपुंसक कृपा से उठ गया। अतएव बाबू लोग लड़ाई के समय "पुलिस-पुलीस" कहकर रक्षा का शस्त्र गहने में ही वीरता दिखाते हैं। अब वीरत्व के स्थान में यह सिखाया जाता है कि कोई मारे, तो पुलिस-पुलीस कहकर चिल्लाओ, दो आदमियों को गवाह बनाकर उनके सामने पिटो, और यदि कहते जाओ कि कहाँ-कहाँ चोट लगी, तो बहुत अच्छा है ; क्योंकि गवाह अपनी दिनचर्या में वह सब लिखता रहेगा, और तुमको कचहरी में बड़ी सहायता मिलेगी। वीरता का दूसरा अंग यह है कि अपनेको क्षत्रिय-जाति में लिखवाओ ; क्योंकि ऐसा करने से बिना भय के गरज-गरजकर बोलने की शक्ति तो अवश्य ही

आ जायगी। कहने का मतलब यह कि अब वीरता में वे बातें आ गई हैं, जिनको आगे के लोग नपुंसक-स्वभाव में गिनते थे, अर्थात् वीरता का स्थान नपुंसकता के अंदर धीरे-धीरे आता जाता है। इसका उपाख्यान यह है कि गड़बड़-मोहाल में एक बाबू रहते हैं, जिनके पिता दालमोट और कचालू के जेनरल मर्चेंट थे। पर बाबू ने सो की नौकरी का शिकार मारा, और वह क्षत्रिय बनकर सभा में हाथ-पैर नचाने लगा। वह कहता है कि यदि कोई क्षत्रिय है, तो मैं, और वीर है, तो मैं। एक दिन इस नए क्षत्रिय के घर में चोर आ गए, और दासी बुढ़िया की नींद खुल गई। वह चोर-चोर कहकर चिल्लाई। अब बाबू भी जाग उठा, और रजाई तानकर श्रीमती घर की देवी को उठाने लगा—"अरे सुनती है? अरे सो गई? उठ, देख, चोर आए हैं?" कहकर यह नवीन राजपूत-शब्दाधिकारी चिल्लाने लगा।

नवीन क्षत्रिय ने जब चोर का हुलड़ सुना, तब भी उसको पकड़ लेने की जी में आई ही नहीं। उसके हृदय पर एक धक्का-सा लगा, और वह डर के मारे काँप उठा। उसकी बातों का क्षत्रियपन न मालूम कहाँ भाग गया? उसने स्त्री को कई बार आवाज़ दी। वह नहीं बोली। फिर एक दम से चिल्ला उठा—"अरे उठ तो सही! देख, घर में चोर आए हैं।" चोर का नाम सुनते ही वह घबराकर उठ बैठी, और "क्या है, क्या है," कहकर अनुसंधान कमीशन का रंग दिखाने लगी। बाबू बोले—"दिया बाल।" घबराई हुई स्त्री ने दीपक जलाया, और बोली—"चलो।" अब सभा के प्रस्तावकी क्षत्रिय की कँपकँपी ने और भी ज़ोर पकड़ा। वह उठ तो बैठा, पर आगे बढ़ाकर पैर रखने की हिम्मत नहीं पड़ी। स्त्री से कहने लगा—"डरती क्यों है? आगे चल। मरी क्यों जाती है?" इस प्रकार कड़खा सुनाकर और घरवाली को कमांडर-इन्-चीफ़ बनाकर

वह आप पीछे चलने की हिकमत लड़ाने लगा। पर अबला तो अबला ही। उसका साहस आगे पग धरने का नहीं हुआ। अब पतिदेवता फिर उसको आगे बढ़ने को कोचने लगे। उसने समझा, कुछ ज़रूर भय की बात है; क्योंकि जब बाबू साहब मर्द होकर आगे बढ़ने से हिचकिचा रहे हैं, तो कुछ गहरी आफ़त है। कुछ देर तक उसने भी आगे चलने की हिम्मत नहीं की। अब बाबू ने ज़ोर से डाँटा। काँपती हुई स्त्री के हाथ में चिराग़ भी काँपने लगा। इतने में ऊपर से धड़ाके के साथ कुछ गिरा। कँपकँपी की बीमारी में फँसी अबला के हाथ से दीपक ज़मीन पर 'फट' से गिरा। बाबू उलटे पैर कमरे में भागा, और साहस को तिलांजलि देकर "दैया-दैया" कहती हुई ग़रीब बबुआइन भी अपने प्राण लेकर भाग आई। कुशल यही थी कि वहाँ कोई दूसरा प्रतिद्वंद्वी नहीं था, नहीं तो वह ज़रूर कह उठता कि सभाओं में क्षत्रिय होने का प्रमाण देकर नवीन क्षत्रित्व का सार्टीफ़िकेट पाए हुए लोग ज़रा-सी भय की आशंका होने पर प्राण लेकर भैरव के 'लँडी' श्रेणी के वाहनों के अनुकरण पर चलने को भी बुरा नहीं समझते। अब बड़ी विषम समस्या उपस्थित हुई। बाबू और बबुआइन, दोनों भागकर कमरे में तो आ गए, पर चैन नहीं था। चोर के भय के मारे होश उड़ रहे थे। इधर घर लुट जाने का भय अलग प्राण सुखाए दे रहा था। आगे जाने का साहस नहीं पड़ता था। पुलीस का नाम लेकर चिल्लाए; पर कुछ फल नहीं निकला। मोहल्लेवालों का नाम लेकर आवाज़ें दीं। पर कोई न आया। अब ये दोनों "हाय-हाय" कहकर, बत्तीसी खोलकर हास्य का विरोधी काम करने लगे। अँगरेज़ों की क़वायद सीखे हुओं की वीरता तो इस प्रकार दर्शन देती रही। उधर वह ७० वर्ष की बूढ़ी, जो "चोर-चोर" कहकर चिल्लाई थी, उठ बैठी। उसकी आहट से चोर

भागे, और वह चूल्हे से एक जली हुई लकड़ी लेकर खड़ी हो गई। थोड़ी देर के बाद वह बूढ़ी इन रोते हुओं के पास आई, और बोली—"हाय-हाय, का बहादुरी रह गई! हम उई समय देखा आय, घर जब के मनसेरू तरवार लैके खिरकी से नीचे फाँद जात रहे। अब ई मनई हैं, जो मेहरारू के साथ कुठरिया मा रोवत हैं!" बुढ़िया की इस बात से शांति हुई। मोहल्लेवाले "क्या है, क्या है?" कहकर आवाज़ें देने लगे। अब बाबू साहब को ज्ञान आया कि रुपया-पैसा जाना कोई चीज़ नहीं है; पर शरीर से वीरता का निकल जाना जाति के अधःपतन का कारण होता है। कारण, पड़ोस के एक बूढ़े ने अपनी खिड़की में से पड़े-पड़े यह लेक्चर सुनाया—"बाबू, अँगरेज़ी ज़माने में अँगरेज़ और जर्मन चाहे जितने वीर हो गए हों, पर हमारे पढ़े-लिखे तो टेबुल पर लकीरें खींचनेवाले बनकर बिलकुल वीरता से हाथ धो बैठे। जैसे स्त्री को पति का भय लगा रहता है, वैसे नौकरों को दिन-भर सारे दफ़्तर का ख़ौफ़ खाए लेता है। वे रोटी न पकावें, तो आफ़त, और इनका काम न ख़तम हो, तो बुराई। इस हालत में रहकर सिवा ज़नानी आदत के और आही क्या सकता है?" इसको सुनकर सब दंग हो गए, और किसी-किसी आनंदी ने यह राय ज़ाहिर की कि ऐसे लोग, जो न कसरत करें, न वालंटियर बनें, न कभी कुश्ती सीखें, न पटेबाज़ी और लाठी की मार को समझें, उनको अब की मर्दुमशुमारी में औरतों या नपुंसकों के ख़ाने में लिखाना चाहिए।

बोल आर्म्स ऐक्ट की जय!

इति पंचपुराणे प्रथमस्कंधे एकपंचाशत्तमोऽध्यायः

द्विपंचाशत्तम अध्याय

श्रीमान् ढोलकानंद

मिस्टर ढोलकानंद को भी एक महापुरुष गिनना चाहिए । यह संसार की रीति को उलट-पुलट देने में सबसे बढ़े-चढ़े हुए हैं । इनकी राय है कि पढ़ना-लिखना और योग्यता, यह सब दुनियादारी के अंतर्गत है। जो दुनियादार नहीं, उसकी इस लोक में तो ज़रूर ही मिट्टी ख़राब है । यह विद्याभ्यास को नहीं, विद्वत्ता की ढींग को बड़ा गिनते हैं, और कहते हैं, जिस प्रकार ढोलक के बजने से मोहल्ले-भर में धूम-धाम की सूचना हो जाती है, उसी प्रकार अपने को विद्वान् बताकर गीत गाने से ही आदमी सब कुछ कर सकता है । इस महामंत्र से यह अपनी बस्ती या गली-भर में आलिम-फ़ाज़िल, शास्त्री और महाशास्त्री से भी दो हाथ ऊँचे समझे जाते हैं । इसी प्रकार इन्होंने अपनेको कवि भी समझ रक्खा है, और एक दिन इनके शरीर में कविता की शक्ति समाकर ऐसी गुदगुदी करने लगी थी कि इनके मुँह से अनायास कई शेर बन गए। बस, यह कवि हो गए, और जिस दिन से एक पद का गाना इनको आ गया, उसी दिन से यह अभिनव तानसेन भी बन गए हैं । अब इनका पूरा नाम है—श्रीमान साहित्य-क़दर-दान, मिस्टर ढोलकानंद, महाकवि अभिनव तानसेनख़ाँ बहादुर। ढोलकानंद को, कुछ दिन हुए, ढोलक बजाने की बड़ी श्रद्धा बढ़ी, और इनके घर में रात-दिन उसी की धूम-धाम का रंग रहने लगा। आपकी श्रीमती का डील-डौल भी ढोलक से मिलता-जुलता था, और वह भी मोटी भैंस की सगी भगिनी होने की योग्यता से अलंकृत थी। बस, "यथानाम तथागुणः" के महावाक्य ने अपना प्रत्यक्ष फल इन्हीं के ऊपर दिखा दिया। अब ढोलकानंदजी पूरे आचार्य हैं, और नवीन धर्म चलाकर ढोलक दादा संसार का कल्याण करने-की

बात विचार रहे हैं। आपने एक ढोलक-संहिता लिखी है, और उसमें यह सिद्ध किया है कि संसार की उन्नति यदि हो सकती है, तो इसी महावाद्य से। यह महाग्रंथ काशी के किसी अर्थलोभी पंडित की सहायता से लिखा गया है। उसी का कुछ हिंदी-अनुवाद नीचे लिखा जाता है।

ढोलक-संहिता

श्रीगणेशजी को प्रणाम है। ढोलकानंद महाराज के टीड़ीदल के समान शिष्य एक बड़ी भारी सभा करके बैठ जाते भए। ता समय के ऊपर महाराज अभिनव तानसेनजी आवत भए। उनको देखकर सब शिष्य खड़े होकर हीजड़ा-समूह की परम फल देनवाली ताली को देकर अपनी प्रसन्नता प्रकट करते भए। तासे महाराज स्वामी ढोलकानंदजी परम प्रसन्न होय उठे। मुख पर मुसकिराहट की झलक आती भई। ऐसी छत्तीसों विद्या से पूरित बत्तीसी खोलकर महाराज ने कहा—"हम परम प्रसन्न हैं। माँगो, क्या माँगते हो वरानने ?।" या कथन सुनते ही शिष्यों ने वारंवार प्रणाम कर-करके कहा—"हे महास्वामी ढोलकानंद, हम लोगन कूँ कोई ऐसो उपदेश सुनाइए, जासों संसार में सुख प्राप्त होय, और मनुष्य झगड़ों से छूटकर परम पद को प्राप्त करे।" ढोलकानंदोवाच, अर्थात् तब ढोलकानंद बोले—"हे शिष्यो, तुम ध्यान देकर सुनो। संसार में सर्व सुखों को देनेवाली एक ढोलक है, जिसकी सेवा से चतुर्वर्ग की प्राप्ति होती है। ढोल पीटकर बड़े-बड़े योरपियन सेनापति युद्ध करने जाते हैं; विवाह में ढोल न पीटा जाय, तो बरात बिलकुल जनाज़ा हो जाय। ढोल पीटकर हाकिम लोग क़ानून की सूचना प्रजा को देते हैं। औरतों में ढोल ही पर सारा संगीत निछावर होता है। जान पड़ता है, कलियुग में जब सब देवतों की पताकाएँ कलिराज के सेनापतियों ने छीन लीं, तब क़ान-

देव ने बड़ी उदारी की। उसने अधर्म को वकील बनाकर कलि-राज की कचहरी में बड़ी मुकदमेबाज़ी की, और वकील साहब की फ़ज़ूल-शास्त्र की दक्षता की कृपा से कामदेव को मीन की पताका की जगह यह ढोलक-रूपिणी विजय-वैजयंती (पताका) प्राप्त हुई हो, तो आश्चर्य नहीं। हे शिष्यवर्ग, भारत के सब प्रांतों में तब ही ढोलक को इतना माहात्म्य प्राप्त भया। नित्यप्रति कामदेव के जितने गीत इस बाजे के साथ गाए जाते हैं, उतने ब्रह्मा, विष्णु, महादेव की कौन कहे, ईसाइयों के गिरजों में गुरु-घंटाल ईश्वर को भी कदापि सुनने का सौभाग्य प्राप्त नहीं हुआ होगा। ढोलक का माहात्म्य कलिराज के अतिरिक्त कोई नहीं जान सकता। इसके अनेक स्वरूप हैं, और कम-से-कम हज़ार नाम ज़रूर हैं। तबला, खँजड़ी, ढप आदि सब ढोलक ही के कुटुंब में हैं।"

इतनी कथा सुनाकर स्वामी ढोलकानंदजी ने अपने इष्टदेव की प्रशंसा की, और कहा कि ढोलक ने किस प्रकार भारतवर्ष के जन-समाज पर विजय प्राप्त करके अपना अधिकार जमा लिया, इसका वर्णन आगे चलकर किसी कथा के प्रसंग में कहा जायगा।

इति पंचपुराणे प्रथमस्कंधे द्वापंचाशत्तमोऽध्यायः

त्रिपंचाशत्तम अध्याय

नवीन कुलदेवी

तैंतीस करोड़ देवतों का नाम सुनते ही लोगों के मुखारविंदों की आकृति पर रेखा-गणित की सूरतें बनती हुई देखी गई, और उसका प्रश्न किसी साध्य से भी ठीक नहीं होता देख पड़ा। कुछ लोगों ने इस बेतुकी संख्या को सुनकर पुराणों को इतना भला-बुरा कहा कि उनकी गालियों की संख्या तैंतीस क्या, चौंतीस करोड़ हो गई हो,

तो आश्चर्य नहीं। पर हाल में यह सवाल हल हो गया। यह मसला बिलकुल तय हो गया कि इतने क्या, इससे भी अधिक देवता हो सकते हैं। कई दिन हुए, रेल की झमेल में पड़े कुछ आदमी आ रहे थे। मार्ग में अर्मन-जर्मन की राग-माला होते हुए रेलदेवी की गोद में बैठे मुसाफ़िर यात्रा की मुसीबत से सामना कर रहे थे। वहाँ स्टेशन पर एक जर्जरीभूत-सी टिकट-कलेक्टरा आई, और कहने लगीं कि यह कमरा ख़ाली करो; इसमें लेडी का साइनबोर्ड लगाया जायगा। उनसे कहा गया कि जब इसमें मुसाफ़िर आए थे, तब कोई सूचना नहीं लिखी थी, इसलिये लोग इसमें बैठ गए। इस बात को जर्जरा देवी ने कुछ नहीं माना, और लेबिल दिखाकर कहने लगीं कि इसमें साइनबोर्ड लगाया ही जायगा। सरदी का महीना, कँपकँपी की पूरी अँधियारी, रात के सन्नाटे की हवा में मुसाफ़िरों को उतारना था तो अन्याय, पर उस कलक्टरानी ने इसका कुछ ख़याल नहीं किया। एक साहब, जो मुसाफ़िरों में कुछ ज़िंदादिल-से थे, बोले—"आप इसी में लेबिल लगा दीजिए; क्योंकि शास्त्रविद्या से रहित हम पढ़े-लिखे लोग चाहे गाउन न भी पहनें, पर लेडियों की श्रेणी में कई कारणों से गिने जाने का सौभाग्य प्राप्त कर सकते हैं।" इस पर लोग क़हक़हा मारकर हँस पड़े, रेल की पुजारिनस्वरूपा कलेक्टरा चली गईं, और फिर थोड़ी देर में आकर कहने लगीं—"बाबू, अब तुम बैठे रहो। लेबिल दूसरी गाड़ी में चिपका दिया गया है।" श्रीमती को धन्यवाद देकर लोग बैठे, और चार घंटे की गपड़-चौथ के बाद इष्ट-स्थान पर पहुँचे। गाड़ी ठहरी, तो "कुली, कुली!" कहकर लोग चिल्ला उठे। यात्रा की समाप्ति पर यही मंत्र प्रायः सुनने में आता है। आनन्-फ़ानन् में कुलियों और मुसाफ़िरों के कंधे पर चढ़े हुए असबाब के गट्ठड़, ट्रंक और बैग दिखाई दिए। कुछ इतिहास-वेत्ताओं ने लिखा है कि

मनुष्य ने पशु को पीट-पाट कर अपने तावे कर लिया है, और अब वह उस पर सवार होकर कूदता फिरता है। यह बात मनुष्य की बड़ाई में कहकर मनुष्यता की उत्कृष्टता के गीत गाए जाते हैं। यदि माल के बंडल भी पढ़े-लिखे होते, तो रेल के भेड़िया-धसानी दृश्य को देखकर वे अपना यह अनुभव लिख डालते कि मनुष्य-समाज को सर्वदा के लिये झेंपने से छुटकारा न मिलता। मिस्टर पोर्टमेंटो यह लिखते—"हमारी जाति के लोगों ने योरप की वीर-जाति पर भी विजय प्राप्त कर ली है, और रेलों पर जाने के पहले उनकी सवारी लेकर चलते हैं।" लाला गट्ठरदास यह फ़र्माते—"वह मारा! मनुष्य-समाज की नाक जड़ से उड़ गई। निर्जीव गठरियाँ मनुष्य के सिर पर लात रखकर बैठती हैं। यह विषय निर्विवाद सिद्ध हो गया कि जड़ संसार की असबाब-जाति ने मनुष्य-जाति को बिलकुल पददलित कर दिया।" श्रीमान् संदूक़चा साहब यह लेख-बद्ध करते कि संसार के सब मनुष्य हमारे चपरासी और पहरेवाले हैं। वे रात-दिन हमारी सेवा किया करते हैं।" सारांश यह कि बड़े-बड़े संदूक़, सेफ़ और आलमारे तो जो लिखते सो लिखते ही, साधारण पोटली-पोटले भी मनुष्यों पर करारी बातों की इतनी बौछार करते कि सभ्यता की सारी शेख़ी निकल जाती। और, वे लोग, जो मार-पीटकर दूसरी जातियों को तावे करने की वचन-बहादुरी का पक्ष करते हैं, घोंघे की उपमा का मुँह बनाकर रह जाते।

ख़ैर, जब मनुष्यों की सवारी पर लदे असबाब लोग फाटक पर पहुँचे, तो भीड़ जमा हो गई। उस समय गठड़ी, गट्ठड़ सब मौज में थे, और मुसाफ़िर बेचारे असबाब सुल्तान की प्रजा बनकर कष्ट पा रहे थे। इतने में पीछे से बड़ा रेला आया, और जान पड़ा, कोई ढकेल रहा है। असबाब साहब तो काहे को हटने

लगे ? वह तो मुसाफ़िरों की गर्दन पर अंकुश लगाए खड़े ही रहे। घूमकर देखा, तो एक गौरवर्ण सभ्य सबको ढकेलते हुए चले आ रहे हैं, और उनके पीछे एक गाउनधारिणी देवी हैं। जान पड़ा, उन्हीं का स्वागत या सम्मान करने को, या असबाव देख की भक्ति के कारण ही, यह पढ़ा-लिखा आदमी बंदर बनकर कूदने लगा था। अब आँखें खुल गईं, और पुराणों के मामले की एक गुत्थी और सुलझ गई। यह चित्र सामने आ खड़ा हुआ कि कोई समय इस देश में भी ऐसा हुआ होगा, जब विलासिता के प्रेम से लिपटे लोग स्त्रियों की सेवा में धर्म, कर्म और सभ्यता का कुछ विचार न करते होंगे। उनके लिये भलमंसी का घर-घर बलिदान ज़रूर होता होगा। देश में स्त्रियों की संख्या करोड़ों ज़रूर होगी। उन सबको भी हँसोड़ व्यास ने तैंतीस करोड़ कह दिया, तो झूठ नहीं। भविष्य का जो कुछ पता अनुमान की दूरबीन से लगता है, उससे यह स्पष्ट होता है कि पुराणों का खंडन कोई चाहे जितना कर ले, पर जिस दिन योरप के समान घर-घर जोरू की भिक्षा माँगने की चाल इस देश में निकल आवेगी, उसी दिन दस-बारह करोड़ देवियों का तो प्रादुर्भाव अवश्य हो जायगा। बाक़ी कमी धीरे-धीरे पूरी होती रहेगी।

इति पंचपुराणे प्रथमस्कंधे त्रिपंचाशत्तमोऽध्यायः

चतुः पंचाशत्तम अध्याय

दादी की शादी

पंडित मसजिदपरसाद बड़ी सज-धज के आदमी हैं। सिर से पैर तक इनकी बनावट की छटा से सब आसपास के रहनेवाले

परिचित हैं। फ़ैशन और सजावट को जितना यह मानते हैं, उतना पुराने लोग इष्टदेव को भी न मानते होंगे। आजकल के कवि यदि नवीन नख-शिख का वर्णन किया चाहें, तो वे मसजिद-परसाद को आदर्श बनाकर बहुत कुछ कवित्व-शक्ति को काम में ला सकते हैं। पर वह समय अभी दूर दिखता है, जब क़ाफ़ियाबंदी और तुकांतबाज़ी के महामहोपाध्याय या अख़बारी कवि उस ओर तक बुद्धि ले जाने की योग्यता की श्रेणी में गिनेंगे। महाराज मसजिद को उनके मित्र "मिस्टर मसजिद" कहकर पुकारते हैं। वह इस बात से बड़े प्रसन्न हैं, और चाहते हैं कि बाबू या लाला आदि जितने सम्मान-सूचक शब्द हैं, वे हटाकर केवल मिस्टर ही का चलन हो जाय, तो बड़ी अच्छी बात है। यह ख़ाली चाहते ही नहीं, उसकी ओर प्रयत्न-शील भी हैं। घर-भर के आदमियों को 'मिस्टर' लड़कियों को 'मिस,' नौकर को 'ब्वाय' कहकर पुकारना इनकी प्रकृति में दाख़िल हो गया है। यह विदेसी चाल को बहुत चाहते हैं, और पोशाक भी विलायती ढंग की डटे रहते हैं। हैट आपके सिर पर विराजती है; कोट-पतलून अंग की रक्षा करते हैं। कालर-नेकटाई से लेकर ओवरकोट तक सब विलायती फ़ैशन का इनके पास देखने में आता है। इसके सिवा इनके विचार भी कुछ विलायती ढंग से मिलते-जुलते हैं। देश-रक्षा, स्वार्थ-त्याग, मातृभाषा-प्रेम आदि सद्गुण जो पाश्चात्य देशों में देखे जाते हैं, उनका अंश तो इनमें कम क्या, नहीं-सा है; पर बाहरी आडंबर का पूरा रंग है। प्रातःकाल होते ही साबुन की गंध से मिला हुआ दंतमंजन मुख में व्याप्त होकर जब नवीन चाल का डंका बजाता है, तब सिगार या चुरुट का यज्ञ होने की तैयारी होती है। इस यज्ञ में मैच या दियासलाई का बाक्स ब्रह्मा बनकर अग्नि-स्थापन करता

है, और मुख द्वारा प्राण, वित्त और धर्माचार के होम में अग्नि लगाता है। जब गले में नेकटाई और कॉलर लगाकर मसजिद महात्मा चलते हैं, तो फ़ैशन की शैली से चाहे जो कुछ उत्तमता प्रकट होती हो, पर पुरानी चालवालों को तो यही प्रकट होता है कि गले में व्यर्थ ख़र्च की फाँसी लगी है। इस आडंबर के सिवा मसजिदजी समाज के भी बड़े भारी मौखिक रिफ़ार्मर हैं। न-मालूम कितने लेक्चरों में अक्षता और क्षता के मामलों में इन्होंने राय दी, कितनी बार पर्दा फ़ाश करने को ही उन्नति का मार्ग कह डाला। यह रोग या जोश यहाँ तक पहुँचा कि बुढ़िया तक की शादी की आज्ञा दे देने में आपकी ज़बान में ज़रा-सी घबराहट या फिसलाहट के दर्शन न हुए। पर पुरानी कहावत है—

"नीम हकीम ख़तरे जान ;
नीम मुल्ला ख़तरे ईमान।"

इतना होने पर भी, इतनी बाबूगिरी और फ़ैशन की उपासना होने पर भी, महाराज के घर में स्त्री-मंडली पुरानी ही चाल की है। जिस काल से इनके चुरुट-यज्ञ आरंभ होकर फ़ैशन-शास्त्र की सब बातें होने लगती हैं, उसी काल से घर की देवियों को चूल्हा-विज्ञान का सामना करना पड़ता है। मसजिद गुरु बात-बात में विलायती छौंकता है; पर स्त्रियों के फ़ैशन और ढंग में कुछ फ़र्क़ नहीं ला सका है। न तो उसने कोई बावर्ची रखकर स्त्रियों की रोटी-युद्ध की गरमी से रक्षा करने का ही कार्य संपादन किया, न कभी नवीन फ़ैशन की गाउन आदि देकर फ़ैशन की उत्तमता का आनंद ही स्त्रियों को प्राप्त कराया। केवल मौखिक बातें करने और कल्पना के ढेरों के लगाने की मोटिया-वृत्ति के सिवा उससे कुछ भी करते नहीं बना। आज मिस्टर मसजिद

सिर से पैर तक विलायती सजे जा रहे थे। एकाएक इनको एक नोटिस मिला, जिसमें यह लिखा था—

इत्तिला

(१) हर ख़ास व आम को ज़ाहिर किया जाता है कि आइंदा जुमेरात को मिस्टर मसजिद की दादी, जिनकी उम्र क़रीब ६० साल के है, अपनी दूसरी शादी करेंगी। शादी करने की खुशनसीबी मुंशी खुशनसीबराय साहब को मिलेगी। आप पुराने वक़्त के वकील हैं, और गर्दन को हिलाकर चलते हैं।

(२) कन्यादान का काम विधवा-विवाह कंपनी के मैनेजर साहब ने अपने ऊपर लिया है।

(३) इस शादी में दहेज वग़ैरह की रसूम नहीं मानी जायगी।

(४) सब सनातन-धर्मी भाइयों को इस मौक़े पर जमा होकर धर्म और तरक़्क़ी के काम में मदद करनी चाहिए।

भाइयों का ग़ुलाम—

रौनक़ अफ़रोज़ मेढक

सेक्रेटरी पंचायत मैरेज रिफ़ार्म

पं० मसजिदपरसाद बहुत पुराने सुधारकों में है। उसने उस समय सुधारक-तंत्र-शास्त्रियों से दीक्षा ली थी, जब बंगाल में "जये जात गोपाल की" के महामंत्र की धूम मच रही थी, जब वेद और कबीर के गीत एक ही थैली में भरे जाते थे, और यह मालूम होता था कि देव-मंदिर और तीर्थ थोड़े ही दिनों के पाहुने हैं। उस काल में कुछ ऐसे महापुरुष प्रकट हुए थे, जो पुराणों के ब्रह्मा के लिये बिलकुल सन् ५७ के बाग़ी हो रहे थे, और बिस्कुट-रूपी चपातियों के विस्तार से ये बलबाई ज़ोर पकड़ते ही जाते थे। औंद भगवान् से लेकर काशीनाथ के शीघ्रबोध तक पर इनकी गोलियों की ऐसी मार-चलती थी कि प्राचीन धर्माचारी लोगों

को अपने सनातनी-क़िलों के टूट जाने का बिलकुल भय हो गया था। उनमें कई एक आचार्यों के सिंहासन पर जा बैठे थे, और धर्म-शास्त्र पर बड़ी कोड़ेबाज़ी की जाती थी। इस दल के लोगों का यह कथन था कि बिना पुरानी बातों को मेटे कुछ काम नहीं हो सकेगा। पर दादी की शादी का नोटिस पाकर मसजिदपरसाद की सारी फुर्ती शरीर से निकल भागी, और वह सन्नाटे की अमल-दारी में हो गया। उसने नोटिस को कई बार पढ़ा, आँखें खोल-खोलकर देखा; पर कुछ संतोष न हुआ। ६० वर्ष की बूढ़ी शादी करेगी, यह ठीक नहीं। इसका विरोध उसके मन में प्रकृति देवी की कृपा से स्वयं उत्पन्न हो गया। विधवा-विवाह में डर नहीं। इच्छा के अनुसार पतिहीना स्त्री, जब तक उसमें विषय-वासना रहे, पति करने का काम जारी रक्खे, इसमें भी हानि नहीं। क्षता, अक्षता, सब प्रकार की स्त्रियाँ चाहे ब्रह्मचर्य का पालन करें या न करें, पर ब्रह्मा की बनाई सृष्टि में प्रजा को उत्पन्न करने के काम में सब काम छोड़कर काम में लिप्त रहें, यह उसकी हृदय की पुरानी वासना थी। पर दादी की शादी सुनकर उसकी नानी मर गई! वह झपटा हुआ घर की ओर जा रहा था कि बीच में उसको एक मित्र मिल गए, और वह बलपूर्वक कह-सुनकर पंडित मस-जिदपरसाद को एक सभा में ले गए। वहाँ बहुत-सी बातें हुईं; पर उसको अपनी दादी की शादी की चिंता ने ऐसा घेर रक्खा था कि किसी और तरफ़ उसका इरादा जाता ही नहीं था। वह रह-रहकर यही विचारता था कि दादी की शादी होने से बड़ी भारी हानि होगी। इसी बीच में सभा में समाज-सुधार के ऊपर कुछ विचार हुआ। बड़ी-बड़ी बातें कही गईं। एक ने कहा कि विधवा-विवाह से रंडाओं की संख्या कम होगी। दूसरे ने बताया कि बच-पन की शादी के हटाने से यह काम होगा। अपनी-अपनी सब

झोंकते रहे। पर पंडित मसजिदपरसाद पर कुछ असर नहीं हुआ। वह अपनी दादी की शादी का नोटिस पा चुका था। उसी चिंता का भूत उस पर सवार हो गया। थोड़ी देर के बाद सभा में निम्न-लिखित काव्य पढ़कर सुनाया गया। इस पर सभा के सुधारक लोग विरोध करते थे; पर सभापति ने कहा—"सबकी बात सभा में पेश होनी चाहिए।" इस सूत्र के आधार पर उसका पढ़ा जाना स्वीकृत कर लिया गया—

हुआ क्या तुम्हें? सरबसर भूलते हो;
अरे धर्म का भी असर भूलते हो।
न कोरी बनावट से होगी तरक्क़ी;
बड़ा इसमें होगा ज़रर, भूलते हो।
जहन्नुम में जाकर गिरोगे सभी तुम;
हटा एकता तुम अगर भूलते हो।
न फिर चैन मिलने का है ज़िंदगी-भर;
पुरानों की जो सुख-लहर भूलते हो।

योरप देश के पादरीदल में, कुछ काल बीते, "कामन सेंस" की बड़ी धूम थी। वे लोग कहते थे कि अच्छे और बुरे का ज्ञान मनुष्य के अंदर ईश्वरदत्त शक्ति द्वारा उत्पन्न होता है, और इसी शक्ति को वे "कामन सेंस" कहते थे। इस बात पर पाश्चात्य विद्वानों की मंडली में बड़ा कड़ा शास्त्रार्थ हो चुका है। शास्त्रार्थों का होना उस रस्सी की घसीट के समान हुआ करता है, जिसको "टग ऑफ़ वार" कहते हैं। पर इस खेल में तो हार-जीत का निर्णय हो भी जाता है, किंतु शास्त्रार्थ के झगड़ों में दोनों दल "अपनी-अपनी डफली और अपना-अपना राग" ही गाया करते हैं। इसी नियम के अनुसार पादड़ीदलों का झगड़ा भी अनिश्चित रहा, और हारी-जीती न समझनेवाले मियाँ का अनुकरण करनेवाले

बनकर दोनों दल अपना स्वाँग दिखाते रहे। मनुष्य के अंदर सत्यासत्य या भले-बुरे को जाननेवाली कोई शक्ति हो चाहे न हो, पर साधारण रीति में देखा जाता है कि बुरी बात मनुष्य को बुरी ही कहनी पड़ती है। दुर्व्यसनों में पड़ा मनुष्य चाहे जितना ख़राब काम करता हो, पर वह अपने ख़राब काम को मन से ज़रूर ही ख़राब समझता है। पंडित मसजिदपरसाद उस समय उत्पन्न हुए थे, जब मसजिद और पीर-पैग़ंबरों की पूजा हिंदू-समाज में खुल्लम-खुल्ला प्रचलित थी। जब कितने ही लोगों के घर में ताज़ियों का चढ़ा हुआ शरबत शालग्राम के चरणामृत के समान माननीय माना जाता था। जब वेश्या के घर में जाकर बैठने को लोग युनि-वर्सिटी की बी० ए० परीक्षा के बराबर समझकर कहा करते थे कि "वारांगनाराजसभाप्रवेशः", जिसका यह अर्थ समझा जाता था कि वेश्या और राजा की सभा में बैठने से मनुष्य में बुद्धि होती है। अब पंडित लोग मुसलमानी चाल को म्लेच्छ और यवन कहकर चाहे जितनी घृणा या धर्म-लीला का रंग दिखावें, पर उस समय घर-घर इतनी मुसलमानी फैल गई थी कि उसके विरुद्ध चूँ-चपड़ करने में बड़ों-बड़ों की नानी मरती थी। यवन-सम्राट् अकबर को "दिल्लीश्वरो वा जगदीश्वरो वा" कहकर पुकारनेवाले देहली में देखे गए थे, तो "जिसे न दिलावे मौला, उसे दिलावे आस-फ़ुद्दौला" के गीत गानेवाले अवध में भी उत्पन्न हो गए थे। राजा के आचरण का प्रभाव कुछ-न-कुछ प्रजा पर अवश्य ही पड़ता है, और राजा की चाल को अशुद्ध कहनेवाले चिरकाल तक अपनी पुरानी चाल का चरखा सृष्टि में चला नहीं सकते। प्राचीन लोग नवीन चाल को बुरी दृष्टि से पहले ज़रूर देखते हैं; पर फिर पीछे उनको हार खानी ही पड़ती है। पं० मसजिदपरसाद इस बात को खूब जानते हैं, और समझते भी हैं। वह विचारते हैं कि हिंदू-

समाज के भद्र पुरुषों के सिर, जो किसी समय पगड़ी और चौगोशी टोपियों की अमलदारी में थे, अब बिलकुल फ़ेल्ट कैपों की प्रजा हो रहे हैं, और हैट तथा अँगरेज़ी टोपों के धावों की पराक्रमशीलता को देखकर यह मानना पड़ता है कि वह दिन दूर नहीं है, जब टोपों की फ़तह के निशान सब भलेमानसों की खोपड़ियों पर दिखाई देने लगेंगे। इसी कारण वह स्वयं भी इस नवीन पोशाक की सज-धज को उत्तम समझते हैं। वह यह भी कहा करते हैं कि नवीन चालों की सेना ने कुछ ऐसा बड़ा काम नहीं किया, जो नवीन सदाचार का तोपख़ाना करके दिखावेगा। हाथ मिलाना, पवित्र बूट के आसन पर खड़े होकर माल खाना या भैरव के वाहन की तरह दीवाल के पास जाकर लघुशंका करना उस होनेवाली उन्नत समाज की शोभा के एक पसंगे में भी नहीं आ सकेगा। तालियों के पीटने की चाल और नवीन आचारों की जितनी परिपाटी इस समय प्रचलित है, वह सब भावी परिवर्तन के सामने गर्दन बढ़ाने की हिम्मत नहीं रक्खेगी। एक समय यह आवेगा, जब हमारे देश की भलमंसी में पराई स्त्री को अर्द्ध-पोशाकी बनाकर उसके साथ नाचने की चाल निकल आवेगी। तब वे वकील लोग, जो हाईकोर्ट के मंदिर में क़ानून की लीला करते हैं, समाज के जल्सों में रास-लीला दिखाया करेंगे, और प्रोफ़ेसर और मास्टर, जो लड़कों को बेंत दिखाकर नचाते हैं, "बैंड-मास्टर" के बेंत के आगे फुदक-फुदककर कूदेंगे। इन बातों से यह ज़रूर सिद्ध है कि पं० मसजिदपरसाद शायद उस आनेवाले समय की तैयारी में नवीन चाल, नवीन बात और नवीन आचार का सामान बढ़ाते चले जाते हैं। इतना होने पर भी अपनी दादी की शादी की ख़बर सुनकर उनको जोश चढ़ ही आया। वह उसको रोकने को तत्पर हो गए। सुधारक-समाज से छुट्टी पाते ही वह सीधे घर पर दौड़े। मारे फुर्ती के उनको

अपने शरीर का होश नहीं रहा। मार्ग में कई जगह ठोकर भी खाई ; पर चटपट वह मकान में जा पहुँचे। जाते ही पंडित ने पूछा—"दादी कहाँ हैं ?" कुछ जवाब नहीं मिला। तब यह "दादी, दादी !" कहकर ऊपर के खंड में जा पहुँचे। पर किसी का शब्द सुनाई नहीं पड़ा। एकाएक बड़े कमरे में, जहाँ इनकी पितामही एक खाट पर लिहाफ़ ताने पड़ी थी, जाकर यह "दादी, दादी !" कहकर बुलाने लगे। फिर बार-बार आग्रह करने पर बूढ़ी उठी, और बोली—"क्या कहता है ? नाक में दम कर दिया ! इसके मारे ज़रा देर आराम करने को नहीं मिलता।" इतनी नाराज़गी ज़ाहिर करके वह बूढ़ी चारपाई पर उठ बैठी, और उसको देखते ही पंडित ने पूछा—"दादी, क्या तुमने कोई इश्तिहार छपवाया है ?" अब इन दोनों की इस प्रकार बातचीत होने लगी—

दादी—"कैसा इश्तिहार ?"

पोता—"शादी का।"

दादी—"मैंने तो छपवाया नहीं। किसकी शादी का ?"

पोता—"देखो (इश्तिहार निकालकर)। यह किसी ने हमारा नाम लेकर लिखा है कि इनकी दादी की शादी होगी । हम उस पर दावा करेंगे।"

दादी—"और जो मैंने ब्याह कर लिया, तो दावे से क्या होगा ?"

पोता—"तो क्या तुम दूसरी शादी करोगी ?"

दादी—"इसमें हरज क्या है ?"

पोता—"हरज-अरज की बात नहीं, तुम पहले यह बताओ कि शादी करोगी या नहीं ?"

दादी—"करूँगी।"

पोता—"हँसी की बात नहीं, सच कहो दादी।"

दादी—"इसमें हँसी काहे की ? तू तो आप ही विधवा की शादी का झंडा लिए घूमता है।"

पोता—"अरे तो ये सब बातें औरों के लिये हैं। अपने लिये थोड़े ही हैं दादी !"

दादी—"हैं, तो तुम चाहते हो कि और बुरा काम करें, और तुम तमाशा देखो ?"

पोता—"देखो दादी, ब्याह न करना ; इसमें हमारे कुल की हँसी होगी।"

दादी—"हँसी काहे की ? अब तो इश्तिहार छप ही गया है।"

अब पंडित मसजिदपरसाद दादी को समझाने लगे। घर की कुलवधू सब कमरे में आकर खड़ी हो गईं। बड़ा क़हक़हा मचा। यह बारंबार दादी की खुशामद और मिन्नत करके समझाते कि विवाह करने के विचार को छोड़ दो, और बूढ़ी शादी करने का हठ किए जाती थी। लड़के ताली पीट-पीटकर कूदने लगे—"दादी की शादी होगी, जाफ़रान खायँगे।" घर-भर में कुतूहल मच गया। अंत में बड़ी हाय-तूय के बाद दादी ने शादी का इरादा छोड़ने की प्रतिज्ञा की। पर ऐसा करने के पहले पं० मसजिद गुरू को कान पकड़कर अपनी रिफ़ार्मरी की मुँह-आई बकनेवाली चाल पर शोक प्रकट करना और ऐसी बकवाद-मंडली को सर्वदा के लिये शपथ खाकर त्यागना पड़ा। इस स्थल पर यह कह देना भी ज़रूरी है कि पं० मसजिद की समझ को ठीक अवस्था पर लाने के लिये ही घर की कुलांगनाओं ने यह विज्ञापन की चाल की तरकीब निकाली थी, और उसमें उनको पूरी सफलता हुई।

इति पंचपुराणे प्रथमस्कंधे चतुःपंचाशत्तमोऽध्यायः

पंचपंचाशत्तम अध्याय

मुँहफट की फटकार

शिक्षा का अर्थ मानसिक उन्नति है। जब पढ़-लिखकर भी मनुष्य के विचार नहीं बदले, उसको बोलचाल का ढंग नहीं आया, तो वह आदमी क्या बोलनेवाले ग्रामोफ़ोन-गोत्र की संतान ही हुआ। उसमें जो भर दिया जाय, उसको कह सकता है, और इससे जो भरा गया, वह लिखा भी जा सकता है। इसके सिवा तत्त्व की बात दोनों से दूर रहती है। भारत के फूटे कर्म से उसमें ऐसे ही लोग अधिक भरे पड़े हैं। पुराने ज़माने के वेदपाठी बिना समझे-बूझे जिस प्रकार शब्दों का तार बाँध देते थे, वैसे ही नवीन परिपाटी के महात्मा अधिक दिखाई दे रहे हैं। कुछ दिन हुए, एक हिंदुओं के हाफ़िज़ साहब, अर्थात् वेदपाठी, अपनी वसंत-पूजा करने बैठे। साथ में उनके कई एक साथी भी थे। पहले तो उन्होंने सीधा-सीधा पाठ पढ़ा। फिर एकाएक जटा और घन की छटा दिखाने लगे। आमने-सामने बैठकर "श्रीश्चते" मंत्र पर उन्होंने अपनी रटंत का रगड़ा दिखाया, और लाल मुँह करके ऐसे चिल्लाए कि उनके गलों की नसें निकल आईं। "ते ते श्रीश्चते" आदि कहकर वह शब्दावली को उगलने लगे। भय हो गया, कहीं इनके फेफड़े निकलकर वसंत-पूजा में कूदने न लगें। राम-राम कह-कह यह फेफड़ा-शास्त्र समाप्त हुआ। इसी प्रकार जब काशी के पंडितों की एक सभा हुई, तो उसमें "अवच्छेदकावच्छिन्न" का सर्राटा भरते हुए पंडितों के मुँह इस प्रकार चलने लगे, जैसे घास काटने की मशीन, और हमारे-जैसे विचार का आनंद पाने के लोभी कोरे ही रह गए। इन सब बातों को बुरा कहने को हमारे नवीन युनिवर्सिटी के साँचे में ढले शिक्षा के पुतले घमंड से काम

लिया करते हैं, और यह तानेबाज़ी करते हैं कि प्राचीन पढ़ाई में विचार की बातों का बिलकुल टोटा रहता है। यह बात देखने-सुनने में कुछ ठीक भी जान पड़ती है, और यह राय क़रार पाती है कि बालकों की शिक्षा का पुराना ढंग ठीक नहीं है। नवीन चाल के लोग चाहे रटंत में इतने न भी हों, पर उनकी हालत इनसे कुछ यों ही-सी अच्छी है। उनमें तो पुरानी फक्किकाएँ भरी हैं, और इनमें नवीन ख़्यालों के उच्छिष्ट को छोड़कर और कुछ नहीं है। प्रतिफल यह निकला कि भारतवर्ष सामाजिक अवस्था में जितना ५० वर्ष पूर्व था, उतना ही अब है।

देखने में कोट, पतलून, हैट चमकते हैं; पर काम करने में किसी की हिम्मत नहीं। इसका परिणाम यह हुआ है कि बक-बक-वृत्ति ने अपना प्रभाव बुरी तरह से स्थापित कर लिया है। पुरानी बातों को काटने में सब कतरनी हो रहे हैं; पर नवीन बातों को जोड़कर नई चाल बना लेने का किसी को साहस नहीं है। श्रद्धा, धर्म-दृढ़ता, एकता, सबका नाश हो रहा है, और उद्धत स्वभाव की चाल निकलती चली आती है। ऐसे महापुरुष अब बहुत हैं, जो किसी की क्या, अपने बाप की भी बुराई कहकर मुँहफट की पदवी पाने को तत्पर हैं। इस प्रकार मुँह-आई बकने के महामहोपाध्याय मिस्टर खूसट हैं। इनमें ऐसी शिक्षा मिली, जिसका ऊपर वर्णन है। इनके पास कुछ माल भी है, और दरिद्रयुग के कंगाल-मन्वंतर में यह कुबेर के सगे नहीं, तो सौतेले भाई अवश्य समझे जाते हैं। कहावत है—"एक तो करेला, दूसरे नीम-चढ़ा।" इस कारण इनके मुँह में लगाम और नाक में सदाचार की नाथ या गर्दन पर भलमंसी का अंकुश आदि कुछ भी नहीं है। यह अपने बेटों से नाराज़ होते हैं, तो दादा का नाम लेकर उनको गालियों के पिंड दिया करते हैं कि

अमुक बीसल के ख़ानदान में ऐसे ही घोंघे उत्पन्न होने चाहिए थे, और पुत्री से क्रोधित होकर उसकी दादी को दो-चार खोटी-खरी का प्रसाद अर्पण करते हैं। लोग कहते हैं, इनके घर बुज़ुर्गों को गालियाँ देने के इतने श्राद्ध हुए कि अब उनके लिये गया में जाने की कोई ज़रूरत बाक़ी नहीं रही। इनकी यह उद्धत प्रकृति अपनी घरवाली पर बड़ा असर डालती है। जब आप उससे कुपित होते हैं, तो "शूकर के वंश में उत्पन्न हुई" कहकर अपना रोष दिखाया करते हैं। और कुछ ऐसे अंड-बंड शब्द भी कहते हैं, जो सदाचार की अदालत के फ़ैसले के अनुसार पत्रों और पुस्तकों में नहीं लिखे जाने चाहिए। वह प्रायः तो चुप हो जाती है, पर कभी-कभी ऐसी बात कह उठती है कि खूसट सिर पटककर उछलने ही लगता है। हाल में एक दिन स्त्री पर आप ख़फ़ा हुए, और बोले—"लोगों ने बड़ी भूल की, जो हमारा ब्याह सुअर-वंश में करा दिया।" इस पर वह कह उठी—"अपना ब्याह किसी ग़ैर क़ौम के साथ कर लेते!" यह सुनकर मिस्टर खूसट बड़े उछले, और "हाय, हमें सुअर-ज़ात का कहती है" कहकर रोने लगे। कथा के नायक मिस्टर की कृपणता भी पल्ले सिरे की है, और अनुभव सीखने के प्रेमियों के बड़े काम की चीज़ हो रही है। यह बस्ती में अमीर कहे जाते हैं, और अपनेको समझते भी वैसा ही हैं; किंतु उनकी अमीरी का भाव कुछ और तरह का देखने में आता है। यह रुपया बचाने को रुपया पाने का काम समझते हैं, और कौड़ी-कौड़ी पर जान देना अमीरों के लक्षण में गिनते हैं। तरकारीवालों और छोटे सौदा लेकर घूमनेवालों के तो यह पूरे शनिश्चर हैं। पैसे की चीज़ लेने में यह ग़रीबों के टोकरे की जान निकाल लेने को तत्पर रहते हैं। कई दफ़े इस लूट-मार के कारण तरकारी के व्यापारियों से मिस्टर खूसट की हाथापाई भी हो गई; पर उसे

अमीरी का चिह्न समझकर यह हाथ की लपक के अभ्यास को छोड़ नहीं सके हैं। मिस्टर खूसट ज़बान के बड़े करारे हैं। खोटी कहने में यह संसार-भर के छटे 'एक्सट्रीमिस्ट' हैं—फ़लाँ आदमी बेईमानी से अमीर हुआ, ढिकाना आदमी दिवाला मारकर लखपती बन बैठा। किसी के मुँह को त्रिकोण का भाई बना देना, किसी के सिर को हाँडी की उपमा दे देना, इनके लिये एक साधारण बात है। एक दिन इसी प्रकार अपनी मेंढक-वृत्ति के आवेग में आकर अस्त-व्यस्त कहने के कारण यह इतने पीटे गए कि इनकी खोपड़ी को संगत का बायाँ और दाहना तबला बनने का सौभाग्य प्राप्त हो गया, और कानों की खूँटियों की इतनी ईंचतान हुई कि मुख को सारंगी और चिकारा, सबका काम देना पड़ा। यदि मुहर्रम के समान हाहाकार करके रोने में कोई पवित्र कार्य होता, तो उस दिन की पूजा से यह पूरे पवित्र बन गए, ऐसा ही मानना पड़ेगा। यह सब कुछ है; पर मुँहफट लोगों की परंपरा में एक बात यह भी देखी जाती है कि वे ख़ुशामद में भी बड़े वीर होते हैं। अमीर और ज़बर्दस्त के आगे तो उनकी पगिया का आसन बराबर झुका ही रहता है, किंतु ग़रीब और निर्बल के लिये वे ब्रह्मराक्षसी-वृत्ति को ही काम में लाना अपने अमीरी-धर्म की निशानी समझते हैं। इसी आचरण के वशीभूत होकर इनको अमीरों के पीछे भूत बनकर चिमटते देखकर कलियुग की कार्यवाही प्रत्यक्ष दिखने लगती है। इस स्वभाव के अभ्यास से आदमी लज्जा को बिलकुल दंडी स्वामी की माया समझकर त्यागने लगता है, और खूसट की यह अवस्था थोड़े ही दिनों में आनेवाली मालूम होती है। मिस्टर खूसट अपने को साहित्य का भी बड़ा मर्मज्ञ मानते हैं, और पैसा सैकड़े के भाव की कविता की लाइनें भी कंपोज़ कर डाला करते हैं। इनका उपनाम या

वख्रएलुस रोज़ नया बदला करता है । आजकल वह अपनेको "पायजामा" कवि लिखते हैं । आपकी अलौकिक कविता का नमूना यह है—

वसंत-वर्णन

होली आनेवाली है, वसंत अब आता है;
सुमरन करे से वाको, हिया फटा जाता है।
प्लेग भी आती है, मज़े हैं बस, हकीमजी के;
दुनिया में किसी से कुछ रिश्ता है, न नाता है।
कहे पायजामा भाई, माल का नशा है चढ़ा;
अब वह खोपड़ी पर खूब चढ़ आता है।
अकल का दिवाला और समझ का घाटा होता;
तब तो घबड़ा के उल्लू-वसंत बन जाता है।

इति पंचपुराणे प्रथमस्कंधे पंचपंचाशत्तमोऽध्यायः

षट्पंचाशत्तम अध्याय

मेंबरी-माहात्म्य

एक समय शौनकादिक ऋषीश्वरों ने पौराणिक सूतजी के पास जाकर हाथ जोड़कर पूछा—हे महाराज, कलिकाल के समय में मेंबरी-नामक देवी की उपासना करनेवालों को क्या पुण्य होगा, और "केन पुण्यप्रभावेण" मनुष्यों पर मेंबरी देवी प्रसन्न हो जायँगी? यह हमसे कृपा कर कहिए।

सूतजी बोले—हे मुनीश्वरो, यह तुमने लोक के हित की बानी पूछी है। मेंबरी देवी की उपासना से मनुष्य को तीन वर्ग की प्राप्ति होती है। कलियुग में उस प्रत्यक्ष देवी से बढ़कर और कोई देवी नहीं होगी। तीन वर्ग के अंदर पहले धर्म, अर्थ और काम

गिने जाते थे, किंतु कलियुग की एक्ज़ीक्यूटिव कमेटी ने इन तीनों को बदल दिया है। धर्म की ज़रूरत कई कारणों से अब नहीं रही। पुराने ज़माने के हिंदुओं के "क़ुरान शरीफ़" यानी पुराणों में लिखा था कि कलियुग में धर्म का एक पैर रह जायगा। आप जानते ही हैं कि इस नए ज़माने में जब रेल और मोटर की दौड़ को भी लोग धीमा समझते हैं, एक टाँगवाले लंगड़दीन धर्म की कैसी इज़्ज़त हो सकती थी? इन सब बातों का विचार करके धर्म इस उन्नतिशाली समय में काले पानी भेज देने ही के लायक़ हो गया था। वही किया भी गया। श्रीमती ख़ुदग़र्ज़ी साहबा की कचहरी में धर्म पर फ़ौजदारी दावा चलाया गया, जिसमें नवीन शिक्षा ने वकालतनामा लेकर यह दिखलाया कि अब लँगड़े धर्म की कुछ ज़रूरत मुल्क में नहीं है, और इसको यहाँ से बाहर निकाल देना ही ज़रूरी बात है। वकील का स्त्री-वाचक शब्द यदि हिंदी में वकीला हो सकता हो, तो श्रीमती नवीन शिक्षा "वकीला" ने बड़ा काम कर दिखाया। इस बारे में कई लोगों ने अच्छी गवाहियाँ दीं, और ऐसे-ऐसे वजूहात अर्थात् कारण अदालत में सुनाए कि विरोधियों के छक्के छूट गए। पहले यह पेश किया गया कि पुराने धर्म साहब एक टाँग के होने पर भी शरारत यानी दुष्टता करके नई उन्नति के मार्ग में कंटक हो रहे हैं। एक तो देश में यों ही काल पड़ रहा है, उस पर वह छुआछूत का झगड़ा लगाकर करोड़ों टन जूठन पशुओं को खिला दिया करते हैं। यह बात अर्थ-शास्त्र यानी इकानोमिक के बिलकुल ख़िलाफ़ है। सूतजी बोले—यह एक ऐसा चार्ज था कि धर्म देवता घबराकर रोने लगे, और बोले कि पशुओं को जूठन मिलती है, तो वह भी कुछ उपकार ही है, और इसके उत्तर में वह मुँह-तोड़ बात कही गई कि धर्म देवता पर पूरे सनीचर देवता आ गए। यह कहा गया कि संसार में दो प्रकार से

मनुष्य की उत्पत्ति मानी जाती है—एक भगवान् की आज्ञा से, और दूसरे जानवरों की वंश-परंपरा से। अब जानवरों के गोत्रज ही अधिक कर संसार में रह गए हैं। अतएव जानवरों से उनसे शराकत अर्थात् हिस्सेन्बाँट का संबंध है। इस कारण उनको जूठन देना सरासर अपने पैर में कुठाराघात करना है। सूतजी इतनी कथा के उपरांत कहने लगे कि मुक़दमा बड़ा भारी हुआ, और स्वार्थ देवी ने धर्म को फाँसी पर लटकाने की आज्ञा दे दी। संसार में बड़ा स्याका फैल गया, और दूसरी अदालत में अपील करने पर फाँसी की जगह यह आज्ञा हुई कि उच्च श्रेणी के हिंदुओं के घर से धर्म निकाल दिया जाय, और जिनको वे नीचा समझते हैं, उनके घर में वह अपनी लँगड़ी चाल दिखाता हुआ लुढ़कता रहे। इस डिगरी के बाद से धर्म निकाल दिया गया, और उसकी जगह उसके सौतेले भाई 'अधर्म' को मिली है। इसलिये आज-कल का रिफ़ार्म किया हुआ त्रिवर्ग अधर्म, अर्थ और काम, इन तीनों को सूचित करता है। यह सुनकर शौनकादिक ने पूछा कि महाराज, धर्म की जगह तो अधर्म और अर्थ की जगह दौलत की उपासना हुई; किंतु 'काम' से क्या बात समझी जानी चाहिए? इसके उत्तर के निमित्त पौराणिक सूतजी बोले—हे ऋषिसंतानो, सुनो, काम का पहले अर्थ था मन की इच्छा की पूर्ति; पर अब कंगाल-मन्वंतर के मुफ़लिसी-कल्प में इच्छा का पूरा होना कोसों दूर से भी दूर रहता है। इसलिये काम का अर्थ है कामदेव की उपासना, अर्थात् चारों आश्रमों में कामदेव की माला फेरता जाय। बाल्यावस्था से विवाह होकर ब्रह्मचर्य के गले में फाँसी लगाई जाय। यह कामदेव की पहली उपासना हुई। फिर युवावस्था में अपनी स्त्री बूढ़ी-सी होकर बुजुर्ग की सूरत बन जाय, तो परदारा के अपहरण में लगकर कामदेव की जय करता रहे, और बूढ़ा होने

पर नवीन विवाह करके सर्वतोभावेन कामदेव की कलह को घर में स्थान दे। इससे यह सिद्ध हुआ कि कलिकाल के त्रिवर्ग में भी परिवर्तन हुआ है, और मेंबरी की उपासना में यह त्रिवर्ग ही प्राप्त होता है। किसी ने कहा है—

चाहता जो देश में हो मेंबरी;
सबसे पहले तो बने आडंबरी।
सींग सिर में हो लियाक़त का लगा;
जिसमें समझें लोग विद्या का सगा।
कोट हो, पतलून हो, जाकट भी हो;
माल से पूरी ज़रा पाकट भी हो।
दौड़ने में अश्व हो, या रेल हो;
सब तरह के वोटरों से मेल हो।
बंदगी करने में भी अभ्यास हो;
गिड़गिड़ाने की लियाक़त ख़ास हो।
हाथ जोड़े, सिर झुकाए किस तरह;
नायका होती नवोढ़ा जिस तरह।
लेके टोपी हाथ में माँगे दुआ;
मेंबरी का काम बस, जानो हुआ।
वोटरों की एक बड़ी भारी जमात;
रंडियों के प्रेम में खाती है लात।
चौक के कमरे शहर की नाक हैं;
मेंबरी के तीर्थ हैं और पाक हैं।
जाके उन पर बीबियों को पूजकर;
वोटरों को धर दबाए कूदकर।
और जो यह भी न जिससे हो सके;
झूठ पर तब तो कमर पूरी कसे।

सबको भड़काकर करें अपनी तरफ़ ;
एक भी बोले न फिर सच का हरफ़ ।
बस, मिलेगी मेंबरी फिर तो ज़रूर ;
सब कहेंगे आके घर में "जीहुज़ूर !"
तब मिलनसारी से रहिए खूब दूर ;
वोटरों को भी समझिए बेशऊर ।
फिर ख़िताबों की तयारी कीजिए ;
मेंबरी से मुँह की माँगी लीजिए ।

इतनी कथा सुनाकर सूतजी बोले कि मेंबरी के प्राप्त करने की एक बड़ी भारी विद्या है, जो संसार में 'कनवेसिंग' के नाम से प्रसिद्ध है। यह दूती-शास्त्र या कुटनी-साइंस कहा जा सकता है। पर बहुत-से मेंबरी-प्रार्थी स्वयंदूती के समान कार्य करते हैं, इस-लिये उसका वर्णन आज नहीं होना चाहिए। सूतजी की इस कथा को सुनकर शौनकादिक ऋषीश्वरों ने महाराज की प्रतिष्ठा में "वोट ऑफ् थैंक्स" पास किया, और सभा विसर्जित हुई।

इति पंचपुराणे प्रथमस्कंधे षट्पंचाशत्तमोऽध्यायः

सप्तपंचाशत्तम अध्याय

परिवर्तन-लीला

बादलख़ाँ नाम के एक ब्राह्मण देवता नगर के एक कोने में निवास करते थे। यद्यपि ख़ाँ की उपाधि ब्राह्मण के लिये उचित नहीं जान पड़ती, पर उस समय की चाल ही यही थी। समय के अधिकारियों को प्रसन्न रखने की चाल जैसी आजकल है, वैसी ही पहले भी थी। अब डालों की पूजन-सामग्री वर देनेवाली बन जाती है, तो पहले मुसलमानी चाल की प्रवृत्ति ही कार्य को पूरा कर

देने में यथेष्ट थी। ख़ैर, यह बादलख़ाँ महाराज धीरे-धीरे समयानुसार काम करते-करते बड़े पद पर पहुँच गए। ज्यों-ज्यों उन्नति होती गई, त्यों-त्यों आपकी छवि गिरगिट का रंग बदलती और-की-और बनती चली गई। यहाँ तक अवस्था पहुँची कि चाल-ढाल में पंडिताई के सब चिह्न छिन गए, और मियाँ साहबी की झाँकी सब तरफ़ दिखने लगी। अब सिर से पैर तक योरपियन 'फ़ैशन' से समलंकृत, चुरुट का यज्ञ करने में सिद्धहस्त, खड़े होकर मूत्र का छिड़काव करनेवाले और 'कमोड' के पास जाकर पानी न छूने के दृढ़-प्रतिज्ञ, पंडित-उपाधिधारी ब्राह्मण देवता बड़े-बड़े देखे जाते हैं। किंतु तब अर्थात् शाही ज़माने में घेरदार पाजामा, परकटी चपकन, घेतला जूता और गोलेदार पगड़ी या शिरोवेष्टन लगाए लोग माननीय 'पंडित' समझे जाते थे। इन दोनों उदाहरणों से इतना अवश्य सिद्ध हुआ कि सांसारिक उन्नति के लिये प्रचलित राज्यप्रथा की पोशाक किसी-न-किसी अंश में अवश्य ग्रहण करनी पड़ती है, और संसार-यात्रा में उसकी सारी सफलता में कुछ सहायता अवश्य प्राप्त होती ही है। पंडित बादलख़ाँ के पूर्वज कुटैया का छत्ता रखकर और धोती तथा उपरने के सिवा दूसरा कपड़ा बदन पर रखना पाप समझते थे। पुराने लोग नवीनों को नवीन चाल पर चलते देखकर आपत्ति करते ही हैं। ऐसा होना स्वभाव के अनुकूल है। प्रकृति देवी ने नवीन चालों को रोकने के लिये मानो पुरानों की फ़ौज बना रक्खी है। ज़रा कुछ परिवर्तन का नाम सुना नहीं, मर्यादावालों ने कान खड़े किए, और स्वभाव-वश नवीनों पर टूट पड़े। परिवर्तन का यह महासंग्राम सदा से होता चला आता है। नए लोग यह समझते हैं कि नवीन परिपाटी के बिना समाज की उन्नति नहीं, और पुराने कहते हैं कि सारी अवनति का निदान-कारण नवीन चालों

का प्रचार है। इस तरह ये दोनों सृष्टि के आरंभ से झगड़ते चले आते हैं ; पर अंत में जीत नवीनों ही की होती है। कुछ दिनों बाद वे नवीन भी प्राचीन समझे जाने लगते हैं, और दूसरे नवीन उन पर आक्रमण कर बैठते हैं। इस परिवर्तन के नियमानुसार हमारे पंडित बादलखाँ साहब का कुटुंब क्या-से-क्या हो गया। पहले वर में त्रिकाल-संध्या की धूम थी ; पर वह सब धूम में मिल गई। वेद-मंत्रों का स्थान 'कुरान शरीफ़' की आयतों को मिल गया, और घर-भर में 'वल्ला' और 'बिस्मिल्ला' का माहात्म्य सुनाई देने लगा। 'प्रणाम' की जगह यों तो 'सलाम' और 'सलामालेकुम' की आवाज़ें आती ही थीं, पर कभी-कभी कट्टर पंडितों के सामने भी 'दंडवत' की गद्दी 'परनाम अर्ज़ है' के अभिवादन को मिल गई। पुराने आस्तिक हिंदुओं में जातियता का अहंकार एक ऊँचे दर्जे तक पहुँचा हुआ था, और वह दूसरों को म्लेच्छ कहकर केवल घृणा ही नहीं प्रकाशित करते थे, बल्कि उन्हें दबाने को लाठी-सोंटा लिए तैयार रहते थे। अपने समाज को वह उत्तमता का आदर्श यहाँ तक मानते थे कि दूसरों को धर्म और समाज में मिलाना क्या था, मानो समाज के मानसरोवर में गंदे नाले को फेंकना था।

ऐसे अहंकार से पूर्ण लोगों की संतति अपनी पुरानी कट्टरता को छोड़कर जिस नियम से मसजिद की उपासक बन गई, वह दैवी नियम सबसे बढ़कर मानना पड़ता है। साथ ही वह दूसरा भी नियम है, जो पुरानी बातों के पक्ष में रहकर नई चालों के साथ बराबर पटेबाज़ी का नाता रखता है। उसका फल तो यह देखने में आया कि पं० बादलखाँ के घर में पुरुषों में तो केवल हिंदूपन का नाम ही रह गया, पर स्त्रियों में चूड़ी-कंघी और नथनी के फ़ैशन के साथ गौर, गणेश और शीतला भवानी के सामने सब आयतों

की नानी मर गई, और उनके सामने मियाँ-मंडल की चाल को बराबर हार खानी पड़ी। पुराना आचार कुटुंब के पुरुषों से नहीं बचाया जा सका; पर स्त्रियों ने अपने कट्टरपन के क़िले में उसको बैठाकर ऐसा बचाया कि नवीन आचारों की सेना की ज़रा भी दाल नहीं गलने पाई। जो काम स्त्रियाँ आजकल कर रही हैं, जिस प्रकार वह पुरानी चालों के बचाव में क़िलेबंदी करके मर्यादा की रक्षा कर रही हैं, वही काम उसी प्रकार तब भी करती रहीं। भेद इतना ही रहा कि तब नवीनता की फ़ौज की संग्राम-ध्वनि "वल्ला" और "बिस्मिल्ला" थी, पर अब वह 'थैंक्स' और 'गुड मॉर्निंग' आदि शब्दों में सुनाई पड़ती है। स्त्रियों का नाम तो है अबला, पर पुरानी चालों को रोककर उनकी रक्षा करने में वे पूरी प्रबला हैं। सृष्टि के आरंभ से वे मर्यादा का झंडा लिए समाज की रक्षा करती रही हैं। यह उन्हीं की वीरता थी कि मियाँ-धर्म का क़दम हिंदू-समाज में जमने नहीं पाया, और यह भी उन्हीं की वीरता है कि नवीन चालों के आक्रमण से परास्त होकर लोग अपने क़िले का फाटक खोलकर भाग गए हैं। उसकी रक्षा भारत की सती-साध्वियों की सेना ही कर रही है, और प्रत्याक्रमण ऐसे करारे हो रहे हैं कि नवीन चालों को होटलों में भागकर बचने के सिवा और कोई जगह ख़ाली नहीं बची है। जिस समय पंडित चादलख़ाँ की बम्बनई की गढ़ी बिलकुल मियाँ-समाज की रीतियों ने फ़तह कर ली थी, उस समय भी घर की देवियों ने ही पुरानी चाल को कुमक पहुँचाई थी। उस साहस का प्रतिफल यह निकला कि मुसलमानी का प्रभाव महाराज के ज़नाने में कुछ भी नहीं फैलने पाया। एक दिन का वृत्तांत है कि पंडितख़ाँ को भोजन करने में देर हो गई। पेट में भूख की कृपा से चूहे कूदने लगे। जिस काम में फँसे थे, वह बहुत ज़रूरी था, और ज़रूरत

की माया से क्षुधा का वेग बढ़ाना ही पड़ा। बड़ी कठिनता से पंडित को अवकाश मिला, और वह जानवर की तरह का स्नान करके फुरती से रसोईंघर पर पहुँचा। भूख का ज़ोर रोटी के सामने जाकर और बढ़ा, मुँह से लार टपकने लगी, और बड़ी व्यग्रता से वह हाथ से रोटी तोड़ने ही को था कि घर की देवी और रसोईंघर की स्वामिनी ने कहा—"ख़बरदार, खाना नहीं।" भूखा पंडित घबराकर बोला--"हैं-हैं, यह क्या कहा? बड़ी भूख लगी है।" यह कहकर वह दाल-रोटी की लपेट में लगा ही था कि श्रीमती ने फिर रोका—"देखो, खाना नहीं, ज़रा ठहर जाओ।" पंडितराज बोले—"अरे भूख के मारे कलेजा मुँह को आ रहा है। रोकती क्यों हो?" इसका कुछ विचार न करके पंडिताइन ने कहा—"आज बाबा के नाम पानी का घड़ा, मिठाई, पैसा आदि दान करके देना है। संकल्प कर दो, तब खाओ।" यह सुनकर पंडित बड़ा झुँझला उठा। वह पानी देने को "बेकार, बेहूदा, नाशाइस्ता" आदि सब कुछ कह गया। पर खाने पर हाथ चलाने की हिम्मत नहीं पड़ी। अंत में पंडित ने पाधा को बुला भेजा। वह नहीं मिले। तब दूसरा मुसलमानी विद्या-विशारद पंडित, जो नाते में उनका भांजा भी लगता था, आ गया, और इस प्रकार संकल्प कराने लगा—"आज मासोत्तमे मासे रमज़ानमासे सफ़ेद माहताब के रास जुते यानी सुक्ल पच्छे तिथी मालूम रोज़ जुम्मा में पं० बादलख़ाँ का दिया यक फल्लूस व मेवात के साथ आबे-हयात पीर पैगंबर से साद शहीद ग़ाज़ी मियाँ साथ रहनेवाले मुतवफ़्फ़ी पं० इनामबख़्श को रसीदः हों।" इस संकल्प को सुनके सब स्त्रियाँ हँसने लगीं; पर ज्यों ही कहा गया "पानी छोड़ दो", पं० बादलख़ाँ ने रोटियों का सपाटा लगाना आरंभ कर दिया। थोड़ी देर में वह सब

रोटियों की तह-की-तह पेट में उतार गया, और पानी पीकर बोला—"औरतों के आगे किसी की नहीं चल सकती।"

इति पंचपुराणे प्रथमस्कंधे सप्तपंचाशत्तमोऽध्यायः

अष्टपंचाशत्तम अध्याय

साक्षात् पशु

पुरानी पुस्तकों में बातचीत करनेवाले पशुओं का वर्णन सुनकर लोग नाक-भौं सिकोड़ने लगते हैं, और ऐसे गर्दन हिलाकर उसको अंगीकार करते हैं, मानो किसी को मुँह चिढ़ा रहे हों। यह बात समझ में आती भी नहीं कि अगले ज़माने में पशु किस प्रकार मनुष्य की बोली बोल लेते होंगे। भाषा का विचार से संबंध है। मनुष्य का अर्थ है विचार करनेवाला। पशुओं में सोचने की शक्ति नहीं है, तब उनका बोलना भी असंभव है। यही कारण है कि पशुओं के वार्तालाप पर लोग मुँह बिचकाकर उसको कहानी या कल्पना कह देते हैं। यह तत्त्व पुराने लोग जानते थे। फिर भी जो उन्होंने बोलनेवाले पशुओं के दृष्टांत दिए हैं, उससे जान पड़ता है कि पशुओं से उनका तात्पर्य ऐसे लोगों से होगा, जो रात-दिन पशुओं के समान काम करते हैं, और मनुष्यता का अंश उनमें ऐसा ही बाक़ी रह गया है, जैसा कुलटा में सतीत्व का। इस सिद्धांत के पक्ष में एक अच्छा उदाहरण हाथ आया है, जो कहने तथा सुनने योग्य है। लाला गिरगिटपरसाद एक धनी कहलाते हैं। इनके पास थोड़ी-सी दुकान-मकान की संपत्ति होने के सिवा कई भाषाओं में हस्ताक्षर कर देने की शक्ति भी है, और उसी के आधार पर वह पंडितों, मुंशियों और मिस्टरों का तीर्थ या क़िबलेगाह बनने का गुमान

रखते हैं। ऐसी नाटक लीला-खेल वेठते हैं, जो हँसी को भी हँसी का आधार बना देती है। उनका सिद्धांत यह है कि स्वार्थ को इष्टदेव के समान जानना, और इसी तत्त्व पर वह सबको वेईमान समझते ही नहीं, वरन् गंगा का लोटा लेकर क़सम खाने को तैयार रहते हैं। उनके गुणों की भक्तमाल बड़ी लंबी है, और उसका कथन करने में अधिक स्थान की आवश्यकता है। एक दिन गिरगिटपरसादजी अपनी गद्दी पर बैठे धुन में भरे लियाक़त का पनाला वहा रहे थे। पर-निंदा और स्वार्थ की बातों की दुर्गंध से लाला का सारा कमरा महक रहा था। पहले पुरानी चाल के पंडितों की पूजा लोभ से भरी बताई गई। फिर राजनीतिकों की पगिया नापने की बतकही हुई। इसके बाद नवीनों की शिक्षा पर दोष लगाया गया, और ख़ुशामदी-मंडली में यह राय तय पाई कि अगर कोई ईमानदार है, तो गिरगिट, समझदार है तो गिरगिट। मतलब यह कि गिरगिट की तारीफ़ में एक ख़ासा ख़ुशामद-नामा या माहात्म्य बन गया। ऐसी अवस्था में अहंकार का पारा ऊँचा होना स्वाभाविक ही था। उसी गरमी में बैठा हुआ गिरगिट क्या देखता है कि दो आदमी सामने से आ रहे हैं। उनकी चाल-ढाल और स्वरूप में भलमंसी टपक रही है। वे आकर बैठे, और बंदगी-बंदगी के शिष्टाचार के बाद एक ने लाला से कहा—"हमने आपकी बड़ी तारीफ़ सुनी है।" इस पर लाला गिरगिट ने कथन किया—"जनाब, तारीफ़ मेरी नहीं, मेरे रुपए की है। अगर मेरे पास माल न होता, तो क्यों कोई मेरे घर आता ?" तब एक ने जवाब दिया—"नहीं, नहीं, लाला साहब, तारीफ़ तो आदमी की होती है।"

अब गिरगिटपरसादजी बोले—"आदमी गया भाड़ में! मेरे दादा जनम-भर गठड़ी ढोया किए। बाप भी नौकरी से पेट पालते

रहे। उनके पास कोई नहीं आता था। पर मुझको मालदार जानकर कुत्ते की तरह दौड़-दौड़कर सलामें करने आते हैं।" यह सुनकर दोनों बड़े संकोच में पड़ गए। वे कभी लाला के पास आने पर पछताते, कभी उसके स्वभाव की ओर देखकर दुखी होते थे। इस अवस्था में उनको बहुत देर तक नहीं रहना पड़ा; क्योंकि थोड़ी देर में वह बोला—"अरे साहब, आप ही सोचिए। आप लोग जो मेरे पास आए, तो किसी मतलब ही से आए होंगे। सुनिए, जहाँ तक मेरा तजरुबा है, मैंने ऐसा कोई देखा ही नहीं, जो ख़ुदग़र्ज़ी के बिना कुछ काम करे।"

यह सुनकर उनमें से एक बोला—"महाशय, ऐसा न कहिए। अब भी लाखों ऐसे पड़े हैं, जो परोपकार को अपना धर्म मानते हैं।" लाला गिरगिट तब तनकर बैठ गए, और परोपकारियों को गाली देकर अंड-बंड बकने लगे। उनकी इस चाल का उन्होंने विरोध किया, और बड़े-बड़े दानियों के नाम लिए। पर गिरगिट ने प्रत्येक की निंदा करके अपना गला सुजा डाला। किसी को उसने ख़िताब का ख़ुशामदी, किसी को चोर, और किसी को और कुछ कहकर अपनी योग्यता का नमूना दिखाना शुरू कर दिया। इस प्रकार की कड़ाकड़ी में उन दोनों को भी कुछ जोश चढ़ आया, और पूरी कहा-सुनी होने लगी। लाला गिरगिटपरसाद को अब और भी तेहा चढ़ आया। वह यही कहे जाता था कि स्वार्थ से ख़ाली कोई काम हो ही नहीं सकता। दूसरी तरफ़ से इसका खंडन होता था। थोड़ी देर बाद मारे तेहे के लाला का मुँह लाल-लाल हनूमान की मूर्ति-सा हो गया, और उसने अपने गाल पीट डाले। फिर छाती पीटने लगा। रोने भी लगा। अंत में अपने सिर फोड़ने की धमकी देने को उपस्थित हुआ। उसने मारे क्रोध के अपने बदन में कई जगह दाँतों से काट लिया, कपड़े फाड़ डाले। यह देखकर जो दोनों

मिलने आए थे, वे घबराकर भागे। लाला की इस चाल की धूम नगर में फैल गई। एक कवि ने उसका चित्र भविष्य की संतति के जानने के लिये यों खींचा है—

गिरगिट लाला बड़े सिपाही;
बुद्धिमान फिर पूरे बाही।
बात-बात में झगड़ा करते;
छिन में जीते, छिन में मरते।
उनका यह सच्चा आचार;
पशु-समान रहता व्यवहार।

इति पंचपुराणे प्रथमस्कंधे अष्टपंचाशत्तमोऽध्यायः

एकोनषष्टि अध्याय

जोरू-विभाग

सामाजिक गवर्नमेंट में जोरू-विभाग एक बड़ा भारी महकमा कहा जाना चाहिए। ब्याह-शादी से लेकर साधारण रसोईंघर का प्रबंध इसी 'डिपार्टमेंट' के अधीन है। सरकारी शांति का सब कार्य जिस प्रकार पुलिस के विभाग के अंतर्गत होता रहता है, उससे भी बढ़कर समाज की मर्यादा की रक्षा जोरू-विभाग के अधिकार में हो रही है। यदि यह न होता, तो रिफ़ार्मरों के परिवर्तनों की सेना ने समाज को कभी का और-का-और कर दिया होता। सरकारी थाने बस्ती में आवश्यकतानुसार नियत किए गए हैं; पर जोरू-विभाग की तरफ़ से प्रत्येक घर में एक थाना है, और उसकी इंस्पेक्टरी पर एक-एक श्रीमती नियुक्त हैं, जो बड़े-बड़े इंस्पेक्टरों और हाकिमों पर भी हुकूमत किया करती हैं। उस पर तुर्रा यह कि पुलिस-इंस्पेक्टरों को तो उच्च कर्मचारियों का भय भी

लगा रहता है, पर जोरू-विभाग की इंस्पेक्ट्रेस मनमानी हुकूमत करती हैं, और उनका कोई हिसाब पूछनेवाला भी नहीं है । न इनके यहाँ रिश्वत ही चलती है । जो कुछ कहा जाय, उस पर चले जाओ ; टिल-पों की नहीं कि बस, दिन-रात बैठने-उठने में कठिनता से काम पड़ने की सूरत आकर सूरत को बदसूरत बना देने में कसर नहीं रक्खेंगी । सरकारी पुलीस के लोगों में कोई-कोई कड़े मिज़ाज के महात्मा जिस प्रकार अपने हल्क़े में नादिरशाही कर बैठते हैं, उसी प्रकार क्या, उससे कहीं बढ़कर जोरू-विभाग की वे अधिकारिणियाँ ज़ोर दिखाती हैं, जिनका विवाह बूढ़े बाबा से होता है । लोग तो कहते हैं, बूढ़े से शादी करना लड़की को कूप में ढकेलने के बराबर है । इस हुकूमत को देखकर यह कहने को जी चाहता है कि बूढ़े से विवाह करना और चाहे किसी अंश में बुरा हो, पर हुकूमत के विचार से तो वह लड़की को नादिरशाह के सिंहासन पर बैठाने से कम नहीं है । पुराने मोहाल में एक बूढ़े लाला रहते हैं । इनकी उम्र का तो ठीक हाल नहीं मालूम, किंतु स्वरूप से पाठक अनुमान लगा सकते हैं, तो लगा लें । मूछें और दाढ़ी सब सुरागाय की दुम, सिर में बालों का भी वही हाल, और बीच में अमीरी के चिह्न खल्वाट का बड़ा गोल-गोल बालों की खेती का ऊसर-भाग बन रहा है । मुँह पर झिलरी फैलती हुई कनपटी तक पहुँची है, और कान भी कुछ सिकुड़े हुए ऐसे जान पड़ते हैं, मानो उमेठे जाने का भय खा रहे हैं । गर्दन कछुए की तरह हिलती हुई, या तो संसार-सागर में लहरें लेती जान पड़ती है, या लोगों को यह शिक्षा दे रही है कि संसार में लिप्त न हो, गर्दन हिलने का ज़माना धीरे-धीरे आता जाता है । ख़ैर, इससे अवस्था का अंदाज़ हो जाना कुछ कठिन नहीं है । ऐसे बूढ़े बाबा से एक षोडशी कन्या से पाणिग्रहण का नाता जोड़ा गया था । कुछ दिन तक वह नवनि

चंद्रमा के समान बढ़ती गई, और लाला की प्रतिभा अस्त होने-वाले सर्वग्रासी सूर्य की चाल ग्रहण करने लगी। उसकी पहले दत्तक पुत्र की-सी ख़ातिर हुई, और प्रत्येक हठ की पूर्ति होने के कारण वह कई बातों में दूसरी नूरजहाँ बेगम हो गई। अब जो वह कहती है, सो होता है। वृद्ध लाला की घर में दाल बिलकुल नहीं गलने पाती। जो कुछ धर्मपत्नी कहती है, वही करना पड़ता है। लाला के पूर्वपुरुष एक ठाकुरद्वारा निर्माण कर गए थे। चिरकाल से उसमें पूजा-पाठ और सदाव्रत जारी था। अब उसकी पत्नी ने वह सब बंद करवा दिया। भजन की जगह देवता के सामने अब ग़ज़ल और इश्क़बाज़ी के भाव से भरे पद ही गाए जाते हैं। हाल में ठाकुरजी का जन्मोत्सव हुआ। उस दिन मंदिर में बड़ी धूम-धाम मची। महाजनों के छोकरों की स्वाभाविक नानी एक वेश्या गाने के लिये बुलाई गई। हिंदुओं के समाज में उपदेश की चाल उठ गई है। सबकी शिक्षा गाने द्वारा ग्रहण करने की परिपाटी समाज में चली है। लोग बड़े भाव से गानेवाली के हाव-भाव को देखने लगे। एक साहब बोले—"यह बाई साहबा क्या हैं, बस, ग़नीमत हैं। प्रत्येक एकादशी का व्रत करती हैं, कथा सुनती हैं, ठाकुरजी की पूजा इनके घर होती है, और वेदांत के पद गाकर प्रेम में निमग्न हो जाती हैं।" उस वेश्या की इतनी तारीफ़ की गई, मानो आचारी उपदेश, गुणवत्ता-रसवत्ता, जो कुछ थी, वह उसी में थी। मज़ा यह था कि इन प्रशंसा की बातों को अनेक लोग ठीक समझने लगे। पुराणों में कलि के अवतार का पहले वर्णन हो चुका है, नहीं तो ये वेश्या-भक्त बाईजी को किसी देवता का अवतार कहने में कसर न रखते। इस अवसर में बूढ़े लाला मंदिर में लकड़ी टेकते पधारे, और ऊपर उनकी गृहस्वामिनी भी शृंगार करके जा डटीं। ठाकुरजी के सामने इश्क़बाज़ी का पारायण होने लगा। कोने में दो

आदमी कुछ विलक्षण चाल के दिखाई पड़े। जब गान में पद पर लोग वाह-वाह करते, तब ये अपनी आलोचना करके और ही रंग जमा देते। इश्क़बाज़ी की रिपोर्ट यों आई है—वेश्या ने कई लोगों की फ़र्माइश से एक ग़ज़ल गाई, जिसका एक पद यह था—

बराहे इश्क़ मुझे रंजोग़म उठाने दो;
हसरतें दिल की मेरे कुछ तो निकल जाने दो।

इस गाने पर बड़ी वाह-वाह मची, और इश्क़ में 'रंजोग़म' तथा बाज़ारू बीबियों की ज़ेरपाई उठाने के प्रेमी आनंद में मग्न हो गए। आलोचकों ने कहा—हज़ार वर्ष से विदेशियों की जूतियाँ खाने पर भी क्या जी नहीं भरा, जो अभी क्लेश को पाने की "हसरत" अर्थात् अभिलाषा पूरी नहीं हुई? फिर यह गाया गया—

हमारी उनकी शिकायत के बन गए दफ़्तर;
एकदिल होके झगड़ते रहे दीवाने दो।

प्रेमियों के झगड़े का दफ़्तर सुनकर नवयुवक गद्गद हो गए। एकमत होने पर भी प्रेमियों का झगड़ना स्वाभाविक दिखाकर कवि ने क्या भाव दिखाया है। इस पर वाह-वाह की वर्षा होने लगी। पर आलोचकों ने कहा—हिंदुओं की किसी बात में एका नहीं। प्रेम में जूती-पैज़ार ज़रूर ही होती थी। एकदिल होके भी झगड़े, तो डूब मरने का दिन है। मालूम पड़ा, ठाकुरजी इससे प्रसन्न नहीं हुए; क्योंकि तीसरा पद यह सुनने में आया—

सौगुने क़त्लसिनी के नाज़ सितमगर, होंगे;
बहार हुस्न के जलवे की ज़रा आने दो।

यह शेर इश्क़ के उपासकों के दिल पर तीर का काम कर गया। वे सुंदरता के वसंत के आगमन का भाव सुनकर ओ-हो-हो

करने लगे। पर आलोचक महात्मा ने कहा—बाल्य-विवाह ने सब सत्यानास कर दिया। इन छोकरों को सुंदरता का वसंत देखने को मयस्सर नहीं हुआ। दूध के दाँत नहीं टूटे थे, तब शादी की लादी इन पर लादी गई थी। फिर क्यों न ये इन भावों पर प्राण देने को तत्पर हो जायँ?

ठाकुरजी के सामने इश्क़ की ग़ज़लें गाने का कुछ दोष लोगों ने नहीं रक्खा है। अब यह लोक-मूढ़ता की एक चाल-सी बन गई है। अब जो इसे बुरा कहें, वे दयानंदी या नास्तिक का ख़िताब पाने के अधिकारी बन जाते हैं। जब ऐसा है, तब भगवान् के सामने व्यभिचार-माहात्म्य गाना क्योंकर बुरा गिना जा सकता था? इस परंपरा के अनुसार ग़ज़ल, ठुमरी, टप्पे, सबका गाना ख़ासा सदाचार समझा जाना चाहिए था, और वह समझा भी वैसा ही गया। बूढ़े लाला के दिल पर इस प्रेम-पारायण का प्रभाव कुछ ज़रूर पड़ा; क्योंकि उसने दूसरी ग़ज़ल सुनने की इच्छा फिर प्रकट की, और कलियुगी शौक़ीनों का सामवेद, अर्थात् ऋचा, ग़ज़ल फिर गाई गई। लाला की सह-धर्मिणी बालिका ने ग़ज़ल पर आनंद प्रकट किया था। संभव है, इसी कारण बूढ़े पति ने आज्ञा-पालन के ढंग की कार्यवाही की हो। इसकी विवेचना की कुछ ज़रूरत नहीं। जो हो, इश्क़ की दूसरी गीतिका यों छेड़ी गई—

कशिशे-दिल से खिंचे हरदम हम उनको याद करते हैं;
मगर वह जिससे मिलते हैं, मेरी फ़र्याद करते हैं।
हसीनों से वफ़ादारी का होना सख़्त मुश्किल है;
फ़िदा जो इन पै होता है, उसे वर्बाद करते हैं।
किया वादा था मिलने का, मगर अब रुख़ नहीं करते;
लगा है जी, इधर कब देखिए इर्शाद करते हैं।

ख़फ़ा होकर यह कहते हैं—"बुलाता कौन है तुमको ?"
ग़ज़ब है, छीनकर दिल अब मुझे आज़ाद करते हैं।

यह कहने की आवश्यकता नहीं कि ठाकुर के मंदिर के भक्त इस गीत से कृतार्थ हो गए। पर ठाकुरजी के मन की तो वही जानते होंगे। इन भावों को सुनकर यह जान पड़ा कि बाज़ारू बीबियों का प्रेम या इश्क़ शीघ्र मूर्ति धारण करके सामने आ खड़ा हुआ। यह स्पष्ट हो गया कि जोरू-विभाग का महकमा बड़ा प्रभावशाली है। उसकी कृपा से "गोर में पैर लटकाए हुए" भी संजीवनी खाकर युवावस्था के रंग में रँग जाते हैं।

इस प्रकार ता-ना-री-री-माहात्म्य चिरकाल तक होता रहा, और शयन का समय आया ; किंतु ऊपर से गृहस्वामिनी की आज्ञा हुई कि गाना बंद न किया जाय। लाचार फिर अलाप होने लगा। और बड़ी देर तक मँजीरों और तबलों पर वार होते रहे। इस अवसर में बूढ़ा लाला झूम-झूमकर निद्रा के अधिकार में आने लगा। कुछ देर तक तो उसने जागने की शक्ति से काम लिया, पर अंत में निद्रा के आक्रमण से हार खानी पड़ी, और वह बिलकुल आत्माधिकार स्थापित नहीं रख सका। उसने तकिए का सहारा लिया, और थोड़ी देर के बाद नींद की अमलदारी की प्रजा होकर ख़र्राटे लेने लगा। यह देखकर गाना बंद हो गया, और ठाकुरजी के मंदिर की इश्क़-मंडली सब धीरे-धीरे विसर्जन हो गई। अभी तक लाला पड़ा ख़र्राटे लेता रहा। नौकरों ने उसको जगाया, और वह लठिया टेकता कोठे पर पहुँचा। वहाँ श्रीमती गृहस्वामिनी ने बड़ी 'नाराज़गी' का खाता खोलकर खरी-खोटी का लेन-देन आरंभ किया। लाला पर जलसे को बिगाड़ने का 'चार्ज' या दोष लगाया गया। उस पर सो जाने और कर्तव्य से हटने का कलंक थोपा गया। इन सबके उत्तर में

लाला "हैं-हैं" करके अपना अपराध क्षमा कराने का उद्योग करता रहा। "सोने दे भाई क़ुसूर हुआ" कई बार गिड़गिड़ाकर उसने कहा ; पर न्याय करनेवाले को, लोग कहते हैं, दया नहीं आती। श्रीमती ने फ़र्माया—"क्या मौत आ गई थी ? क्या वह इसी वक़्त आकर रंग में भंग करने को थी ? और जो मर गया था, तो फिर जी क्यों उठा ?" यह सुनकर बूढ़े की सूखी चमड़ी में भी ख़ून दौड़ आया, और वह तेहे में आकर बोला—"क्या तेरी मौत आई है ? मार खाने को जी चाहता है क्या ?" यह सुनकर ललना सर्पिणी के समान फुंकार कर खड़ी हो गई। उसने गालियों का सूदी और दरसूदी जवाब देना आरंभ कर दिया। बातें बड़ी कड़ी कह डालीं। "दाढ़ी-जला" कहा, "मरी-पीटे" की उपाधि दी, "बेलज्ज" बनाया, और "हीजड़ा-ज़नख़ा" तक कह डाला। जब गालियों की गोलियों की बाढ़ बड़ी तेज़ी पकड़ने लगी, तब लाला को भी तेहे का भूत आ गया, और उसने पानी पीने का गिलास उठाकर बीबी साहबा की तरफ़ दे पटका। पानी चारों तरफ़ फैल गया, और गिलास श्रीमती के भुजदंड पर जाकर लगा। यह ग़ज़ब हो गया। घर की स्वामिनी ने एक धक्का बूढ़े को दिया, और वह धड़ाम से चारपाई पर गिरा। उसकी खोपड़ी पट्टी पर पड़ी, और सिर में सन्नाटे का प्रभाव आ गया। वह चिल्लाया, और ऐसे ज़ोर से चिल्लाया कि घर के नौकर-चाकर "क्या है ? क्या है ?" करके नीचे से चौंक उठे। मुँह लगी दाई ऊपर पहुँची, और उसने लाला और ललाइन, दोनों को समझाकर यह ठाकुर-सेवा का अध्याय समाप्त किया। ख़ैर, किसी तरह रात बीती, और सवेरे तड़के उठकर लाला ने अपनी लेन-देन की कोठी को प्रस्थान किया। जाते ही बीबी साहबा की फ़र्माइशों की बाढ़ चलने लगी, और वह बिल्ली बनकर चुपचाप सब आज्ञा सहन करता रहा। इससे यह

ज़रूर सिद्ध हो गया कि संसार में जोरू-डिपार्टमेंट में रहकर काम करना और यमराज की यातना भोगना, दोनों एक ही चीज़ हैं।

इति पंचपुराणे प्रथमस्कंधे एकोनषष्टितमोऽध्यायः

षष्टितम अध्याय

नीम हकीम

पं० जोखिम कविराज का भी दम ग़नीमत है। इनके भवन में बड़ी भीड़ रहती है। सर्वसाधारण में यह आजकल के धन्वंतरि समझे जाते हैं। इनकी दवा से चाहे जैसी जोखिम हो जाय, पर इनकी नामवरी में कुछ जोखिम नहीं पहुँच सकती। पंडित के यहाँ एक पुश्त क्या, कई पुश्तों से 'वैदगी' का रोज़गार चला आता है, और अब इस समय बिना पुस्तक पढ़े ही इनके घर के लोग वैद्यराज हो जाया करते हैं। इनकी गोलियों ने कई बार गोलियों के काम किए। चूर्णों ने बड़े-बड़े बलिष्ठ चूर्ण कर डाले। अर्क़ ने कितनों की जानें ग़र्क़ कर डालीं। सच पूछिए, तो यह भी कुछ कम काम नहीं हुआ। जब संसार में भूख के मारे लोग मर रहे हों, तो उनका छुटकारा कर देना संसार-तारन का ख़िताब ज़रूर ही देने-वाला होना चाहिए। पं० जोखिमजी यह कहते भी हैं कि मरने और मारने का झगड़ा मूर्ख लोग करते हैं। भगवान् ने भी गीता में कहा है कि प्राण आने-जाने का झगड़ा पंडित लोग नहीं करते। एक बात पंडित कविराज में ज़रूर है। यह डॉक्टरों की तरह नुस्ख़ों की लूट-मार नहीं करते। न यह व्यर्थ दवा की बोतलों के बम चलाकर ग़रीबों की आमदनी के क़िले तोड़ने का पुण्य या पाप संचय करते हैं। दवा बिना दाम के दे देने को न तो पाप गिनते, और न दाम लेने की फ़िलासफ़ी छाँटकर वैद्यक को डॉक्टरी

की सगी बहन बनाने की युक्ति के टट्टू दौड़ाते हैं। इसी से यह सर्व-साधारण में खूब माने जाते हैं, और दुअन्नी-चवन्नी से लेकर गिन्नी तक का धारा-प्रवाह इनके घर लगा रहता है। और यह ऐसी भारी रक़म को कभी कभी पहुँच जाता है कि बड़े-बड़े डॉक्टरों की दाढ़ से लार की नदी बहा देने के लिये यथेष्ट होता है। संसार की यह चाल है कि एक रोगी होता, तो १० बिना रोग के नाड़ी आगे कर बैठनेवाले आ जाते हैं। वे दवा के बिना भी चंगे हो जा सकते थे, तो एक-आध गोली में ठीक हो जाना कोई आश्चर्य नहीं हो सकता। ऐसे ही लोग वैद्यों और डॉक्टरों की नामवरी को पद्दू का पदमसिंह बना डालने में ज़रा कसर नहीं करते। एक रोगी जोखिमजी के पास आया। महाराज ने थोड़ी देर तक उसकी नाड़िका पकड़ी, और कहा—"गरमी है।" इस पर वह रोगी पैरों पर गिर पड़ा। धन्य-धन्य करके तारीफ़ के पुल बाँधने लगा। उसने कहा—"ऐसा नाड़ी का ज्ञाता कोई देखने में नहीं आया।" यह सुनकर जोखिमजी प्रशंसा की गैस से फूलकर गुब्बारा हो गए। बात यह थी कि वैद्यजी ने सरदी-गरमी की 'गरमी' कही थी, और रोगी को उपदंशवाली गरमी का आक्रमण था। यहाँ पर पंडितजी के कथन में पूरा श्लेषालंकार हो गया, और "नोन लगे न फिटकरी, रंग चोखा ही आवे"-वाली कहावत के प्रत्यक्ष दर्शन हो गए। इस 'गरमी' से महाराज की मुट्ठी भी गरम हो गई, और आँख का अंधा, गाँठ का पूरा ग्राहक भी हाथ लगा। दवा होने लगी। आराम काहे को होना था? पहले चुटपुट चली। फिर पेटेंट दवाओं का धावा हुआ। इसके बाद इधर-उधर की जड़ी-बूटी के शस्त्र चलाए गए। पर महाजनों की उपास्य देवी वेश्या का प्रसाद काहे को अपना प्रभाव कम करनेवाला था? "मरज़ बढ़ता गया ज्यों-ज्यों दवा की।" जान पड़ा, कुछ ही

दिनों में मजनूँ की तसवीर बनकर रोगी क़ब्रस्तान को जानेवाली रेल का यात्री ज़रूर बनेगा। जोखिमजी को जान की जोखिम का ज़रा डर नहीं था। उन्होंने पहले मुँह आने की दवा दी। फिर जमालगोटे की गोली देकर अपनी अनुभव-शक्ति से काम लिया। रोगी ने गोली खाकर ज्यों ही घर को प्रस्थान किया कि मार्ग में उसके पेट में ऐंठन होने लगी। घर में जाते ही वह लोटा लेकर पाख़ानाश्रम में पहुँचा। पेट में मरोड़ होकर तड़ाक-फड़ाक, तुर-तुर, फुर-फुर की इतनी आवाज़ें आईं कि शबे-बरात का पर्व-सा होने लगा। रात-भर बेचारे को इसी तरह करते बीत गया। सबेरे सूखे नर-पंजर की उपमा होकर ग़रीब रोगी बिस्तर पर लोट गया। घर-भर में हाहाकार मच गया। औरतें रोने की वीरता दिखाने लगीं। अड़ोस-पड़ोस के लोग आकर जमा हो गए। बड़ी भीड़ लग गई। थोड़ी देर के बाद रोगी ने आँखें खोलीं। धीरे से बताया कि जोखिम हकीम की गोली से यह अवस्था हुई है।

तुरंत और हकीम लाया गया। कई डॉक्टर भी आए। राम-राम करके ग़रीब के प्राण बचे। किसी ने ठीक कहा है—

"नीम हकीम ख़तरे जान ;
नीम मुल्ला ख़तरे ईमान।"

इति पंचपुराणे प्रथमस्कंधे षष्टितमोऽध्यायः

एकषष्टि अध्याय

बहूजी का क़ानून

सभ्य समाज में यह नियम है कि जब कोई कुछ अच्छा कार्य करे, तो उसका अभिवादन 'थैंक्स' शब्द से करना चाहिए, जिसका यह मतलब है कि "आपका धन्यवाद करता हूँ" या

"आपको धन्यवाद है।" यह प्रथा क्योंकर सभ्य समाज में चली, इसका इतिहास प्राचीन अंधकार में है; किंतु अनुमान से जाना जाता है कि बड़े पुराने समय में, जब मनुष्य जंगलों में रहा करते थे, तो वे एक दूसरे से लड़ते ज़रूर ही होंगे। जानवरों की लड़ाई में अब भी देखा जाता है कि निबल सबल के सामने हार मानकर तथा मुँह खोलकर दाँत निकाल देता है। इस पर प्रायः बलिष्ट निर्बल को नहीं मारता। इसी प्रकार मनुष्यों में भी जबर को देखकर दबने की प्रथा पुराने समय में चली होगी। होते-होते बलिष्ट के सामने दबने के सिवा उपकारी के आगे दीनता प्रकाशित करने की चाल निकल आई हो, और "थैंक्स" कहकर अपनी हार या कृतज्ञता की सूचना देने की प्रथा चल पड़ी हो, तो आश्चर्य नहीं। अब यह 'थैंक्स' कहना बिलकुल दिखौआ हो गया है, और कहने और सुननेवाले दोनों में कोई भी इसके महत्त्व पर ध्यान नहीं देता।

इतना तो ज़रूर होता है कि "थैंक्स" कह देने से सुननेवालों को नम्रता अवश्य सूचित होती है, और इसी का सगा भाई हिंदी-भाषा में "क्षमा कीजिएगा" है, जो बड़े-बड़े अपराधों को माफ़ करा देने के लिये यथेष्ट होता है। यही वर्तमान सभ्य संसार की रीति है। किंतु एक ऐसा विभाग है, या यों कहिए कि राज्य है, जहाँ के क़ानून में "थैंक्स" और "क्षमा" का काम बिलकुल बेकाम रहता है। सिवा दबकर गिड़गिड़ाने और आज्ञा को बजा लाने के वहाँ और किसी की वकालत चलती ही नहीं। उसका एक उपाख्यान यों है—

अक्खड़पुर के एक मोहाल में लाला खटपटराय रहा करते थे। यह पढ़े-लिखे कुछ नहीं थे। इनके पिता-पितामह कुछ माल भी नहीं छोड़ गए। न राय साहब ही ने कभी दमड़ी

पैदा की। इतना होने पर भी यह ख़ासे नवाबज़ादों की तरह सवारियों पर घूमते, नित्य तर माल खाते और मौजें उड़ाया करते थे। इनके साथ नौकर-चाकर "राय साहब-राय साहब" कहते सदा चला करते थे। इस सब 'ऐशो-इशरत' या शारीरिक सुख का निदान कारण एक 'बहूजी' थीं। बहूजी को अपने बाप का बड़ा माल मिला था, जो कई लाख कहा जाता था। श्रीमती के बाप के पास विपुल धन था। गाँव, बग़ीचे, मकानों और कोठियों की आमदनी से घर में छनाछन की आवाज़ नित्य आया करती थी। मुनीम और कारिंदे सब रुपए के कीड़े हो रहे थे। बहूजी का विवाह लाला खल्वाटराय से हुआ था, और उसी की बदौलत यह मसनद के गर्दभाचार्य हो रहे थे। लाला की अक़्ल और उक्त जानवर की अक़्ल में बड़ा भेद था। पर घर में यह वही समझे जाते थे। बहूजी यह विचारती थीं कि उनके टट्टू में राय साहब से बढ़कर समझ का भाग होगा, और सिवा सोहाग के क़ायम रखने के चिह्न के और उनसे कुछ सृष्टि का उपकार नहीं हो सकता। न लाला की कुछ इज़्ज़त का ही ख़याल किया जाता था। बात यह है कि व्यभिचार और कामदेव के उपासकों की प्रतिष्ठा कभी देखने में नहीं आई। वेश्याओं के पास चाहे जितना धन हो, किंतु उनकी प्रतिष्ठा कभी नहीं होती। इसी प्रकार जो बीबी की आमदनी के भरोसे रहते हैं, उनको भी प्रतिष्ठा से फ़ारख़ती ही रखनी पड़ती है—

> जो जोरू की रोटी पै रहते सदा;
> नहीं उनका दुनिया में होता असर।
> तवायफ़ हैं वह औरतों के ज़रूर;
> कहें लोग जोरू का उनको मजूर।

रहें जिस तरह बेल हो करके यर्थ ;
समझिए उन्हें उस तरीके का मर्द ।
सुनें डाँट बीबी की, हो जायँ ज़र्द ;
गिरें मुँह के बल खा रहे खूब गर्द ।

जोरू के गुलाम कहने का लोग बुरा तो मानते हैं, पर काम वह करते हैं, जो गुलाम के गुलाम करते हैं। इसका हिसाब कुछ कठिन नहीं है। जब ठहरौनी से विवाह किया जाय, तो विवाह क्या ठहरा, आदमी बेचना ठहरा। सारांश यह कि जिसने ठहरौनी देकर वर को लिया, उसने न्याय-रीति से तो अपनी लड़की के लिये एक गुलाम ही ख़रीदा। इस गणित की बात को चाहे कुलीन पूँछ के लोग मानें या न मानें, ठीक ही इसी तरह जो विवाह में दहेज आदि मिला हुआ स्त्री-धन खा गया, वह पति काहे को, पत्नी का क़र्ज़दार ही ठहरा। जब तक वह खाया माल अदा न कर दे, तब तक उसका जोरू-दास समझा जाना नेचर की अदालत से सिद्ध ही है। लाला खल्वाटराय ने ठहरौनी भी हज़म की, दहेज को भी पूरा डकार लिया, और अंत में बहू के घर जाकर रहे, तो इनको दासानुदास या ग़ुलाम-दर ग़ुलाम मानना समझदारों का काम हमेशा माना जायगा। जॉन स्टुअर्ट मिल ने लिखा है कि मनुष्यों ने स्त्रियों को कुछ काम नहीं दिया। सब काम अपने हाथ में रक्खे। वे बेचारी या तो बीवी होके रहें, या नाचने-गाने का पेशा करें। वह साहब भारतवर्ष में शायद नहीं आए, नहीं तो देखते कि यहाँ मर्दों को भी वे काम दिए गए हैं, जो औरतों के कार्यों से किसी अंश में कम नहीं। यहाँ मर्द हाथ ही नहीं मटकाते, वे बाज़ारू बीवियों के पाछे खड़े होकर सारंगी और तबले की ताल मिलाते और मजीरे की चिल-पों में सहारा देते हैं। कितने ही हीजड़ा-वृत्ति की सहायता से प्राण-रक्षा करते और उससे भी

ज़्यादा लोग दहेज, ठहरौनी और पत्नी की संपत्ति खाकर प्राण-यात्रा समाप्त करते हैं। जो लोग यहाँ की स्त्रियों की हीन दशा बतलाते हैं, वे विचार-हीन कहे जाने के योग्य हैं। स्त्रियों और पुरुषों का भेद चाहे किसी अन्य देश में ऐसा हो, तो हो, भारतवर्ष में नहीं है। यहाँ घर-घर क़ानून चलानेवाली यहूजी हैं, और उनके सामने किसी की चलती नहीं। लाला खल्वाटराय भी इसी प्रकार के क़ानून की जकड़ में जकड़े गए हैं। घुड़की खाते-खाते वह संसार के सुख से तृप्त हो गए हैं। राय साहब ने अपनी जीवनी उर्दू में लिखी है। उसका कुछ अंश पढ़ते ही बनता है। वह यों चलता है—

मेरी शादी एक अमीर की लड़की से हुई। मैं ग़रीब और वह अमीर। जोड़ी काहे को मिलनी थी? ख़ैर, शादी के बाद मेरी ऊपरी केंचली बिलकुल बदल गई। चेहरे पर चमक-दमक भी आ पहुँची। पोशाक ख़ासी रईसों की हो गई और मैं फूलकर कुप्पा हो गया। मैं कॉलेज से पढ़कर बिलकुल विलायती ख़यालात का पिंजड़ा निकला। यह होना चाहिए और वह होना चाहिए, ये ही बातें मेरे दिमाग़ में भरी हुई थीं; पर घर में आकर वे सब धीरे-धीरे निकल भागीं, और इतनी तालीम पाने के बाद भी मेरा दिमाग़ बिलकुल ढोल का पोल हो गया। पहली बात मियाँ की शीरनी दरपेश आई। मेरी बीवी के ख़ानदान में शहीद मर्द की शीरनी चढ़ती थी। यह हाल सुनकर मैंने बड़ा इख़्तिलाफ़ किया। शहीद वह कहा जाता है, जो हिंदुओं को मारने आवे और लड़कर मर जाय। ऐसों को शीरनी (मिठाई का प्रसाद) चढ़ाना अक़्ल के तो ख़िलाफ़ था ही, हिंदू-धर्म के भी ख़िलाफ़ था। ये सब वजूहात (कारण) मैंने कहे। पर बीबी साहबा पर एक का असर नहीं पड़ा। अब मुझे कुछ तेहा-सा आ गया। जब आदमी खुटियाँ और ख़ुशबू के हार लेकर 'शहीद' को चढ़ाने चला, तो मैंने सब छीन-

कर नाली में फेंक दिया। शाम को मैं हवा खाकर आया। क्या देखता हूँ, औरत बीमार पड़ी है। पेट के दर्द के मारे मछली की तरह तड़प रही है। मैं घबरा गया। हकीम आए, डॉक्टर बुलाए गए, वैद्य घसीटकर लाए गए। कुछ नहीं हुआ। रात के १२ बजे। अब मुझसे घर के एक नौकर ने सैयद की शीरनी चढ़ाने का इशारा किया। मैंने इनकार किया ही था कि घरवाली ने कहा—'यह न कहो, हमें मरने दो। इनकी ज़िद रहे, चाहे हमारी जान चली जाय।" यह सुनते ही मेरी सारी फ़िलासफ़ी भाग गई। मुझे पीर मनाने पर राज़ी होना पड़ा। एक बूढ़ी औरत मुझे शहीद की दरगाह पर ले गई। कहा—"सिजदा करो।" वह भी किया। बोली—"कान पकड़ो।" सोच-साचकर यह भी करना पड़ा। घर में आकर देखा कि बीबी चंगी हो गई। "यह नुस्ख़ा दोनों तरफ़ कारगर हुआ। बीबी आराम हो गई, और मेरे दिमाग़ का विलायतीपन भी छूट गया। हर जुमेरात को मेरी ड्यूटी हो गई कि शहीद मर्द की ख़िदमत में शीरनी, सेहरा, लोबान लेकर हाज़िर होऊँ। मुझे यह ख़ौफ़ हो गया है कि अगर कभी शहीद मर्द की इबादत को भूला, तो फिर कोई ऐसी ही आफ़त पेश आवेगी।" ऊपर लिखा उपाख्यान यह सूचित करता है कि बहूजी का क़ानून सर्वोपरि है, न उसकी अपील ही हो सकती है, न कोई दूसरा हाकिम उसमें हस्तक्षेप ही कर सकता है।

इति पंचपुराणे प्रथमस्कंधे एकषष्टितमोऽध्यायः

द्विषष्टितम अध्याय

झूठ का पुतला

जब सबमें कीड़े पड़ते हैं, तो सभ्यता में क्यों न पड़ें? उनका

न होना प्रकृतिदेवी के नियम के विरुद्ध ही समझा जायगा। ये कीड़े अनेक प्रकार के हैं। उनका पूरा हाल एक दिन की कथा में हो नहीं सकता। यदि केवल इन कीड़ों का नाम ही लिया जाय, तो ख़ासा एक सहस्रनाम बन सकता है, और जो समझदार श्रोता हों, तो उनकी बहुत-सी आफ़तों से मुक्ति भी हो सकती है। पर उतना समय हाथ में नहीं है। जो लिखा जाय, उसी पर संतोष करना चाहिए। कहते हैं, जब नवीन सभ्यता फैली, तो कलहदेवी भागकर विधाता के पास ज़रूर ही गई होंगी; क्योंकि देवता कष्ट पाने पर ब्रह्मा के थाने पर रिपोर्ट करने के अभ्यासी सदा से होते आते हैं। वह भी हाथ जोड़कर पहुँची होगी, और कहने लगी होगी—हे प्रजापति, संसार की सब जातियों में एका है। मेरे रहने के लिये कोई स्थान उपयुक्त नहीं है। केवल भारतवर्ष में घर-घर मेरा निवास है, पर वहाँ भी नवीन सभ्यता आ गई है। अब मैं क्या करूँ, और कहाँ जाऊँ? जान पड़ता है, विधाता ने बड़ी चिंता के बाद कलहदेवी को कचहरियों में रहने की जगह दी होगी। तभी घर की पूँजी बेचकर लोग कलह करते वहाँ दिखाई देते हैं। कहाँ तक कहा जाय, बाप-बेटा, ख़सम-जोरू, मा-बेटी, भाई-भाई तक वहाँ कलह-उपासना में प्रवृत्त होकर झूठ और सत्य से सर्वदा के लिये निवृत्त हो जाते हैं। पुराने पुराणों का दफ़्तर बंद हो गया, नहीं तो कृष्णद्वैपायन ने कचहरी-माहात्म्य लिखकर कलहदेवी के भक्तों को ज़रूर ही कृतार्थ किया होता। देश-भर में जितनी कचहरियाँ हैं, ये कलह भगवती के मंदिर हैं। हाकिम लोग उनके आचार्य या अधिष्ठाता हैं। वकील पुजारी की तरह हैं। मुख़्तार और मुंशी कलहदेवी के गण हैं। जिस प्रकार मंदिरों के बाहर फूल-हार और नैवेद्य बेचनेवाले बैठते हैं, उसी प्रकार वहाँ अर्ज़ीनवीस विराजते हैं। दलाल पंडों के नौकरों का काम देते हैं, और "आओ जजमान,

मारे धाट" की आवाज़ लगाने के समान काम करनेवाले कितने ही तरत बिछाए बैठे रहते हैं। मुद्दई, मुद्दालेह और गवाह इस तीर्थ के यात्री हैं। स्टांप का नैवेद्य चढ़ाया जाता है। भक्तों को डिगरियों का वरदान प्राप्त होता है। ऐसे ही एक कचहरी-तीर्थ में लाला पैरवीप्रसाद देखे जाते हैं। यह काले रंग से हटकर कुछ पैने रंग के अधिकारी हैं, जिससे यह विदित होता है कि ऐतिहासिक अनुमान करनेवाले किसी अंश में ठीक ज़रूर थे। जब आर्यों और अनार्यों का विवाह-संबंध हुआ होगा, तो काले और गोरे रंग से मिलकर जो रंग बनना चाहिए था, वह कुछ कम काला ज़रूर ही हुआ होगा। इसलिये काले और गोरों की संतान में लाला पैरवीप्रसाद को रखना अनुमान से ख़ाली नहीं रह सकता। ख़ैर, रंग के सिवा इनकी पोशाक में भी मिलावट का रंग चमकता है। बालों का फ़ैशन भी कुछ वैसा ही है। अचकन और पाजामा यदि मुसलमानी झलक मारता है, तो 'वालेवर' की गति हिंदूपन को सामने लाती है। बालों की पटेबाज़ी में यवनों की गंध है, तो कुंदा के बाल हिंदूपन की गई खेती की रही-सही पैदावार को दिखा देते हैं। इस तरह की मिलावट से बने लाला की बात-बात में मिलावट है। झूठ और सच इनके हिसाब एक ही पदार्थ के दो नाम हैं। इनका इष्टदेव है नगदनारायण, और उसी को पाने के लिये यह सिर धुना करते हैं। हाल की बात है कि एक दिहाती कचहरी में घूमता लाला पैरवीप्रसाद से मिला। बातचीत से जान पड़ा कि यह भी कलहदेवी के कचहरी-तीर्थ में अपना सर्वस्व खो चुका था। यह ज़ात का ठाकुर था, और कचहरी की तू-तू-मैं-मैं में ही उसका जन्म व्यतीत हो चला था। इन दोनों की बातचीत होने लगी। हाल खुला कि ठाकुर की अपने भाई से लड़ाई थी। अदालत में सब पूँजी का दिवाला निकल चुका था। यह डिगरी के

भय से अपनी बीवी के नाम संपत्ति लिखाने आया था। इसको कोई पहचानता नहीं था। बिना पहचान की गवाही दिए रजिस्ट्री हो नहीं सकती थी। वह ऐसे की तलाश में था, जो झूठ बोलकर पहचान करनेवाला गवाह बन जाय। चार आने पर पैरवीप्रसाद ने गवाह होना मंज़ूर कर लिया। उसके बाप-दादे का नाम, पता-ठिकाना सब कंठ कर लिया। जब अदालत में गए, तब लाला की गवाही नहीं मानी गई, और कहा गया—"किसी वकील को लाकर तसदीक़ कराओ।" ख़ैर, इसी प्रकार दो रुपए पर सत्य का गला हलाल करनेवाले वकील भी प्राप्त हो गए। बगड़्याज़ी की रजिस्ट्री हो गई। अब ठाकुर और पैरवीप्रसाद का दूसरा झगड़ा चला। यह चार आना-संग्राम कहा जाना चाहिए। लाला अपनी झूठ बोलने की फ़ीस माँगता था, और ठाकुर कहता था—"काम नहीं हुआ। काहे का दें?" इसी झगड़े में बड़ी भीड़ लग गई। टाँय-टाँय का भीषण संग्राम होने लगा। लाला ने कुछ गाली दी, और ठाकुर उसका सूद-दर-सूद देने लगा। पैरवीप्रसाद की तरफ़ से लोगों ने चार आने दिलाने की बड़ी पैरवी की, पर कुछ नहीं हुआ। अब लाला ने झिटका मारकर ठाकुर का अँगोछा छीन लिया, जिसमें कचहरी के काग़ज़ बँधे थे। ठाकुर को यह अँगोछा सर्वस्व छिनने के समान जान पड़ा। वह लाला के चिमट गया, और "धूँ-धूँ" करके मुष्टि-प्रहार करने लगा। झूठों में वीरता नहीं होती। पैरवी भागा; पर ठाकुर ने अचकन का कोना पकड़ लिया, "चर्र-चर्र" की ध्वनि से वह फटने लगी, और दूसरे हाथ से पाजामे का कपड़ा भी "चर्र-चर्र" करके अचकन का साथ देने लगा। टोपी कूदकर अलग जा गिरी, और पानी पिलानेवाले के टोल से टक्कर खाकर कीचड़ में जा कूदी। पैरवीप्रसाद के फ़ैशन-रूपी क़िले का बिलकुल पतन हो गया। पर काग़ज़ात का अँगोछा पैरवी ने नहीं छोड़ा। ठाकुर ने

उचककर लाला की गर्दन दबाई, और हाथ मरोड़कर अपनी कचहरी की कर्मपत्री ले ही तो ली। पर पैरवी फ़क़ीरी ठाट में खड़े होकर "देखो, देखो" कहकर लोगों को अपनी व्यथा सुनाने लगे। पर ठाकुर काहे को माननेवाला था। वह चला, और पैरवी ने फिर उसका कपड़ा पकड़ा। इतने में क्रोध से भरे ठाकुर ने एक घूँसा मारा। वह लाला की नाक पर पड़ा, और उसमें से ख़ून की धार बह निकली। ख़ून का नाम सुनकर लाल पगियावारे आ पहुँचे, और दोनों का चालान होने लगा। थाने पर गए। कचहरी में भेजे गए, और जुर्माना देकर दोनों घर को आए।

इस कथा से इतना मतलब अवश्य निकला कि पाप का फल कभी-कभी तुरंत मिल जाता है। लाला पैरवीप्रसाद और ठाकुर, दोनों को सत्य का गला घोटने का प्रत्यक्ष फल मिल गया। रहे केवल दो रुपए पर तसदीक़ करनेवाले वकील, उनको भी पाप-कर्म का फल मिल ही गया। सुना गया, घर जाते हुए उनकी गाड़ी का घोड़ा बिगड़ भागा, और वकील बाबू लद-से चूतड़ों के बल सड़क पर जा गिरे। कमर में चिक आ गई, और कई दिन तक "दैया-मैया, हाय-हूय" का मंत्र जपने और डॉक्टर देवता को ग्रह-दान देने के बाद काम पर फिर आने की अवस्था आई। यदि ईश्वर ने पाप-कर्म का फल प्रत्यक्ष दे देने की प्रथा प्रत्येक कर्म में इस प्रकार लगा दी होती, तो संसार में पाप के ठहरने को कोई जगह नहीं निकलती।

इति पंचपुराणे प्रथमस्कंधे द्विषष्टितमोऽध्यायः

त्रिषष्टितम अध्याय

खिलाफ़तदास की लीला

एक टूटी सड़क म्युनिसिपल कमिश्नरों की समझदारी का

नमूना बनकर रास्ता चलनेवालों को इतना आराम पहुँचा सकती है कि वह बिलकुल वेदांती बन दुनिया को हेच समझने लगे। इसी प्रकार का एक राज-पथ नगर के पश्चिम ओर है। यहाँ पर घूस की आराधना से ठेकेदारों ने बड़े-बड़े फल प्राप्त किए हैं। इसके प्रताप से नगर की सफ़ाई करनेवालों की समझ में ऐसी कुछ सफ़ाई आ गई कि वे कच्ची मिट्टी के सगे भाई-जैसे कंकड़ों से पिटी सड़क को पक्की सड़क कहने लगे हैं। फल यह निकला है कि इधर ठेकेदार अपना बिल लेकर बाहर निकला, और उधर सड़क में चूहों के बिलों के समान बिल अपने दर्शन देने लगे। दो-चार हफ़्तों में इन बिलों का कुटुंब बढ़ा, और दैवयोग से बादलों ने पानी की बौछार लगा दी। फिर क्या पूछना था, कंकड़ साहब तो मिट्टी का अवतार होकर इधर-उधर बह गए, और सड़क पहाड़ी की ऊँची-नीची घाटी की सूरत बनाकर चलनेवालों को सांसारिक परिवर्तन की शिक्षा का उपदेश देने लगी।

ऐसी सड़क में जब इक्के पर सवार होकर कोई आता है, तो ऊँची-नीची भूमि पर पहिए उछल-उछलकर ऐसा रंग दिखाते हैं कि सवारी पर बैठे लोग गेंद की तरह उछल पड़ते हैं, और यद्यपि मांस-मज्जा के तंतु से बँधे शरीर के टुकड़े खुल तो नहीं जाते, पर वह ढीला होकर अस्पताल में जाने लायक़ ज़रूर हो जाता है। इस प्रकार मार्ग की कृपा से ज़िंदगी से दुखी होकर ग़रीब लोग सड़क, म्युनिसिपलिटी और बस्ती से उदासीन हो बिलकुल उदासी बन जाते हैं। ऐसी जगह पर बाबू ख़िलाफ़तदास का झोपड़ा है। ख़िलाफ़तदास का पूर्व नाम कुछ और था। पर अब राजनीतिक भाव की आँधी के बाद यह इसी नाम से पुकारे जाते हैं। यह उन राजनीतिकों में हैं, जो "अंतःशाक्ता बहिःशैवाः"-वाली पालसी के ढंग का रंग रखते हैं। इसकी पद्धति यह है कि

हाकिमों के सामने तो प्रजा को बुरा बताना और प्रजा-पक्ष के सामने सरकार की बातों का आधार स्वार्थ पर क़ायम करना। इसमें दो स्वार्थ सिद्ध होते हैं। हाकिम इनको लायल्टी का पात्र समझने लगते हैं, और प्रजा-पक्षवाले भविष्य लीडर या लीडरों की दुम विचार-कर अच्छा कहने में संकोच नहीं करते।

इन दो बातों के सिद्ध होने पर जब मियाँ-मंडली में ख़िलाफ़त का खिलौना बना, तब यह उनको भी अपने वश में करने की गोटी बैठाने लगे। पहले इन्होंने उनका छुआ खाया, पानी पिया, और फिर हम-प्याला हम-नेवाला हुए। जब देखा, इससे भी टर्की के भक्त प्रसन्न नहीं हुए, तब इन्होंने बायकाट या बहिष्कार का स्वाँग निकाला। मुसलमानों में यह ख़बर फैलाई गई कि बाबू साहब ने अँगरेज़ी-भाषा का बायकाट कर दिया है। इसी दिन से इनका नाम ख़िलाफ़तदास हो गया।

आज ख़िलाफ़तदास की प्रतिज्ञा का पहला दिन है। सवेरे उठते ही उन्होंने कोट-पतलून धारण करके टेबिल पर आसन जमाया, और अपने दादा गुरु मौलवी साहब को सामने बैठाकर पंडित से बायकाट का संकल्प कराया, जो इस प्रकार था—

अद्य मासानां मासोत्तमे मासे सितंबरमासे पक्षहीने जुमेरातवारे मोहर्रमे मृतौ लखनऊनगरे ब्रज़नालसमदुर्गंधनालनिकटे प्राचीन-क़बरस्तानांतर्गतभोपदे शुभेऽशुभे च रामायणक़ुरानशरीफ़-इंजीलोक्तफलप्राप्त्यर्थं कौशलगोत्रोऽहं मुक़्तीश्वरप्रवरोऽहं साहित्यशून्यभाषापंडितमार्तंडशालाध्यायिनं वरभाहं मुसलमानमंडलीवशीकर्तुं आंग्लभाषाशब्दप्रयोगबहिष्कार-व्रतं करिष्ये।

संकल्प के बाद बाबू ख़िलाफ़तदास को नित्य-निर्वाह के लिये चुरुट को मुँह में लगाकर धुआँकश का नातेदार बनने की आव-

श्यकता पड़ी। वह नौकर को "बेल" कहकर पुकारने के अभ्यासी हो रहे थे। पहले कहा, "बेल वक्सा।" पर फिर अपनी ग़लती पर ध्यान आ जाने से बोली को बदला, और पुकारा—"अरे बक्सा!" दो-तीन आवाज़ें लगाने पर मियाँ नौकर सामने आकर खड़ा हो गया। बाबू ने कहा—बीड़ी लाओ। नौकर—क्या पान की बीड़ी? बाबू—नहीं, तंबाकू की बीड़ी। नौकर—वह तो यहाँ नहीं मिलती। बाबू—अरे वह जो रोज़ पीते हैं, वही लाओ। नौकर—आप तो बीड़ी कभी नहीं पीते। आज क्या हो गया? बाबू—जो पीते हैं, वही लाओ।

यह कहकर ख़िलाफ़तदास ने नौकर को ज़ोर से डाँटा; क्योंकि पेट में सिगार के धुएँ की माँग हो रही थी। मियाँ भागा, और गिरते-गिरते बचा। अब बाबू को याद आया कि कोट की जेब में सिगार है, और वह निकालकर पीने लगे। फिर उनको बिस्कुट की दरकार हुई, और इसी तरह इसमें भी झंझट का सामना पड़ा। आदमी से कहा—विलायती टिकिया लाओ। वह कुछ समझ नहीं सका। फिर बताया—अँगरेज़ी रोटी लाओ। इससे भी कुछ अर्थ नहीं निकला। अंत में वह झुँझलाकर ख़ाली पेट ही दफ़्तर चले गए। वहाँ कुरसी पर बैठते ही एक और रंग सामने आया। कहीं पर रुपए भेजने की दरकार थी। बैंक से रुपए मँगाने को आदमी से चेकबुक मँगानी थी। इसके लिये निम्न-लिखित शास्त्रार्थ करना पड़ा—

बाबू—रसीद-बही लाओ। नौकर—वह तो यहाँ नहीं है। बाबू—तार्थीघर की रसीद। नौकर—समझ में नहीं आया सरकार। बाबू—तुम तार्थीघर नहीं जानते? जहाँ रुपया जमा किया जाता है। नौकर—आज आप यह कहाँ की बोली बोलते हैं?

इस प्रकार बड़ी बकवाद रही। अंत में ख़िलाफ़तदास ने नौकर

को गाली दी। वह भी टर्रा उठा। काँयँ-काँयँ बढ़ी। बाबू ने रूल खींच मारा; नौकर ने कुरसी उलट दी। बाबू के चोट आ गई। शर्म के मारे मामला पुलीस में नहीं दिया गया। पर डोली में बैठकर बाबू ख़िलाफ़तदास अपने झोपड़े को रवाना हुए। दास भी अपनी इस लीला को याद कर "दैया-मैया" का मंत्र जपने लगे, और उसके साथ ही यह अध्याय भी समाप्त हुआ।

इति पंचपुराणे प्रथमस्कंधे त्रिषष्टितमोऽध्यायः

चतुःषष्टितम अध्याय

मास्टर-माहात्म्य

दुनिया में मास्टर भी विचित्र जीव हैं। जिस प्रकार चतुष्पदों में गऊ माता के चिरंजीव बरख़ुरदार श्रीमान् बलीवर्दजी संसार का उपकार करने के लिये सूर्योदय से लेकर चमगीदड़ों के हवा खाने के समय तक अपनी गर्दन को जुए के अर्पण किया करते हैं, ठीक उसी तरह ये बेचारे रात-दिन ग्रीवा को झुकाए अपने बोझ में जुते रहते हैं। समय के फेर से शब्दाक्षरों में कुछ परिवर्तन हो ही जाया करता है, और वैयाकरणीय नियम उस मुहाविरे के प्रतिपादन में बना लिए जाते हैं। इस प्राकृतिक रीति से ऐसा अनुमान होता है कि गुरु शब्द ही से गोरू बना है, और चाहे न भी बना हो, पर "गुरोर्गोरुः" ऐसा व्याकरण-सूत्र वर्तमान शिक्षकों के अधिकांश को देखकर बना लेना अनुचित नहीं मालूम होता।

प्राचीन काल में गुरु की ब्रह्मा-विष्णु आदि से उपमा इसलिये दी जाती थी कि वह बालक में बुद्धि की सृष्टि का विकास और समझ स्थापित करने में बिना किसी लोभ के स्वार्थहीनता से काम करता था। पर आजकल के "फ़ीस", "तनख़्वाह" और "ट्यूशन"

के तापत्रय में घिरे हुए मास्टरों द्वारा वह पवित्र काम क्योंकर लिए जा सकते हैं ? इनकी तो लक्ष्मी, शीतला आदि देवियों से संबंध रखनेवाले पशु-श्रेष्ठों के सिवा और किसी जीव से समता मिल ही नहीं सकती। बालक को सदाचार सिखाना भी यदि शिक्षा का एक अंग माना जाय, तो प्राचीन आर्यों के हिसाब से इन टीचरों को कुटीचरों की श्रेणी के सिवा और कोई दर्जा दिया ही नहीं जा सकता। कोट-पतलून की कफ़नी से जकड़ा हुआ मटके का सगा भाई, दशम मास की गर्भिणी की तोंद-से पापी पेट को कोट की ओट में लादे हुए, खड़े-खड़े मूतनेवाला मास्टर या मास्टरों का दारोगा बालकों को पाशव धर्म के सिवा और कुछ सिखा ही नहीं सकता। बूट-वाहन पर सवार मुखरूपी चिमनी से सिगरेट का धुआँ निकालने का प्रेमी मास्टर मूर्खता की फ़ैक्टरी बनने के अतिरिक्त और काम के योग्य हो ही नहीं सकता। फिर जब देखा जाता है कि वही वर्तमान अँगरेज़ियत धर्म की जगन्नाथपुरी की होटल की बस्ती का उच्छिष्ट महाप्रसाद खाने में अपनी धर्मनीति को भक्षण करने-वाले जबड़ों से भरा थूथन खोल रहा है, तो सुकुमार बालकों के मस्तक में राक्षसी भाव के सिवा और कौन-सा भाव प्रवेश करेगा ? इस बात को विचारकर टीचर-शब्द में 'कु' अक्षर को गौण मानकर "टीचरो कुटीचरः" यह नवीन सूत्र बना लेना वैयाकरण-पद्धति से असमीचीन नहीं माना जाना चाहिए।

मास्टर-शब्द का अर्थ नवीन शिक्षितों की पतितपावनी और दरिद्रोद्धारिणी अँगरेज़ी-भाषा में विचित्र है। मास्टर स्वामी को कहते हैं। और, घर के छोकरों के लिये भी वही शब्द आता है। वर्तमान साहित्य-रस-शून्य शिक्षकगण को छोकरों के संग गेंद के खेल में गेंद की तरह लुढ़कते, गलियों के अधिष्ठाता लेंडीदल के समान भागते, फुटबाल में ठोकरें खाकर क़लाबाज़ियों का शिकार बनते

देखकर उसको स्वामी कहना भी एक प्रकार का पाप लादना है। अतएव-मास्टर शब्द का दूसरा अर्थ ही (जिसमें छोकरेपन की दुर्गंध की नाली की भभक आती है) इन मास्टरों की कृति के अनुरूप ठहरता है। यदि कोई भविष्य अर्थानुशासन का ग्रंथ बनाया जाय, तो इस शब्द के अर्थ में यह प्रतिवाद-सूत्र बनाना पड़ेगा—"मास्टरो लौंडिहाच"।

सरस्वतीदेवी की तारीफ़ में तो बहुत कुछ कहा गया है, पर उनमें भी तबियतदार लेखकों ने दोष निकाले हैं। संस्कृत का एक सुलेखक भगवती को "प्रगल्भवाचाला" कहता है और हिंदी-कवि-चूड़ामणि बाबा तुलसीदास कह गए हैं—"गिरा मुखर, तनु अर्द्धभवानी।" वर्तमान मास्टरों में अधिकांश शारदादेवी के वास्तविक गुणों से ऐसे अलग हैं, जैसे वंध्या और वंशोत्पादन कारिणी शक्ति; वेश्या और पतिव्रत-धर्म; घुग्घू और सूर्यदेवता का पूरा प्रकाश। उनमें सरस्वती के संबंध में चलनी की बदचलनी अर्थात् बुरी चीज़ को ग्रहण करने की शक्ति ही आई दिखती है। अतएव भगवती की मुखरता ही मास्टरों में आई है, ऐसा मानना विचार की रीति से बुरा नहीं कहा जा सकता। किसी कवि ने ठीक कहा है—

बक-बक सागर ढोल-से, भैरव-वाहनराज;
बकत रहैं बेकार नित, आचारज कलिराज।

इति पंचपुराणे प्रथमस्कंधे चतुःषष्टितमोऽध्यायः

पंचषष्टितम अध्याय

मेत्री का प्रेम

एक साहब लिखते हैं—

जब से अँगरेज़ियत और कोरी जेंटिलमैनियत की बीमारी मुल्क

में आई, हज़रत इश्क़ का माशूक़ी डिपार्टमेंट कुछ-का-कुछ हो गया। बड़ी-बड़ी तबदीलियाँ हो गईं। परदे के बाहर बैठनेवालों की तरफ़ कुछ लोग नज़रें बदलकर देखने लगे। किसी ने गाना-बजाना सुनने के संबंध में औरंगज़ेबी मज़हब अख़्तियार किया। कोई बाज़ारू बीबियों को देखकर भागने लगा। दोहाई तो "मोरेल्टी" की दी जाती है, मगर मामला कुछ दूसरा ही नज़र आता है; क्योंकि मोरेल्टी कंबख़्त का तो कहीं पता भी नहीं मिलता। कचहरी-दरगाह के हाजी हमारे वकील साहबान की चालाकी और बतोलेबाज़ी की शिकारगाह का बाज़ार अगर कुछ दिन और गरम रहा, तो ओरेल्टी-मोरेल्टी सबका ख़ातमा समझिए।

यह है "पुशिंगएज", जिसका मतलब है धक्के का ज़माना। इस ज़माने में धक्के की धूम है। हिंदुओं के मज़हबी मेलों में धर्म के धक्के का अब फ़ैशन कम होता जाता है; मगर किसी वक़्त इन्हीं का ज़माना था। फिर हमारे वे मेहरबान आए, जिनके साथ हमारी 'यूनिटी', अर्थात् एकता, होने की नक़ीरी कभी-कभी सुनने में आ जाती है। इन्होंने भी वह धक्के दिए कि लोग धक्के क्या, कुचल डाले जाने के आदी हो गए। जब विलायती लेडी शाइस्तगी साहबा की तशरीफ़ का दौरा यहाँ आया, तो कुछ ऐसे नज़ारे चले कि हिंदुस्तानी धक्कों के फ़ने जंग में एक कमाल को पहुँच गए। हुरमत, हिम्मत और बहादुरी से तो "डाइवोर्स" हो ही चुका था, अब धरम, करम और शरम को भी धक्के देने पर उतारू हो गए। मगर हज़रत इश्क़ कब चूकनेवाले थे? आपने तमाम मुल्क में बी भँवरी के वह मुक़ामात क़ायम कर दिए कि पढ़े-लिखे सब मजनूँ, इंसान के मुरीद (चेले) होकर कूचए जाना में गश्त लगाने लगे। इसी ख़याल में दिमाग़ की बिजली की कल रात को मशगूल रही, और चारपाई की ख़ामोश अमलदारी के अंदर जाते ही जो

नज़ारा सामने आया, वह क़लम-बंद होने के ज़रूर ही लायक़ है ।

नज़ारा

चौक के एक कमरे के नीचे कईएक उम्मेदवार अपने दोस्त-अहबाबों को लिए खड़े हैं । ऊपर एक कुर्सी पर वो मॅबरीजान बैठी सटक को लिए अपनी मटक दिखा रही हैं । थोड़ी देर में आशिक़-मंडली ने यह गाना गाया—

तू हमको ज़रा देख ले चालाक मॅबरी ;
हैं हम तहेदिल से तेरे मुश्ताक़ मॅबरी ।
हम गोकि बनाते हैं कचहरी में रोटियाँ ;
जिनसे चढ़ी हैं जिस्म में क्या ख़ूब बोटियाँ ।
पर तेरे बिना हेच है सब शान हमारी ;
कौंसिल न मिलेगी, तो गई जान हमारी ।
तू मुसकिराके देख ले ऐ संगे-दिल, ज़रा ;
क़ानून के पुतले हैं, हमारा न दिल जला ।
हम अपनी लियाक़त का करें किस तरह बयाँ ;
दुनिया में धूम है तेरी फैली जहाँ-तहाँ ।
मैं एक का सिकत्तर हूँ, दूसरे का चेयरमैन ;
बिन मॅबरी के मुझको न पड़ती कहीं पै चैन ।
ऐ बी, नज़र हो मुझ पै भी, मैं हूँ तेरा ग़ुलाम ;
बरमा के सामने से किया दिल से मैंने काम ।
अहले वतन का काम करूँ, वह मजूर हूँ ;
लीडर नहीं, तो लीडरों की दुम ज़रूर हूँ ।
गर मॅबरी नहीं, तो है बस, बेक़रार दिल ;
तू पास मेरे आके अनोखी अदा से मिल ।
दुनिया में मेरा नाम है, हूँ चाँद-सा वकील ;
इंसान की क्या अक़्ल, जो मुझसे करे दलील ।

हाकिम की मेरे सामने उड़ती है हवाई ;
तुतलाके जो बोला व बहस मैंने उड़ाई।
घबराके छोड़ देगा वह इजलासकार आप ;
मैं वह वकील हूँ, जो है बैरिस्टरों का बाप।
गर मेरा ये मुश्ताक दिल पाए न भँवरी ;
जन्नत में भी होगी ये सदा "हाय भँवरी"।

गाना सुनकर रौनक़आरा भँवरी साहबा यों फ़र्माने लगीं—जनाब, रोने-गाने से क्या ? मैं वोटरों के क़ब्ज़े में हूँ। उनके पास जाकर दरख़्वास्त कीजिए। अगर मेरी चलती, तो मैं ऐसों का हाथ दामन तक कभी पहुँचने न देती। सुनिए—

तुम्हारी ग़फ़लत से लखनऊ की तनज्जुली खूब हो रही है ;
बिहिश्त में सुनके अख़्तरी को व रूह वरमा की रो रही है।
मुनीसपलटी की चाल पलटी, ग़रीब पर भी टिकस लगाया ;
वकील साहब, तुम्हारी चालों ने इस शहर पर ग़ज़ब गिराया।
ख़ुशामदी आजकल सफ़ागो, जो शान लिबरल की थी पुरानी ;
गई है दोज़ख़ में, ख़ुदग़रज़, यह तुम्हारी है हेच लंतरानी।
व गर्ल इस्कूल की हिमाक़त व कांग्रेस की हिसाबबाज़ी ;
हरएक दिल को दुखा चुकी है, वो लीडरीपन की बदमिज़ाजी।
तुम्हारे नौकर बनाके बंदर-सा खूब तुमको नचा रहे हैं ;
अदीम फ़ुर्सत बनाके मतलब तुम्हारा इक़बाल ढा रहे हैं।
ख़बर है कुछ ? होश तो सँभालो ! गुनह बड़ा तुम कमा रहे हो ;
ग़रीब तालीम के गले पर ये तेज़ छूरा चला रहे हो।
सरिश्ते तालीम की बनावट का ढंग तुमने अजब दिखाया ;
सरस्वती को सँभालने को अजीब लंगूर ला बिठाया।

इति पंचपुराणे प्रथमस्कंधे पंचषष्टितमोऽध्यायः

षट्षष्टितम अध्याय

जूतों का अभ्युदय

कलिकाल के वर्तमान फ़ैशन-कल्प और सभ्य-मन्वंतर में जितनी उन्नति श्रीमान् जूते साहब की हुई, उतनी किसी की नहीं। जिस प्रकार बाबू, पंडित, लाला आदि सब केंचली बदलकर मिस्टर बन गए, उसी प्रकार सबके पैरों के पुराने घेतले और नरी के जूते सब मिस्टर बूट की सूरत में बदल गए। पुराने सुँघनी सूँघनेवाले पंडितों से लेकर हैट लगानेवाले काले रंग के साहब तक बूट की अटूट शक्ति और अनन्य भक्ति में तन-मन-धन से लिप्त हैं। अभी तक ये स्त्रियों पर अधिकार नहीं रखते थे; पर समय बता रहा है कि उनके चरणों पर भी इनका धावा होनेवाला है; क्योंकि अनेकों के पैरों में चट्टी साहबा के दर्शन होने लगे हैं। बूटजी की सेना ने सब आचार-विचार पर पानी फेर दिया। जो लोग भोजन के समय जूतियों को तलाक़ देकर चौके में बैठते थे, उनकी संतान बूट पर सवार होकर रोटियों को पेटदेवता के अर्पण करना बुरा नहीं समझती। यह इस बात का प्रमाण है कि बूटों पर पवित्रता ने अधिकार कर लिया, और दिन-पर-दिन इसकी उपासना बढ़ती चली जायगी। बूट की तारीफ़ में एक कवि ने कहा है—

> आइए बूट, बिना आपके है चैन कहाँ;
> चारपाई पै पड़े रहते हैं दिन-रात यहाँ।
> हैट हो या न हो, पतलून न हो, क्या है ग़म;
> हाय बिन बूट के मुतलक़ नहीं रह सकते हम।
> हज़रते बूट जहाँ पैर में आ जाते हैं;
> डाक का घोड़ा आदमी को झट बनाते हैं।
> अकड़ व ऐंठके क्या ख़ूब क़दम रखता है;

लोग कहते हैं कि उल्लू ज़मीं पैं करता है।
चींटों और चींटियों को ज़ोर से दबाता है ;
चाल में मोटरों का रंग ही बन जाता है।
बूट ने कर दिए हिंदू सभी तो जेंटिलमैन ;
किस तरह हिंदुओं को इनके बिना होवे चैन।
पैर में बूट न हो जिसके, उसकी बात नहीं ;
बूट-हीनों की तो घर-बार में औक़ात नहीं।
टोपियाँ आने की और बूट गिन्नियों के हैं ;
दाम सोने के नहीं, बल्कि फ़िल्लियों के हैं।

इस प्रकार बूट की स्तुति में बहुत कुछ बातें कही गई हैं, जिनमें से केवल ऊपर का भाग ही दिया जाना उचित समझा जाता है ; क्योंकि ज़्यादा स्तुति से पुण्य के बढ़ने और बूट के भक्तों के मुक्त हो जाने का डर लगा हुआ है।

काशीपुर में एक पुरानी गली है—वहाँ प्राचीन काल का एक पुराना कुटुंब है। कहते हैं, जब से काशी में मुसलमान आए, उनके कुछ पूर्व इस ख़ानदान का 'श्रीगणेशाय नमः' इस पवित्र नगरी में हुआ था। इस हिसाब से बनारस के प्राचीन निवासियों में यह घर काकभुशुंड कहे जाने का अधिकारी है। इसमें बूढ़ों से लेकर बालकों तक का फ़ैशन बनारसी है। तेल से तर घूँघरवाले बाल, चौगोशिया टोपी, अकड़ की चाल, अई-बई की बोली अभी तक पाई जाती है। पुराने ज़माने में इस ख़ानदान के लोग बड़े बाँके-तिरछे और बलिष्ठ लंडे हो रहे थे, जिनको देखकर बड़े-बड़े पंडे और नामी गुंडे व्याकुल हो उठते, और इनका घर 'उस्तादों' की तरह माना जाता था। जब औरंगज़ेब ने विश्वनाथ का मंदिर तोड़ा, उस समय भी इस परिवार के लोग लड़ने को उद्यत ज़रूर हुए होंगे ; पर और लोगों की भीरुता के कारण आगे नहीं बढ़े।

ऐसे पुराने लोगों क यहाँ बदमाशी, जुआ, चोरी, नशेबाज़ी, लूट-मार, मिथ्या, चालाकी, सब ठीक समझा जाता है। पर छुआछूत का बड़ा भारी आचार और विचार है। जूते साहब ड्योढ़ी में निवास करते हैं, और आँगन में क़दम बढ़ा नहीं सकते। बाज़ार में बैठनेवाली औरतों में कुछ दोष गिना नहीं जाता। वे आँगन में नाच सकती हैं, लाला और उनके बाप तक को गालियाँ सुना सकती हैं। न उनसे बात करने में दोष, न उनके स्पर्श में पाप। पाप है तो जूते में, रोटी में, और पाख़ाने के कपड़े में। जूते के पैर बिना धोए खाना तो क्या, पानी भी पीना हराम है। छू-छू करके गीले चमड़े के समान अँगोछे लपेटकर रोटी खाई जाती है, और पाख़ाने से आया हुआ आदमी सूतकी की तरह अलग ही बैठाया जाता है। ऐसे पुराने कुटुंब में अँगरेज़ी की कृपा से एक बाबू का अवतार हुआ है। यह जूते और टोपी को बराबर समझता, गाय और गधे को बराबर गिनता, ब्राह्मण और मोची में कुछ फ़र्क़ नहीं देखता। श्राद्ध को रुपए का बंटासराध कहता और काम पड़ने पर होटल, बोटल को भी गंगा-जल का सगा नातेदार मानता है। ऐसे लोग इष्टदेव, ग्रामदेव और कुलदेव, किसी को नहीं मानते। इसकी कुलदेवी श्रीमती पाणिगृहीती हैं। यह पढ़ने-लिखने पर भी अपने ख़ानदान के इतिहास में पूरा 'कुंदे नातराश' है। न जाने देव, न जाने पितर। इँगलैंड की तवारीख़ मालूम है। पर समाज की, वर की, जाति की कोई प्रथा इसको नहीं मालूम। अतएव गृहस्थी के मामलों में इसको बीबी साहबा की आज्ञा ही माननी पड़ती है। वह होती है पुरानी चाल की। बस, सिसक-सिसककर सब पुरानी बातें करनी पड़ती हैं, और सुधार की शेख़ियाँ आले में धरी रहती हैं। पर बाबू साहब ने पुराने कुटुंब में होकर भी एक ऐसी युवती से विवाह किया है, जो 'डायन' का बना मेमियाना

जूता पहनती है। उसके आते ही घर में कलह-युद्ध मच गया है। जहाँ आँगन में जूता नहीं आता, वहाँ वह ठाकुर की कोठरी तक जूतों को यात्रा कराती है, और घर-भर को 'बेवकूफ़' की रायबहादुरी की उपाधि अर्पण करती है। यह श्रीमती पुराने जुल्फ़ों को 'झोंटे', चौगोशी टोपियों को अहमक़पन की किसानी बताने का प्रस्ताव करती हैं, और उसका समर्थन बाबू साहब किया करते हैं। इस कारण घर में बड़ी कलह मचती है। कहा-सुनी हो जाती है। अब यह संग्राम इतना बढ़ा है कि कुटुंब के बटने का समय निकट दिखता है। हाल में नई दुलहिन ने अपनी सास को एक लड़ाई में यह ताना-अस्त्र मारा था—"हम किसी से नहीं दबेंगी। किसी का क्या इजारा है? जूता पहनते हैं, तो अपनी जमा के भरोसे। बूट पहनेंगी अपनी आमदनी पर। तुम बोलनेवाली कौन? जूता हमारा, और हम उसके। ठाकुरबाड़ी क्या, हम उसको पटरे पर रखकर पूजा करेंगी। हमारा मत होगा, सो करेंगी। बूट की पूजा करेंगी। देखें, हमें कौन रोकता है?"

यह सुनकर घरवालों के होश बिगड़ गए हैं। पवित्र नगरी के पुराने कुटुंब में हलकंप मच गया है। झगड़ा अदालत तक पहुँचने को है। क्या होगा, सो भगवान् जानें। पर जूते का अभ्युदय होनेवाला है, यह सबको मानना पड़ेगा।

इति पंचपुराणे प्रथमस्कंधे षट्षष्टितमोऽध्यायः

सप्तषष्टितम अध्याय

रेलवे के धक्के

रेल-शब्द का अर्थ चाहे जो कुछ हो, पर इसका काम आरंभ से अंत तक ढकेल देना ही प्रकट होता है। रेलदेवी के मंदिर अर्थात्

स्टेशन से लेकर यात्रा की अंतिम घड़ी तक सिवा धक्के खाने के और कुछ दृष्टिगोचर नहीं होता। यदि रेल की जगह इसका नाम 'ढकेल' होता, तो "यथानाम तथागुणः।" की कहावत चरितार्थ हो जाती।

हाल में एक अवसर मिला, जिसमें कुछ समय श्रीमती रेल की लीला देखने में व्यतीत करना पड़ा। उनकी प्रत्येक तो नहीं, पर कईएक प्रथाओं की पाट-पूजा दृष्टिगोचर हुई। सबसे पहले टिकट की विकट समस्या सामने आई। जहाँ टिकट बँटता है, वह नरक-कुंड की बातों का पूरा नमूना है। टिकट बँटने से लोग यह न समझें कि मुहर्रम की रोटियों की तरह वहाँ कोई चीज़ बाँटी जाती है। यहाँ पर टिकट बिकता है। ख़ैर, एक कोठरी में खिड़की की राह से एक बुकिंग क्लर्क के दर्शन होते हैं। उस खिड़की तक पहुँचना बड़े पुण्यों के फल से होता है। थर्ड क्लास के यात्री अधिकतर ऐसे होते हैं, जो बाबू को बड़े महत्त्व की चीज़ मानते और यह समझते हैं कि यदि देर लगेगी, तो टिकट की खिड़की बंद हो जायगी। बस, सब रेला मारकर खिड़की तक पहुँचने को मनुष्य-जन्म की सफलता मानते हैं। एक के पीछे एक ढकेलते-ढिकलते इस प्रकार चलते हैं, मानो पीछे से भेड़िया खाने के लिये चला आ रहा हो। इस तरीक़े से जो बेचारे किसी को धक्का नहीं देना चाहते, उनको बड़ा कष्ट होता है, और ठेस लगने से अंग-भंग होने के समान पीड़ा हो उठती है। जो लोग स्त्रियों की स्वतंत्रता और उनका परदा नष्ट किया चाहते हैं, उनके यह विचारने की बात है। जब तक यहाँ सर्वसाधारण में धक्के देना बुरा न समझा जाय, और जब तक रेल के पुजारी बुकिंग क्लर्कों को दर्शनी हुंडी बनाकर खिड़कियों में खड़ा करना बंद न हो जाय, तब तक औरतों को आज़ादी मिलना मामूली अक़्ल के शास्त्र से भी सिद्ध नहीं है।

आगे चलिए। टिकट लेने का घमासान युद्ध होने के बाद अब स्टेशन के फाटक पर धक्केबाज़ी का दूसरा नाटक आरंभ हुआ। सब-के-सब यात्री फाटक के पिंजड़े में भरे गए। चिड़ियाख़ाने में जाते हुए पक्षी जिस प्रकार पिंजड़े की तीलियों में से एक के ऊपर एक लदे दिखाई देते हैं, ठीक उसी तरह का दृश्य रेल के फाटक पर देखने में आया। औरतें-मर्द, कच्चे-बच्चे, सब धक्केबाज़ी से कृतार्थ होते ठसाठस भरे खड़े थे। यहाँ पर हिंदुस्तानीपन की पूरी कैफ़ियत थी। पगिया बाँधे और मिरज़ई पहने मर्द और लहँगा-फरिया पहने वे स्त्रियाँ, जिनके हाथों और पैरों में पंसेरी-भर से कम चाँदी और फूल का बोझा न होगा, वे भी वहाँ रेले में शरीक थीं। पुरानी चाल के फ़ैशन का इतिहास साफ़-साफ़ सामने खड़ा था। अँगरेज़ी चाल की गोल टोपी या फ़ेल्ट कैप बाबुओं का परमोत्कृष्ट पहनावा है। आजकल बाबूगीरी की इति-कर्तव्यता इसी पर आ पड़ी है। इसी टोपी की एक बहन टर्किश कैप है, जिसमें फुलफुल कनकव्वे की तरह एक फुँदना लटका करता है। आधुनिक शिक्षित, अर्द्धशिक्षित, फ़ैशनदास, सब इन्हीं टोपियों पर मजनूँ हो रहे हैं। रेल के फाटक की भीड़ में ऐसे बाबू लोग भी थे। ये अपने को साधारण जनों से कुछ बढ़कर मानते हैं। पर रेल में वह बड़ाई कुछ काम की नहीं समझी जाती। ढकेला-ढकेली में एक बाबू-रूपधारी साहब भी पड़ गए। जब पीछे से धक्का चला, तब यह बाबू भी भीड़ के प्रवाह में पड़कर आगे बहे। फल यह निकला कि यह एक चाँदी के गहनों से लदी ठकुराइन की पीठ पर पहुँच गए। इनका हाथ कुछ आगे को था। स्त्री के किसी अंग में लग गया। उसने घूमकर बाबू को एक हाथ से ढकेला। हाथों के काँटेदार कंगन और पहुँची की चोट कुछ ऐसी अंदाज़ से पहुँची कि मुखारविंद पर खरोंटों की अमलदारी हो गई। यह बेचारे रो दिए, हाय-हाय का पाठ करने लगे। इतने में

फाटक खुल गया, और गिरते-पड़ते, ढकेलते-ढिकलते मुसाफ़िर रेल की गाड़ियों की तरफ़ दौड़े ।

इसके बाद नवीन अंक का दृश्य आरंभ हुआ । गाड़ियों के कमरे अधिकांश भरे हुए थे । अंदरवाले बाहरवालों को आने देना नहीं चाहते थे । बड़ी कलह मची । कुछ बलिष्ठ घुस गए । कमज़ोर गाड़ियों में बैठने नहीं पाए । गार्ड ने सीटी दी, और रेल छूटी । एक मुसाफ़िर, जिसकी स्त्री अंदर पहुँच गई थी, फिर बल-पूर्वक चलती गाड़ी में चढ़ने दौड़ा । स्टेशनवालों ने कमर पकड़कर घसीट लिया । वे स्त्री-पुरुष चकई-चकवे के समान चीकते रह गए । स्त्री को रेल लेकर भागी, और पति ग़रीब "अरे-अरे" कहकर रोने लगा । ग्रामीण और अशिक्षित लोगों के रोने में भी एक प्रकार की कैफ़ियत होती है । वह रोना गाने की-सी अलाप में होता है, और वियोग के संबंध में वे ऐसे-ऐसे शब्दों का प्रयोग उपयोग में लाते हैं कि उनसे अख़बारी कविता के बेतुके कालिदास साहित्य के अलंकार की शिक्षा ज़रूर पा सकते हैं । इस वियोग-संतप्त ग्रामीण ने रेल के प्लेटफ़ार्म पर जिस प्रकार विलाप करना आरंभ किया, उसका कुछ नमूना सुनने के लायक़ था ।

जब रेल चली, तब एकाएक गाड़ी पर बैठी स्त्री ने आर्तनाद किया, और उसका पति प्लेटफ़ार्म पर खड़ा हुआ हाहाकार करके रोने लगा । इन दोनों का यह वियोग का अलाप बड़े उदात्त स्वर से निकला—"दैया, मैया और भैया" आदि शब्दों के तुकांत पदों से समलंकृत पदावली के निकलने से उसके एक प्रकार का "मरसिया" बन जाने में कुछ कसर नहीं रही । उनके इस विलाप से रेल के सब यात्री खिड़कियों में झाँकने लगे, और एक खिड़की में मुँह निकाले वह स्त्री भी रोने का गाना सुनाती हुई आगे बढ़ी । थोड़ी देर के बाद गाड़ी अपने इष्ट स्थान में पहुँची, और सौदा बेचने-

वालों की दूसरी तानें सुनाई देने लगीं। पहली आवाज़ आई—"कवाब रोटी गरमागरम।" फिर पूरी, कचौरी, बर्फ़, सोडा, लेमनेड, पान-सिगरेट, सबकी धुन कान में पड़ने लगी। एकाएक सामने का फाटक खुला, और धक्के खाते हुए यात्री फुटबाल की तरह इधर-उधर दौड़ने लगे। गाड़ी भरी हुई थी, और कहीं पैर रखने की जगह न थी। पर "अर्थी दोषं न पश्यति।" एक-एक दर्जे में दस और बीस और कहीं तीस खबीस की सूरत बनाए मुसाफ़िर गाड़ी में घुस गए। बड़ी हाय-हाय के स्तोत्र पढ़े गए। बाहर से आनेवाले यात्रियों और गाड़ी में बैठे हुए मुसाफ़िरों के झगड़े और धक्के चलने लगे। अंत में रेल के पुजारी आ पहुँचे, और खड़े हुए यात्रियों को ठूस-ठासकर दर्जों में भरने लगे। इतने में गार्ड ने सीटी दी, लड़ते-झगड़ते मुसाफ़िरों को लेकर एंजिन बोला, और गाड़ी रेंगने लगी। इसी अवसर पर एक दर्जे में वितंडावाद हो चला। यहाँ पर १० के स्थान में १५ आदमी थे। रेल के पुजारियों ने लिख रक्खा था—"१० मुसाफ़िर ले जाने के लिये।" पर यह लिखना केवल दिखावा ही बन गया। जैसे लीक पीटनेवालों की सामाजिक बातें होती हैं, वैसे ही रेल के वे अक्षर लिखे होते हैं। उन पर अमल कभी नहीं किया जाता। यदि मुसाफ़िर नहीं आए, तब तो लाचारी है; नहीं तो काम पड़ने पर एक की जगह तीन को भरकर मनुष्यों को भूसा बना डालना रेल के धर्म में बुरा नहीं समझा जाता। जब लोगों को बैठने की ठीक जगह नहीं मिली, तब कोई तो खड़ा रह गया, कोई बैठ गया, किसी ने अपनी गठड़ी ही पर अड्डा जमाया। पर एक मियाँ साहब ऐसे निकले, जो बेंच पर बैठे संदूक़ लिए हुए थे। एक आदमी की जगह संदूक़ महाराज से रुकी हुई थी। ऐसी अवस्था में यह स्वाभाविक था कि संदूक़ को नीचे रखने का प्रस्ताव किया जाय। यह किया

फाटक खुल गया, और गिरते-पड़ते, ढकेलते-टिकाते मुसाफ़िर रेल की गाड़ियों की तरफ़ दौड़े ।

इसके बाद नवीन अंक का दृश्य आरंभ हुआ। गाड़ियों के कमरे अधिकांश भरे हुए थे। अंदरवाले बाहरवालों को आने देना नहीं चाहते थे। बड़ी कलह मची। कुछ बलिष्ठ घुस गए। कमज़ोर गाड़ियों में बैठने नहीं पाए। गार्ड ने सीटी दी, और रेल छूटी। एक मुसाफ़िर, जिसकी स्त्री अंदर पहुँच गई थी, फिर बल-पूर्वक चलती गाड़ी में चढ़ने दौड़ा। स्टेशनवालों ने कमर पकड़कर घसीट लिया। वे स्त्री-पुरुष चकई-चकवे के समान चीकते रह गए। स्त्री को रेल लेकर भागी, और पति ग़रीब "अरे-अरे" कहकर रोने लगा। ग्रामीण और अशिक्षित लोगों के रोने में भी एक प्रकार की कैफ़ियत होती है। वह रोना गाने की-सी अलाप में होता है, और वियोग के संबंध में वे ऐसे-ऐसे शब्दों का प्रयोग उपयोग में लाते हैं कि उनसे अख़बारी कविता के बेतुके कालिदास साहित्य के अलंकार की शिक्षा ज़रूर पा सकते हैं। इस वियोग-संतप्त ग्रामीण ने रेल के प्लेटफ़ार्म पर जिस प्रकार विलाप करना आरंभ किया, उसका कुछ नमूना सुनने के लायक़ था।

जब रेल चली, तब एक-एक गाड़ी पर बैठी स्त्री ने आर्तनाद किया, और उसका पति प्लेटफ़ार्म पर खड़ा हुआ हाहाकार करके रोने लगा। इन दोनों का यह वियोग का अलाप बड़े उदात्त स्वर से निकला—"दैया, मैया और भैया" आदि शब्दों के तुकांत पदों से समलंकृत पदावली के निकलने से उसके एक प्रकार का "मरसिया" बन जाने में कुछ कसर नहीं रही। उनके इस विलाप से रेल के सब यात्री खिड़कियों में झाँकने लगे, और एक खिड़की में मुँह निकाले वह स्त्री भी रोने का गाना सुनाती हुई आगे बढ़ी। थोड़ी देर के बाद गाड़ी अपने इष्ट स्थान में पहुँची, और सौदा बेचने-

वालों की दूसरी तानें सुनाई देने लगीं। पहली आवाज़ आई—"कवाब रोटी गरमागरम।" फिर पूरी, कचौरी, बर्फ़, सोडा, लेमनेड, पान-सिगरेट, सबकी धुन कान में पड़ने लगी। एकाएक सामने का फाटक खुला, और धक्के खाते हुए यात्री फुटबाल की तरह इधर-उधर दौड़ने लगे। गाड़ी भरी हुई थी, और कहीं पैर रखने की जगह न थी। पर "अर्थी दोषं न पश्यति।" एक-एक दर्जे में दस और बीस और कहीं तीस खबीस की सूरत बनाए मुसाफ़िर गाड़ी में घुस गए। बड़ी हाय-हाय के स्तोत्र पढ़े गए। बाहर से आनेवाले यात्रियों और गाड़ी में बैठे हुए मुसाफ़िरों के झगड़े और धक्के चलने लगे। अंत में रेल के पुजारी आ पहुँचे, और खड़े हुए यात्रियों को ठूस-ठासकर दर्जों में भरने लगे। इतने में गार्ड ने सीटी दी, लड़ते-झगड़ते मुसाफ़िरों को लेकर एंजिन बोला, और गाड़ी रेंगने लगी। इसी अवसर पर एक दर्जे में वितंडावाद हो चला। यहाँ पर १० के स्थान में १४ आदमी थे। रेल के पुजारियों ने लिख रक्खा था—"१० मुसाफ़िर ले जाने के लिये।" पर यह लिखना केवल दिखावा ही बन गया। जैसे लीक पीटनेवालों की सामाजिक बातें होती हैं, वैसे ही रेल के वे अक्षर लिखे होते हैं। उन पर अमल कभी नहीं किया जाता। यदि मुसाफ़िर नहीं आए, तब तो लाचारी है; नहीं तो काम पड़ने पर एक की जगह तीन को भरकर मनुष्यों को भूसा बना डालना रेल के धर्म में बुरा नहीं समझा जाता। जब लोगों को बैठने की ठीक जगह नहीं मिली, तब कोई तो खड़ा रह गया, कोई बैठ गया, किसी ने अपनी गठड़ी ही पर अड्डा जमाया। पर एक मियाँ साहब ऐसे निकले, जो बेंच पर बैठे संदूक़ लिए हुए थे। एक आदमी की जगह संदूक़ महाराज से रुकी हुई थी। ऐसी अवस्था में यह स्वाभाविक था कि संदूक़ को नीचे रखने का प्रस्ताव किया जाय। यह किया

भी गया। पर मियाँ कब सुननेवाला था? अनुभव से यह सिद्ध हुआ है कि मियाँ तीन प्रकार के होते हैं। एक तो वे, जो रईस और अमीरी के स्वभाव से भरे होते हैं। इनका स्वभाव सभ्यता से मिला हुआ होता है। दूसरे वे, जो व्यापारी कहे जाने चाहिए। ये काम-काज की बातों में रत रहते हैं। तीसरे कँगले टर्रे, जो अपने को मियाँ और कुरान का नातेदार होने के कारण सबसे बड़ा गिनते हैं। यह मियाँ इसी थर्ड क्लास के जीव थे। इन्होंने एक नहीं मानी। मियाँ का संदूक़ क्या था, राम के धनुष-यज्ञ का पिनाक बन गया। टस से मस न हुआ। लोगों ने मियाँ साहब से संदूक़ हटाने को कहा, और उनकी झायँ-झायँ बढ़ने लगी। और तो चुप रहे, पर एक मुड़ासा बाँधे सिपाही की-सी सूरत का आदमी भी भीड़ में खड़ा था, उसकी और मियाँ की यों बातचीत होने लगी—

मियाँ—हम संदूक़ नहीं हटावेंगे।

दूसरा—क्यों?

मियाँ—क्या तुम हमारे इज़ारदार हो?

दूसरा—हम तुम्हारे इज़ारदार क्यों होने लगे? पर तुमको बेंच पर संदूक़ रखने का क्या हक़ है?

मियाँ—बस, बक-बक मत करो, जाओ, गार्ड से कहो।

दूसरा—गार्ड से तो तब कहें, जब हटा न सकते हों।

इतने में कई लोग "गार्ड साहब" कहकर चिल्लाए। गार्ड महाशय पास से होकर निकले तो सही, पर मुग्धा नायिका की तरह बिना बोले ही चले गए। अब फिर लड़ाई का श्रीगणेश हुआ—

मियाँ—अब कहिए?

दूसरा—क्या कहें?

मियाँ—अपने बाप को बुलाया तो था; पर क्या हुआ?

बाप का नाम लेते ही दूसरे आदमी पर क्रोध का भूत चढ़ आया। एकाएक उसका मुँह लाल हो गया। बड़े वेग में आकर उसने मियाँ का संदूक़ उठाकर नीचे ढकेल दिया। अब दोनों की गुत्थमगुत्था होने लगी। मार-पीट के सब अंगों ने दर्शन दे दिए। कुछ लोग बाहर निकल भागे, और वह पुरुष मियाँ को घसीटकर रेल के चबूतरे पर ले गया। चारों तरफ़ से गुल-शोर मच गया। यह झगड़ा देखकर रेलवे की धक्केबाज़ी प्रकृति का तो पूरा परिचय मिल गया, पर साथ में सामाजिक मामले की एक गुत्थी और सुलझ गई। उस मियाँ ने दूसरे साथी के बाप की उपाधि गार्ड को दी। इसमें बुरा मानने की बात क्या हुई? जान पड़ा, अभी लोग ऐसे हैं, और सैकड़ों हैं, जो दूसरे बाप का नाम लेने को गाली समझते हैं। विधवा-विवाह का प्रचार होने से कम-से-कम इतना लाभ ज़रूर होगा कि ऐसी गालियों को लोग बुरा नहीं कहेंगे।

इति पंचपुराणे प्रथमस्कंधे सप्तषष्टितमोऽध्यायः

अष्टषष्टितम अध्याय

फक्कड़ गुरु

आज जो घर से निकले, तो क्या देखते हैं, मैदान में बड़ी भीड़ लगी है। कुछ आगे चलकर तालियों की बड़ी तड़पड़ सुनाई पड़ी। दो क़दम बढ़ते ही "हि-ही-ही-हि-ही-ही" की आवाज़ कान में पड़ी। राह-चलतों से पूछा कि यह मामला क्या है? किसी से कुछ स्पष्ट उत्तर न मिला। उत्कंठा और बढ़ी। पैरों की गति बढ़ानी पड़ी। राम-राम करते हाँफते हुए इष्ट स्थान में पहुँचे। जान पड़ा, फक्कड़ गुरु अपने खर्ज के स्वर में व्याख्यान झाड़ रहे हैं। लेक्चर के आरंभ में ही उन्होंने कुछ ऐसी रंगत दिखाई कि श्रोतागण में क़हक़हा

मच गया था । ख़ैर, उनका भाषण ही सुना देना कथा के श्रोताओं के लिये मंगलकारी हो सकता है । व्याख्यान यह था—

फ़ेल्टकैपी साहब, हमारे यहाँ हमेशा से मंगलाचरण की चाल चली आती है । मंगल-पाठ किया जाता है उसका, जिससे कुछ फ़ायदा हो । आजकल लाभ देनेवाली देवी है ख़ुशामद, और उसकी स्तुति यों होनी चाहिए—

ख़ुशामद भवानी, हो सबसे बड़ी ;
तुम्हीं फ़ायदे की लगाती झड़ी ।
जो बीबी की कर ले ख़ुशामद ज़रा ;
तो बस, पेट है रोटियों से भरा ।
अगर हो गई वह ख़फ़ा, तो लला ;
समझ लो न फिर खोपड़ी का भला ।
तड़ी पर तड़ी फिर चले जायगी ;
व गुद्दी पँ आफ़त बुरी आयगी ।
चलेगी वह फ़र्मायशों की लड़ी ;
करेगी न फिर काम कोई जड़ी ।
ख़ुशामद जो हाकिम की करता है यार ;
वही इस ज़माने में है होशियार ।
मिले नौकरी माल की टोकरी ;
सभी बात में बात उसकी खरी ।
ख़िताबों की हो नाम में फिर क़तार ;
हरफ़ पर हरफ़ लग रहे शानदार ।
मिले उसको दरबार में मंच भी ;
बने चौधरी, फिर बने पंच भी ।
मनाओ ख़ुशामद की जय-जय सभी ;
बस, होगा तुम्हें चैन इस दम अभी ।

इस मंगलाचार के पश्चात् मुँहफट गुरु ने दूसरा स्तोत्र यों पढ़ा—

मिलि सब कहो पुकार-पुकार;
खोखलपन की जय-जयकार।
यही आज भारत के देव;
जो चाहे, सो इनसे लेव।
इन पर सबका पूरा भाव;
रहती इन पर कभी न पाव।
और जंग में पड़ी हुँकार;
खोखलपन की जय-जयकार।

इस स्तोत्र के बाद गुरुजी ने कहा—सभ्यगण, जी में आता है, तुम्हें असभ्यगण कहूँ। बुरा मानना, तो दो रोटी ज़्यादा खा लेना। हो तुम इसी के पात्र। क्या समझ देश से निकल भागी? जिधर देखिए, मूर्खता के बादल दिखाई देते हैं। अरे बेवक़ूफ़ों की नानी बेवक़ूफ़ी, भारत में—"जिधर देखता हूँ उधर तू-ही-तू है"। जर्मन दुष्ट का युद्ध छिड़ गया। हज़ारों-लाखों के प्राण और अंगों पर बीती, और बीत रही है। पर तुम इस लायक़ भी न निकले कि सरकार को तुमसे कुछ मतलब की बात मिलती। बस, ख़ाली काग़ज़ों के घोड़े दौड़ाने लगे। बीबियों की तरह सभाओं में गीत गाने लगे। हत् तुम्हारी दुम में रस्सा! अरे जाओ, आगे बढ़ो, सरकार से कहो, वालंटियर नहीं, तो सेना के सिपाही ही बनाओ। अरे तुम किसी काम के नहीं निकले। और-तो-और, जर्मन की बनी चीज़ों का आना बंद हो गया, और तुम्हारे कुछ बनाए न बना। अब जापान का माल धमाधम गिर रहा है, और तुम उसे देखकर एक शायर के कथनानुसार लैला-मजनूँ का स्वाँग दिखा रहे हो—

"हो गया सकता मुझे, बन गई तसवीर सफ़ेद ।"

तुमको चाहिए कि सरकार के प्रधान राज्याधिकारी लॉर्ड हार्डिंज के घर जाकर धरने पड़ो ; कहो, हमको लड़ाई में भेजो । हम साम्राज्य का अपमान देख नहीं सकते । वह आप वालंटियर बनाने की आज्ञा देंगे । राजभक्ति इसे कहते हैं । मुँह से बक-बक किए जाना, अंदर से किसी इयाँ-मियाँ की जीत पर खुश होना राजभक्ति से परे है ।

"कहे कुछ, करे कुछ, वह आदम नहीं है ;
वह मक्कार है लानतों का ख़ज़ाना ।"

इति पंचपुराणे अष्टषष्टितमोऽध्यायः

एकोनसप्ततितम अध्याय

अक़्ल के दुश्मन

लाला चकोतरापरसाद पुराने ख़ानदानी हैं । इनके बड़े लोग बादशाही में किसी बड़े पद पर थे, और वह बड़ाई कुटुंब में अब तक चली आती है । लाला का रंग बिलकुल मसी अर्थात् रोशनाई का सगा भाई है, और शीतलादेवी के प्रसाद से मुख पर कुछ ऐसे ढंग के दाग़ हो गए हैं कि मुख का स्वरूप चकोतरा क्या, कटहल का समतल दृष्टिगोचर होता है । लाला ने नर-जन्म में आकर मुसलमानों ही से विशेष संबंध रक्खा; उन्हीं की भाषा पढ़ी, उन्हीं के आचरण ग्रहण किए । फल यह निकला कि यह कहने को तो हिंदू, पर कर्मों से मुसलमान हो गए । इतना होने पर भी लाला में हिंदूपन का कुछ अंश बाक़ी अवश्य रहा । राजा की जाति के कार्यों का प्रभाव प्रजा पर विशेष पड़ता है । जैसे आजकल अँगरेज़ों की नक़ल और अधूरी शकल बनाकर लोग अरुड़-फूँ करते वरों से

निकलते हैं, वैसे ही मियाँ-फ़ैशन की कुछ दिनों बड़ी धूम रही। अनेक स्त्रियों से संबंध रखनेवाले—मुख्य कर तवायफ़ों के संरक्षक या 'पेट्रन'—उस समय ऐसी प्रतिष्ठा से देखे जाते थे, जैसे इन दिनों ऑनरेरी मजिस्ट्रेट या म्युनिसिपालिटी के पंचायती कमिश्नर। चौगोशिया टोपी, अँगरखा, चपकन और पाजामे से उस समय से हिंदुओं का जामा बिलकुल बदल गया था। पर एक बड़ा भारी फ़र्क़ था।

आजकल अँगरेज़ी की दीक्षा से दीक्षित लोग जैसे पाश्चात्य लोक-मूढ़ता में पड़कर पुरानी बातों पर नाक-भौं सिकोड़ते और बाप-दादा आदि को अनादि काल का मूर्ख समझते हैं, उस प्रकार वैसा वे लोग नहीं समझते थे। धर्म आदि के कार्य उन महम्मदी शैली के हिंदुओं के बराबर होते थे। सब बातों में मुसलमानी रंग की झलक बिलकुल उठ नहीं गई थी। लाला चकोतरापरसाद ऐसे ही ढंग के हिंदू हैं। यह मुसलमानी राज्य के बड़े पक्षपाती हैं। इनका चले, तो देहली में मुग़ल और चंगेज़ख़ाँ के घराने का कोई-न-कोई लाकर उसको देहली का नवाब बनाकर ही छोड़ें। पर लाचारी यह है कि इनकी राय के सुर में सुर मिलानेवाले बहुत कम हैं, और अँगरेज़ी की कृपा से हिंदुओं में कुछ अपनी जाति की परिपाटी ग्रहण करने का रंग भी रँग जाता है। यह सब है; पर लाला की धुन पुरानी ही तरफ़ है। बात-बात में वल्लाह, वेद को कुरान और देवालय को दरगाह कह देना इनका साधारण स्वभाव-सा हो गया है। ईरान और रूम के महत्त्व को भी यह काशी और पुरी से कम नहीं कहते। आपकी राय में यह बात कूट-कूटकर भर दी गई थी कि एक-न-एक दिन रूम के शाह, जो धार्मिक ख़लीफ़ा हैं, संसार को जीतकर धर्म का भंडा प्रकाशित करेंगे। पर यह आशा निराशा में परिणत हो गई। रूम का सर्वस्व छिन गया। मिसर, मोरक्को, अलजीरिया,

ट्रिपोली और बालकन, सब उसके हाथ से एक-एक करके निकल गए। यह बेचारे इस कारण तोबा-तिल्ला की उपासना करते ही रहे कि जर्मन-युद्ध छिड़ गया, और लाला चकोतरामल के उपास्य देवता रूम के सुलतान जर्मन की तरफ़ जुट गए। अब इनको बड़े-बड़े स्वप्न आने लगे। कभी यह हिसाब लगाते कि मिसर को छीनकर रूम भारतवर्ष पर चढ़ दौड़ेगा; कभी यह अनुमान होता कि अमीर काबुल की मदद लेकर रूमी सेना पंजाब पर टूट पड़ेगी। लाला को जर्मन से कुछ मतलब नहीं; पर वह रूम की जीत मनाने में ज़रा भी कसर नहीं रखते। यही इनकी हार्दिक मनोकामना है। रूम-सुलतान के परम भक्त लाला के यहाँ जब कभी कोई उत्सव होता है, तो बाज़ार में बैठकर प्रतिष्ठा पर पानी फेरनेवाली बीबियाँ अवश्य बुलाई जाती हैं। वही इनके समाज में मांगलिक और शुभकारी समझी जाती हैं। वेश्या और डॉक्टरी दवा एक ही श्रेणी की चीज़ें मालूम पड़ती हैं; क्योंकि इनमें स्पर्शास्पर्श का दोष नहीं गिना जाता। पशुओं की आँतों का अर्क़ डॉक्टर के घर से लाकर बड़े-बड़े लंबे तिलक का ट्रेडमार्क लगानेवाले हड़प कर जाते हैं, और वेश्या के पतित अंग का स्पर्श करके अनंग के रंग में रँगे त्रिपुंड्र-धारी भी कैलाश में पहुँचने के दावे से हाथ नहीं धोते। यदि हिंदूपन को शिकस्त देकर उसके आचार पर कुठार किसी ने मारा है, तो इन्हीं दोनों ने। उस पर तुर्रा यह कि अब इनसे हिंदुओं की घृणा बिलकुल उड़ गई है। ख़ैर, लाला के यहाँ महोत्सव के समय वेश्या-मंडली बुलाई गई। रात-भर बड़े-बड़े गीत, हा-हा-ही-ही और अलाप होते रहे। बोतलवासिनी भी खूब उड़ी, और प्रातःकाल होते-होते कई आदमी नशे में आकर अवाही-तवाही बकने लगे। उन्मत्त अवस्था में कुछ उनकी छिपी बातें भी प्रकट होने लगीं, जिनको सुनने से बड़े-बड़े रहस्यों का पता चल सकता है। पर जासूसी

काम का शायद वहाँ कोई जाननेवाला नहीं था। जब गाना समाप्त हो गया, तब मुबारकबादी या बधाई गाई जाने लगी, जिसका कुछ अंश उल्लेखनीय है—

बधाई

आज बरसात का आराम मुबारक होवे ;
ऐशो-आराम का यह काम मुबारक होवे।
मुँह में कुछ और कुछ दिल में, यही सूरत हो ;
बस में हो जायँगे हुक्काम, मुबारक होवे।
ख़ैरख़्वाही की अदा सबको छिपा लेती है ;
"जी हुजूरों" को यें गुलफ़ाम मुबारक होवे।
दुश्मनों से जो दोस्ती का वास्ता रक्खे ;
उसकी बुनियाद यह बदनाम मुबारक होवे।

यह गीत कुछ नशे की हालत में थे ; पर बात पक्की थी। लाला चकोतरामल के समान ब्रिटिश-राज्य की शांतिमयी रक्षा में रहकर जो रूस या किसी की जीत से प्रेम दिखा रहे हैं, वे चाहे जैसे हों, पर "अक़्ल के दुश्मन" ज़रूर हैं। ऐसों को नंबर अव्वल कहा जाना चाहिए। दूसरे नंबर के बुद्धि-शत्रुओं का वर्णन किसी आगे के उपाख्यान में आवेगा।

इति पंचपुराणे प्रथमस्कंधे एकोनसप्ततितमोऽध्यायः

सप्ततितम अध्याय

गोवर-गणेश

सुधारक-दल के लोगों को पुत्रोत्सव का हर्ष मनाना चाहिए, क्योंकि उनके काम की एक बात का पता लगा है। यहाँ से थोड़ी दूर पर एक बौखल-नगर की बस्ती है। वहाँ के लोगों ने एक गोवर-

गणेशी नाम की सभा स्थापित की है। इस सभा के सदस्यों या मेंबरों को गाँठ की एक वराटिका भी नहीं देनी पड़ती। किंतु साल में एक वार गोवरगणेश-महासभा में बैठकर तालियाँ पीटना और "हुर्रे" का महापाठ ही करना पड़ता है। गोवरगणेशी कानफ्रेंस के जीव हैं तो आधुनिक सभ्यता ही के लोग, पर वे अपने सिद्धांतों को प्रजापति के समय से उत्पन्न मानते हैं। वे यह कहते हैं कि ब्रह्मा ने जब दुनिया बनाई, तब वे कई भूलें कर गए, और उसी से समाज में बुराई उत्पन्न हो गई है। गोवरगणेश लोग लोकमत की सहायता से ब्रह्मा को नौकरी से डिसमिस कराने की फ़िक्र में लगे हैं।

हाल में उनकी महासभा का जो अधिवेशन हुआ, उसमें गोवरगणेशों के उस्तादों ने यह कहा कि विवाह की प्रथा चलाकर लोगों ने बड़ी मूर्खता का काम किया है। विवाह होना नेचर या प्रकृति के विरुद्ध है। कोई भी जानवर व्याह नहीं करता; तब मनुष्य, जो जानवरों का गुरु है, क्यों गृहस्थी के बंधन में पड़कर अपनी स्वतंत्रता के गले में फाँसी लगाता है? आपने कहा कि प्राचीन रिफ़ार्मरों ने विवाह का झगड़ा मिटाने ही के लिये वेश्या-वृत्ति की सृष्टि की थी, और उनकी कृपा से अब इसकी ऐसी उन्नति हुई है कि इसके आगे सब पुराने धर्मों को करारी शिकस्त खानी पड़ी है। जो लोग कहते हैं कि हिंदू-समाज में एका होने की कोई बात नहीं है, वे आँखें खोलकर नहीं देखते। यदि देखते होते, तो उनको इतना तो ज़रूर ही मालूम होता कि वेश्या के द्वारा चारों वर्ण एक बिरादरी के रूप में हो जाते हैं; उसके कोठे या कमरे के ऊपर जाते ही—"सर्वे वर्णा द्विजातयः" के नियम के अंदर आकर बिलकुल स्वतंत्रता की अमलदारी में चले जाते हैं। इन सब बातों को विचार कर गोवरगणेश-दल ने अपनी महासभा में यह रिज़ोल्यूशन या

मंतव्य पास किया है कि संपूर्ण वेश्याओं को सुधारक-दल की तरफ़ से धन्यवाद दिया जाय। प्रकृति का स्वभाव ही परिवर्तन है। संसार की सब बातें समय पाकर आप ही बदला करती हैं। समाज, राजनीति, आचार-विचार, कोई इस नियम से बचा नहीं है। पर गोबरगणेश-संप्रदाय के लोग इन संपूर्ण परिवर्तनों को अपनी सुधार-सभा का काम समझा करते हैं, और उनका वर्णन करके थपोड़ी पीटना ही देश-प्रेम का महाकार्य समझते हैं। इस आधार पर इनकी सभा में नीचे लिखे हुए मंतव्य पास किए गए—

(क) अब मंदिरों की आवश्यकता नहीं है; क्योंकि गली-गली देव-मंदिर हैं। उनकी कमी होनी चाहिए। इसलिये लोने और टूटे प्लास्टर का धन्यवाद करना चाहिए; क्योंकि वे पुराने मंदिरों को सुधारक-समाज की तरफ़ से हानि पहुँचा रहे हैं। दूसरा धन्यवाद का वोट हिंदुओं की उस लापरवाही को मिलना चाहिए, जो उनकी मरम्मत नहीं होने देती।

(ख) जो हिंदू छुआछूत का झंडा लेकर दिन-भर फुदकते थे, वे भंगी और मुसलमान आदि के छुए हुए पानी में भक्ष्याभक्ष्य पदार्थों से बनी दवाएँ गटक जाने लगे हैं। गोबरगणेश सुधारक-समाज बोतलों, मिक्सचरों, डॉक्टरों, कंपौंडरों और सब रोगों का शुक्रिया अदा करता है, जिनकी कृपा से समाज में यह परिवर्तन हो गया है।

(ग) रोग का बहाना करके भक्ष्याभक्ष्य का ग्रहण करनेवालों के कान काटनेवाले सोडावाटर और लेमोनेड के व्यापारी उनसे भी बढ़कर धन्यवाद के पात्र हैं, जिन्होंने अपनी गोले की गोलेदार-बोतलों के ऐसे गोले मारे कि पुराने आचार-विचार के क़िले को बिलकुल धराशायी बना दिया। चारों वर्ण एक पात्र में भोजन

करने लगे। अतएव गोबरगणेश-सभा होटलों के मैनेजर, रेलवे के 'केटरर', ख़ानसामा, बावर्ची, शीशे के गिलास और बोतलों के काम की भी प्रशंसा करती है। उन्होंने सुधारक-समाज की रिफ़ार्म-पार्टी को बहुत लाभ पहुँचाया है। आशा है, वे भविष्य में स्त्री-समाज में भी अपना प्रभाव फैलावेंगे।

(घ) लोग जूते पहनकर जल-पान करने को बुरा नहीं समझते। यह भी एक बड़ा भारी परिवर्तन हो गया है। अतएव गोबर-गणेश-सभा चमारों, चमड़े के व्यापारियों, सक्लुओं, चर्म-व्यापारियों और पशु-रोगों को हार्दिक धन्यवाद देती है, जिनके बनाए जूतों के समूह समाज में रिफ़ार्म कर रहे हैं, तथा जूतों के प्रति भी इस कारण कृतज्ञता प्रकाश करती है कि वे पंजे से बढ़ते हुए पूरे पैर और शिकारियों की रानों तक शरीर पर अधिकार करने लगे हैं, और उनकी जाति के लोग फ़ेल्ट कैप से मिलकर भलेमानसों के सिर पर बैठने के परम पद पर पहुँच गए हैं। इस प्रकार इस सभा की प्रथम दिवस की कार्यवाही में ये मंतव्य पास किए गए, और सभापति महाशय को चार आदमी कंधे पर लादकर आश्रम में पहुँचा आए। मार्ग में बड़ी "हो-हो", "हुर्रे-हुर्रे" की ध्वनि से आकाश-मंडल परिपूर्ण हो गया। इसकी रिपोर्ट आगे चलकर निकलेगी। आज का अध्याय यहीं समाप्त होना उचित समझा जाता है।

इति पंचपुराणे प्रथमस्कंधे सप्ततितमोऽध्यायः

एकसप्ततितम अध्याय

पंडिताभास

नवीन सभ्यता की कृपा से अनेक ऐसे जीव उत्पन्न हो गए हैं,

जिनकी लीला का पूरा पता लगाना एक बड़े भारी तत्त्वान्वेषण का क़ाम है। अहंकार, लोभ और साहित्य-संबंधी योग्यता के ऐसे-ऐसे नमूने देखने में आते हैं, जो प्राचीन नाटकों के विदूषकों का दृश्य सामने खड़ा कर देने में कसर नहीं रखते। इसी श्रेणी के एक नर-रत्न का थोड़ा-सा हाल रिपोर्टर ने यों लिखकर भेजा है—

लाला चकोतरामल के लड़कों में थे तो सब नीले-पीले गंडेदार, किंतु खाने-पीने की पैदा सब ही को रही। अब उनमें से एक बाहर से कहीं कुछ अँगरेज़ी पढ़-लिखकर आया है। उसके स्वभाव को देखकर तो साक्षात् "अल्ला मियाँ" के पटैत श्रीमान् शैतान साहब याद आ जाते हैं। कई दिन हुए, एक साहब उन बाबू साहब को लेकर एक स्थान पर पधारे। उनका फ़ैशन देखकर तो कुछ विशेष बात नहीं प्रकट हुई; क्योंकि सदा से पोशाक में परिवर्तन हुआ ही करता है। किंतु हैट की ख़ूबी ने पाश्चात्य फ़ैशन के प्रभाव की ख़ूबी अवश्य प्रकट कर दी, और जान पड़ा कि वह दिन दूर नहीं है, जब देसी टोपियों को भी शिकस्त खाकर मैदान छोड़ना पड़ेगा। ख़ैर, थोड़ी देर में जब सलाम, बंदगी और मुलाक़ात कराने की रीति हो चुकी, तो हैटबाज़ बाबू से बातचीत होने लगी। जान पड़ा, आप अपने को सर्वविद्यानिधान मानने में ज़रा भी संकोच नहीं करते, और साहित्य के तो मानो अवतार ही होने पर कमर कसे हैं। जान पड़ा, आप कवि भी हैं, और नहीं हैं, तो उसकी कीर्ति के प्रार्थी अवश्य हैं। आप कहते हैं—"मिल्टन ने ब्लैंक वर्स (तुक-हीन काव्य) लिखना आरंभ किया था, मैं उसका पोषक हूँ। मैंने कविता के लाखों पद बना डाले हैं, और वे नवीन दुनिया में बड़ा काम देंगे।" साहब की इस बात को सुनकर लोगों को कविता का प्रेम सवार हो गया, और बड़ी नख़रेबाज़ी के साथ आपने अपना यह काव्य सुनाया—

अनुष्टुप् छंद

थोड़ा-बहुत सभी करते नमस्कार च वंदगी ;
कविता के मंगलाचारी मूर्ख ही भासते हुए।
मिल्टन पढ़ा बड़ा हमने, शेक्सपीयर के ग्रंथ दो ;
बेरन, पोपो, टेनिसनूच बाक़ी क्या बात अब रही।
देखो, इल्म यही तो है, उसकी बढ़ती फ़िलासफ़ी—
की दो-चार किताबें भी, भए पंडित महामर्वा।
कविता तुम्हें सुनाते हम, जो किसी ने सुनी नहीं ;
कालिदासो तथा तुलसी कविता इससे गिरी कहीं।
नायिकाभेद सब बेढब, अलंकारी ख़राब हैं ;
ये सब बातें बौखलों की उनको हम मानते नहीं।
रची हमने महाविद्या, रामायण की कथा सभी ;
वे ही काव्य सुनो भाई, और देखो महामुनी।
अष्टाक्षर अनुष्टु प् के, नौ-दस भी हम बना दिए ;
यह तरक़्क़ी नहीं ग़लती समझना दोस्तजी इसे।
जानकी राम को लेके चली जंगल में यों सुनो ;
जैसे गैया चली चरने या लेडी बाग़ में चली।
रामाभेष बुरा-सा था, कोटोपतलून था नहीं ;
हैटी बूटी नहीं वह था, उसकी उपमा बने नहीं।
लँगोटा बाँध के लक्ष्मण कूदे खूबी महामुने ;
क्रीकेट खेले मनो हाकी, या टेनिस् के खिलाड़ी हैं।

पंडित-शब्द का अर्थ किसी समय "सत्यासत्य का निर्णय करने में समर्थ पुरुष" कहा जाता था ; पर अब उसका मतलब कुछ और ही हो गया है। लोग पंडित या विद्वान् उसे कहने लगे हैं, जो स्वेच्छानुसार इधर-उधर की बातें जोड़कर बात बना देने में चतुर हो। जिसे लोग किसी समय धूर्त कहा करते थे, वही आजकल

पंडित, विद्वान् और आलिम की श्रेणी में युक्त होता दिखता है। इस परिपाटी का फल यह निकला है कि अब विद्वानों में सत्य बेचारा फुटबाल होकर इधर-उधर ठुकराया जा रहा है, और चाल-बाज़ी कुलदेवता के समान पूजी जाती है। ऐसी दुरवस्था में बगड़े-बाज़ी की खूब बन आई है। प्रत्येक नाम पाने की इच्छा करनेवाला पुरुष अपने जाल में सीधे लोगों को फँसाकर विद्वानों का "खान-खाना" बनने और अहंकार करने में कसर नहीं रखता। चकोतरा-मल का साहब पुत्र इस अवसर पर क्यों चूकने लगा था? उसने स्कूल छोड़ने के बाद चार वर्ष कॉलेज की चरागाह में चरकर बड़ी कुलाचें लगाई थीं। वह अवसर को क्यों हाथ से जाने देता? उसने झटपट पोशाक का साइनबोर्ड लगाकर विद्वान्-कंपनी ही चला डाली। लोग एक विषय के पंडित होते हैं; किंतु नवीन साहब अपने सब विषय में पंडित होने का दावा करता है। साहब का नाम टेंटपरसाद कहा जाता था; किंतु उसका अँगरेज़ी द्वारा संस्कृत स्वरूप मिस्टर टेंट ही आजकल अधिक प्रचलित है। आज एक सभा में मिस्टर टेंट साहित्य की व्याख्या करने पर खड़े हुए हैं, और लोग बड़ी तड़तड़ की करतल-ध्वनि के साथ उसको सुनने की उत्कंठा दिखा रहे हैं। उनकी व्याख्या में यह बात कही गई है कि पुराने पढ़े लोग सब ख़रगोश थे, और नवीन विद्वान् सिंह के समान शिकार खेलकर विद्या को बढ़ा रहे हैं।

इस प्रकार मिस्टर टेंट ने प्राचीन लोगों की बड़ी निंदा की, और कहने लगा—यह निंदा नहीं, किंतु आलोचना है। उसकी इस धूर्तता को देखकर सभा के सब लोग चकित हो गए। इतने में एक मस्त-राम भी सभा में खड़े हो गए, और बोले—मैंने "टेंट माहात्म्य"-नामक एक महाकाव्य बनाया है। सबकी सम्मति लेकर वह सभा-मंडल को उसे सुनाने लगे। उस कविता के कुछ पद इस प्रकार थे—

जब कि पंडित बने हैं टट्टू के;
अब न कुछ पंडिताई बाक़ी है।
करके नक़लें जहाँ को रँग डाला;
तब भला क्या भलाई बाक़ी है?
हर जगह अपनी धुन धुने जाना;
यही पंडित का ठाट मस्ताना।
पास होकर जो मिल गई डिगरी;
बस ग़रीबी से ज्यों उठी ठिकरी।
लगे बस ऐंठ औ अकड़ के साथ;
हुआ संसार-भर में ऊँचा माथ।
पर यें झूठा गुमान था जी का;
मज़ा कुछ दिन में हो गया फीका।
पंडिताई का फल बुरा निकला;
नौकरी ही का वह धुरा निकला।
समझते थे बड़ा जो अपनेको;
बात बतला रही है सपने को।
रात-दिन बैल के बने भाई;
क़लम घिसने में बस, है गुरुताई।
हकूमत की जो चल पड़ी चक्की;
बुद्धि सब हो गई है भौचक्की।
उड़ गया सब दिमाग़ का पानी;
स्वप्न में दिख रही है अब नानी।
भूल जावेगा सारा टट्टू-राग;
रहेगा नौकरी का दिल पर दाग़।
काम मिल्टन न कुछ है अब आता;
शेक्सपीयर से अब न है नाता।

पंडिताभास

रात-दिन कूटनी पिसौनी है;
गति यही ज़िंदगी की होनी है।
यह हुआ; पर न कुछ समझ आई;
छा रही खोपड़ी में बौराई।
वन के साहित्य के लँडूरे खग;
बनते हैं कालिदास के लगभग।
जूठनें लेखकों की ले-लेकर;
लेख लिखते हैं ज़ोर दे-देकर।
मरे कवियों को फिर से हनते हैं;
दिग्गजी बस इसी में बनते हैं।
नक़ल करने में ग्रंथकारी है;
शारदा भी इन्हीं से हारी है।
कभी कहते पुराने नीचे थे;
तत्त्व से खूब. आँख मीचे थे।
व्यर्थ है नायकादि-भेद सभी;
अलंकारों को काटते हैं सभी।
पर कभी सत्य का न होगा नाश;
छोड़ दो,जो समझ है,इसकी आश।
बात चलती नहीं है धोके की;
फुलझड़ी है यँ एक मौक़े की।
इससे टेंटें की छोड़ के चकचक;
सदा साहित्य के बनो सेवक।
फिर बनावट तो खुल ही जावेगी;
ढींग फिर कुछ न काम आवेगी।

इति पंचपुराणे प्रथमस्कंधे एकसप्ततितमोऽध्यायः

द्विसप्ततितम अध्याय

बाबू से खाँ

हाल में एक बाबू साहब ने एक पत्र लिखा है, जो स्वयं ही खूब बोलता है। उसको प्रकाशित कर देना ही आज की कथा का समयोचित प्रसंग है। पत्र यों चलता है—जनाब पंडित साहब, आज से मुझको हिंदू न समझिएगा। मैं ऐसी हिंदुअत से दर गुज़रा, जिसमें सरासर मार खानी पड़े, और चपतों के मारे खोपड़ी या चपतगाह का महापर्व हो जाय। ऐसा हिंदूपन मुझे पसंद नहीं। इसको आप अपने पास ही रहने दीजिए। यह आपको मुबारक रहे। मैं अब अपना नाम बदलना चाहता हूँ। बाबू-आबू का लक़ब उन्हीं को दीजिए, जो बाज़ार में पिटना पसंद करें, जिनकी रिपोर्ट भी न लिखी जाय, और जिनके भाई यहाँ तक चपतख़ोरी के प्रेमी हों कि फिर भी पीटनेवालों के हाथ जोड़ने और उनके सामने नाक को घिसे हुए भुश की नातेदारिन बनाने में आगा-पीछा न करें। मैं बाबू और लाला बनना नहीं चाहता। मुझको शेख़, सैयद या ख़ाँ कहकर पुकारा करिए।

और सुनिए, हिंदू बनने में एक ही मुल्क हिंदोस्तान का नाम लेकर जन्म-भर रोना पड़ता है। मैं अब वह बनता हूँ, जिसकी मातृभूमियाँ सगी और सौतेली माताओं के समान दर्जनों हो जायँगी। ईरान, रूम, अरब, अफ़ग़ानिस्तान, बलोचिस्तान असली और हिंदोस्तान की ज़मीन सौतेली मा के समान काम देगी। कहिए, मैं आपकी हिंदुआई को लेकर चूमूँ या शहद लगाकर चाटूँ? आप जानते ही हैं कि गुस्सा सभी को आता है। ख़ुदा-न-ख़्वास्ता कहीं बेईमानी और बुराई देखकर जोश आ गया, और किसी पर हाथ चला बैठा, तो क्या होगा? शेख़ और ख़ाँ होने से मेरी सहायता को बिना फ़ीस के बैरिस्टर आवेंगे, बड़े-बड़े हाकिम मुझको

"बेटा-बेटा" कहकर पुचकारेंगे, और जेलख़ाने की तकलीफ़ से बचूँगा। पर जो कहीं आपकी तरफ़ रहा, तो बस, पूरा मरन है। सीधे हथकड़ी पहनकर अयोध्या के साधुओं के समान जेलख़ाने की हवा खाता रहूँगा, और मेरे भाइयों के कान में जूँ तक न रेंगेगी। इससे भाई, मैं हिंदू कहलाने से बाज़ आया। माफ़ कीजिए। मेरा नाम रामदास है। अब आप मुझे करीम, रहीम, हुसैन अथवा हैदरदास कहिएगा। मैं इस रामदासी को इस्तीफ़ा देता हूँ।

एक बात और है। मुसलमान बनने से मुझे कौंसिल में जाने का मौक़ा मिलेगा। थोड़ी हैसियत और लियाक़त से मैं वोटर बन जाऊँगा। मेरे लिये कौंसिल में जाने का ख़ास प्रबंध होगा। साहब लोग मेरी ख़ातिर और नेशनलिस्ट लोग मुझे झुक-झुकके सलामें करेंगे। कहिए, यह क्या कम फ़ायदा है? इसलिये भगवान् के वास्ते—नहीं-नहीं भूल गया, ख़ुदा के वास्ते—मुझे मर्दुमशुमारी में हिंदू न लिखिएगा। मैं हिंदुअत से नाता तोड़ देना ही पसंद करता हूँ। देखिए, मेरी बात मानिए। आप भी अपने को सैयदानंद कहा कीजिए। बंगवासी को बंगालीहुसैन, भारतमित्र को मोग़ल-मित्र, विहारबंधु को कंदहार-बंधु और वेंकटेश्वर को बाँकेख़ाँ कहे जाने की सलाह दीजिए। तुम्हारा भगवान् और हमारा ख़ुदा तुमको सुबुद्धि दे। जो कहीं आप और आपके सहयोगी फिर से मेरी राय के मुताबिक़ अपना नाम बदल डालें, तो क्या कहना है? ज़माने में इब्राहिम दिखाई पड़ेंगे। बड़े-बड़े हमारे रोब में इस तरह काँपेंगे, जैसे झंझावात में ग़रीब बेंत का पेड़।

यह मानना या न मानना आपके अधीन है। पर इतना फिर कहूँगा कि मुझे हाल की बातें देखकर हिंदू-समाज से वैराग्य हो गया है। मेरा पता पहले यह था—बाबू रामदास, द्वारकाधीश का ठाकुर-

द्वारा, रानीकटरा, लखनऊ । अब यह पता यों लिखा जाना चाहिए—शेख़ रामदास उर्फ़ रहीमदास, दरगाहे दुआरका, पैग़ंबर, बेगमगंज, लखनऊ ।

इति पंचपुराणे प्रथमस्कंधे द्विसप्ततितमोऽध्यायः

त्रिसप्ततितम अध्याय

ढोलक शास्त्री

श्रीमान् पंडितों की जान, विद्या की खान महाराज ढोलक शास्त्री का दम भी ग़नीमत है। आपके पैदा होने के समय इतनी 'गौनई' हुई थी कि "धमधम-धक्का" के तुमुल शब्द और धक्कों के मारे बेचारी अनेक ढोलकों के प्राणों पर बीती थी। इसी कारण, या अपनी विद्या की दुंदुभी पीटने के स्वभाव से, लोक में, महाराज को, लोग ढोलक शास्त्री के नाम से पुकारते हैं। पंडितराज ढोलक की यही तारीफ़ क्या कम है कि आपकी बात का कोई जवाब नहीं दे पाता।

इसका भी एक विचित्र उपाख्यान है—

कहते हैं, जब विद्यावारिधि शास्त्रीजी पुरानी चटशाल के कारख़ाने में डाले गए, तो पुराने नियम के अनुसार आपको दक्षता का सार्टीफ़िकट लेने के निमित्त पंडितों की सभा में पहले वाक्य-युद्ध में पैंतरे दिखाने का काम करना पड़ा था। उसमें यह कई बार लंबे-लंबे लोट गए। प्राचीन ढंग के मरकहे पंडितों ने इनके "अवच्छेद-कावच्छिन्न" के ऐसे पंजे मारे कि ढोलकजी ढोलक होकर इधर-उधर ढुलकने की अवस्था पर पहुँच गए। कई बार हार-पर-हार होने से पंडित महात्मा के गले में निर्लज्जता का हार पड़ गया, और अब इनको सूझा कि पंडिताई की जड़ जमानेवाली एक धूर्तता देवी है, बिना उसकी उपासना के शास्त्रार्थ-सागर के

पार होने का और कोई उपाय नहीं । धूर्तता देवी के महाप्रसाद से एक हथेली पर दूसरी हथेली को पटक-पटककर आप मन-मानी बकते जाते हैं, दूसरे की सुनते ही नहीं। इसका फल यह होता है कि जो संस्कृत नहीं जानते, वे आपको गणेश का अवतार मानकर नामवरी की ढोलक पीट देते हैं । इसी प्रकार इनकी पंडिताई की धूम दिन-दिन बढ़ती चली जाती है। एक दिन की कथा यह है कि पंडित ढोलकराज किसी मूर्खानंद यजमान के घर पूजन करा रहे थे। उसमें कहीं संकल्प बोला गया। संकल्प आपका विचित्र था । "देवानां पूजनमहं करिष्ये" की जगह आपने फ़र्माया— "देवानां पूजनो मया करिष्ये" । इस पर एक पंडित ने आपको टोककर कहा—"इदमशुद्धम्" । अब क्या था ? दोनों तरफ़ से शास्त्रार्थ की बाढ़ें चल पड़ीं । बातचीत संस्कृत में हुई । उसको उद्धृत करने पर कथा के पाठकों के लिये अनुवाद की आवश्यकता पड़ेगी, इसलिये हिंदी में अनुवाद देना ही यथेष्ट होगा । पंडित के रोकने पर ढोलक महाराज ने कहा—मेरे से कहा हुआ वाक्य—पूजनो मया करिष्ये—कभी अशुद्ध नहीं है ।

पंडित बोला—'मया' पद कर्ता के स्थान में कैसे आ सकता है ? फिर 'पूजनो' यह कर्म कैसा ? यदि 'करिष्ये' क्रिया ठीक भी है, तो भी आपका वाक्य अशुद्ध है ।

इस पर ढोलक शास्त्री ने तर्क-संग्रह की टीका का "मंगलस्य कर्तव्यते किं प्रमाणम्" से लेकर दो-तीन पृष्ठ का पाठ कर डाला, जिसमें पंडित की बात का उत्तर कुछ भी नहीं आया ; किंतु सुनने-वालों ने यही समझा कि ढोलकजी पंडित का जवाब दे रहे हैं । बड़ी गड़बड़ मची । अंत को शास्त्रीजी लाला यजमान को मध्यस्थ बनाकर फिर शास्त्रार्थ का खंडन हिंदी में करने पर राज़ी हुए । उस हिंदी शास्त्रार्थ की लीला यों हुई—

ढोलक—अरे महात्मा, इसमें अशुद्धि क्या है ?

पंडित—'पूजनम्' कर्म को 'पूजनो' कहते हैं, क्या यह कर्म की भूल नहीं हुई ?

ढोलक—और 'करिष्ये' के साथ 'मया' ठीक है ?

पंडित—कैसे ठीक है ? इस क्रिया के साथ, लाला साहब, 'मया' करण आ ही नहीं सकता।

लाला ने कहा—पंडितजी, हमारी कुछ समझ में नहीं आया। समझाकर कहिए।

ढोलक शास्त्री ने कहा—लालाजी, यह कहता है, 'क्रिया-कर्म' ठीक नहीं बना। हम शुभ कार्य के पूजन में 'किरिया-कर्म' की बात नहीं करना चाहते। पर यह देहाती सगुन के समय किरिया और सतरहीं की बातें करता है।

यह सुनकर शास्त्रार्थी पंडित कुछ कहना चाहता था; किंतु लालाजी ने यह कहकर उसे रोक दिया—"सुनो महाराज, तुम गाँव के रहनेवाले हो। तुम किरिया-कर्म जानते हो। पर यह सगुन का पूजन है। यहाँ इन सब बातों का काम नहीं।"

यह सुनकर पंडित वहाँ से उठकर भागा, और ढोलक शास्त्री की जीत की ढोलक बस्ती-भर में बजने लगी।

इस प्रकार धूर्तता देवी के प्रसाद से शास्त्री महात्मा की बड़ी धूम फैली है। अब सुना है, महाराज ने अपनी विद्वत्ता की ढोलक बजाने का एक नया ताल निकाला है। वह यह है कि आप नागरी-लिपि के अक्षरों को बपतिस्मा दिलाकर ईसाई कराया चाहते हैं। उनके रूपों को बिगाड़कर अरब के ऊँटों की गर्दन के समान टेढ़ी-मेढ़ी गर्दन के अक्षर नागरी में चलाने का विचार कर रहे हैं। आपका यह विश्वास है कि इन नवीन अक्षरों की लिखावट फुर्ती से ऐसी तेज़ होगी कि लोग उसको 'शार्ट हैंड' की नानी कहने में कुछ आगा-पीछा न करेंगे।

इस भविष्य लिपि की परिपाटी को क्रमबद्ध करने के लिये नीचे लिखा विज्ञापन समाचार-पत्रों में छापा जानेवाला है—

आवश्यक सूचना

(१) एक सोने का पदक उसको दिया जायगा, जो बिल्ली और कुत्तों की बोलियों का निर्माण करे। याद रहे, "भों-भों" "म्यूँ-म्यूँ" और "क्यूँ-क्यूँ" अक्षरों से इन जीवों की बोली का यथार्थ भाव प्रकट नहीं होता।

(२) इसी प्रकार शीतला-वाहन गर्दभराज की "सीपों-सीपों-घों-घों-घों-पों-पों" इत्यादि आंतरिक वृत्ति का पूरा-पूरा पता नागरी की वर्णमाला से प्रकट नहीं होता। अतएव कवर्ग-पवर्ग की जगह एक गले की नलीवर्ग के अक्षर बनाने बड़े ज़रूरी हैं। उनके निर्माण-कारक को रत्न-जटित तमग़ा मिलेगा।

(३) इसी प्रकार हारमोनियम के स-र-ग-म और सितार के दा-दिर-दारा के उपयोगी वर्ण नागरी-लिपि में नहीं हैं। अतएव खड्ज, ऋषभ आदि सात सुरों के हिसाब से प्रत्येक अक्षर सात प्रकार का होना चाहिए। इसके अनुसार नवीन वर्णमाला बनाने-वाले को तकमों का क़िबलेगाह या पितामह एक लोहे का टोप पहनने को मिलेगा।

(४) जो आदमी नवीन भविष्यपुराणी वर्णमाला को पसंद करेगा, उसको घोंघाचार्य की उपाधि प्रदान की जायगी।

एक, दो, तीन, और सवातीन—इस प्रकार ढोलक पीटकर महामहोपाध्याय ढोलक शास्त्री का विज्ञापन का ढिंढोरा संसार में सबको पीट-पीटकर सुनाया जायगा।

इति पंचपुराणे प्रथमस्कंधे त्रिसप्ततितमोऽध्यायः

चतुःसप्ततितम अध्याय

महर्षि विसकुटानंद

श्रीमान् कलियुगराज इधर कई वर्षों से किरानी-संप्रदाय की बातों पर श्रद्धा रखने लगे हैं। अनुमान किया जाता है, वह किसी शुभ मुहूर्त में गोस्वामी-परमहंस-पादड़ी-प्रवराचार्य से बपतिस्मा की दीक्षा लेकर, शिखा-सूत्र का श्राद्ध करके, पुरानी परिपाटी का बिलकुल बंटाधार कर डालेंगे। सुना है, नरक की क़ानून-सभा में यह प्रस्ताव स्वीकृत हुआ है कि सृष्टि का क्रम, जो संकल्प में ब्राह्मण पढ़ा करते हैं, निरा पुराना मटियाफूस हो गया है। उसकी जगह यों परिवर्तन या अमेंडमेंड होना चाहिए—"ओम् तत्सत्। अद्य परवरदिगारस्य प्रथमपरार्द्धे, श्वेत (अर्थात् कोरी) बोखला-हटकल्पे, ईस्टर्नहेमिस्फ़ियरद्वीपे, एशियाखंड-बंगाल-प्रेसीडेंस्यन्तर्गतप्रदेशे हिमविंध्ययोर्मध्ये, नईसभ्यतामन्वंतरे अष्टाविंशतितमे कलियुगे ट्वन्टीन्थ सेंचुरीनामचरणे अमुकसने अमुकतारीख्रे अमुक-घंटाभिमिंटापदः।"

नरक की क़ानून-रिपोर्ट से इतना ही प्रकट होता है कि भविष्य में कलियुग महाराज पुरानी बातों को बदलकर और-का-और अवश्य कर डालेंगे। किंतु इधर कुछ ऐसे लोगों का हाल सुनने और देखने में आया है, जिनको देखकर यह कहना अनुचित नहीं ठहरता कि शायद कलिदेव की तरफ़ से उस रिज़ोल्यूशन की अमली कार्यवाही भी होने लगी है। ऐसे एक महापुरुष परमहंस परिव्राजकाचार्य श्रीमान् महर्षि विसकुटानंद हैं। महाराज की सब बातें पूज्य आचार्यों के समान बढ़ी-चढ़ी हैं। आपकी चाल ने पुराने चाल-चलन को उलटी चाल का चापल्य बताकर तिरस्कृत कर दिया है। श्रीमान् का कथन है कि नंगे पैर चलना संन्यासी का धर्म नहीं। संन्यासी सम्‌ अर्थात् अच्छी तरह न्यास अर्थात् क़दम रक्खे, तभी

यह ठीक संन्यासी है। इस प्रकार का समन्यास विना वूट के हो नहीं सकता। अतएव डासन इत्यादि स्वेत पवित्र कंपनी के जूते संन्यासी को ही पहनने चाहिए। और, फिर कोपीन बाँधना बिलकुल ठीक नहीं ; क्योंकि इसका अर्थ ही कहता है कि कोपी न धारण करो—"कः अपि न कोपीन इति व्याख्यानात्"।

पतलून की उत्तर-मीमांसा महर्षिजी ने यों की है—पतलून का संस्कृत नाम पाताळडर्ण है, जिसका अर्थ है पाताल की ऊन के समान सर्वदा पवित्र। अतएव संन्यासी को इसका पहनना लाज़िम है। इसी प्रकार कमीज़ की व्याख्या यह की गई है कि कमीज़ का नाम सर्ट अर्थात् सरट है, जिसका अर्थ है सरट, यानी "वह रटता है" अर्थात् सोहम् को जो रटता है, वह सरट धारण करने का पूरा अधिकारी है। ज्याकट की व्याख्या में महात्मा चिसकुटानंद ने बड़ी चमत्कृत बुद्धि का नमूना दिखाया है। आप फ़र्माते हैं, ज्या अर्थात् पृथ्वी को काटने यानी त्यागनेवाला पुरुष ही इसको अंग पर विभूपित कर सकता है, और कोई नहीं। इसी प्रकार संपूर्ण नवीन पोशाक के अंग आपने शास्त्र और युक्ति से सिद्ध कर दिए हैं। सिद्ध करना कोई ऐसे महापुरुष के लिये कठिन बात नहीं ठहरती; क्योंकि आप सिद्ध ही ठहरे। सबसे बढ़कर बात यह है कि अपने महात्मा चिसकुटानंद ने मूर्खाचार्यों के समान खाने और दिखाने के दाँत अलग-अलग नहीं रक्खे। आप सिर से पैर तक विलायती सभ्यता की पोशाक की लादी लादकर लद्दू होने का प्रत्यक्ष प्रमाण भी देने लगे हैं।

महर्षि चिसकुटानंद चारपाई पर लेटे हैं। चारों तरफ़ भगत और भगतिनें उनको घेरे हुए हैं। महाराज सबको उपदेश देकर कृतार्थ कर रहे हैं। पहला उपदेश आपका यह था कि खाने-पीने की पवित्रता ही परम उपादेय है। इसी में सारा धर्म है। अतएव किसी-के हाथ का न खाना ही सबसे बढ़कर धार्मिक होने का चिह्न है।

इस प्रकार महाराज भोजन के ऊपर अपने भाव प्रकाशित कर ही रहे थे कि डाकिया एक पार्सल लेकर आया। भगतों में से एक लंबा तिलक लगाने के प्रेमी दौड़े। झटपट उसको "गंगा-विष्णु-गंगा-विष्णु" का छींटा मारकर खोलने लगे। उसके अंदर से क्या निकला, हंटली के कारख़ाने का बना बिसकुट का डब्बा। भगत बेचारे ने यह कभी काहे को देखा था। वह समझा, शायद यह गोलोक से महर्षि के वास्ते प्रसाद आया होगा। फ़ौरन् लेकर दौड़ा। उसको देखकर महाराज के छक्के छूट गए। पर ऊपरी मुँह बनाकर आपने कहा—"यह हमारे किसी विदेशी भक्त ने भेजा होगा। अच्छा, इसे रख लो। भगवान् को भक्ति सदा से प्यारी है। शबरी के बेर भगवान् ने बड़े प्रेम से खाए थे। यह हमारी किसी गोरांगिनी सेविका ने भेजा होगा।"

भगत लोग यह सुनकर धन्य-धन्य कहने लगे। किसी ने इस बात में महाराज को बड़ा समझा कि विदेशी गोरे रंग के लोग भी आपके मंत्र से दीक्षित हैं। पर इस धर्म को कोई न समझा कि उनके गुरुदेव बिसकुट के आनंद में पड़कर स्वयं विलायती सभ्यता के मंत्र से दीक्षित हुए हैं। जब महाराज की बड़ी प्रशंसा हुई, तो आप कहने लगे—"खान-पान को सगरो उपदेश भगतन के लिये है। हम अवतारिन के लिये नहीं। यासे हेतु या है कि गंगा में जो मिले, सो शुद्ध होयहै।"

इसको सुनकर भगतों ने फिर वाह-वाह का तार बाँध दिया, और गुरु महाराज अपना उपदेश फिर कह चले। आपने नवीन भक्तमाल की कथा का एक उदाहरण सुनाया। कहा—किसी नगर में एक बड़ा धनिक रहता था। इसका नाम पूर्ण पिशाच था। यह नितप्रति मांसभक्षियों को भोजन कराकर हिंसा का बड़ा प्रचार करता। बाप के श्राद्ध के दिन मौलवी और हाफ़िज़ों को

निमंत्रण देता। नगर-भर के मज़ारों और क़ब्रस्तानों की रोज़ परि-क्रमा किया करता था। फ़क़ीरों और साइँयों के नित्य चरण धोकर पानी पीता, और साधु-संन्यासियों को लकड़ी दिखाकर कालांतक का रूप दिखाता। जन्म-भर इसके धन से वधिकों और व्याधों का ही उपकार हुआ। पर अंत में वह भी गुरु-भक्ति के प्रसाद से नरक में जाने से बचा दिया गया।

इस कथा पर भी तारीफ़ की बड़ी प्रेम-वर्षा रही। इस अवसर पर कोट-पतलून पहने हुए महर्षि विसकुटानंद की तसवीर बनकर आई। उसको देखकर प्रथम तो यह मंडली कुछ सन्नाटे में आ गई; पर अंत को इसका अर्थ लीला करने के अंतर्गत लगाया जाकर यह भगतों के आनंद का कारण ही हुई।

यह विचित्र धर्मोपदेश हो ही रहा था कि एक मनुष्य दौड़ा हुआ आया। उसकी साँस नहीं समाती थी। जान पड़ा, बड़े झपेटे की दौड़ लगाकर आया था। वह कुछ कहना चाहता था, पर कह नहीं सकता था। मानो साँस और शब्दों की उसके गले में लड़ाई हो रही थी। थोड़ी देर बाद वह कुछ बोला, और अब महर्षि की और उसकी यों बातचीत होने लगी—

महा०—का भयो ?

आद०—ग़ज़ब हो गया, ग़ज़ब।

महा०—कुछ कहो तो।

आद०—ग़ज़ब हो गया, ग़ज़ब, महागजब।

महा०—अरे कुछ कहेगा भी ?

आद०—सब बात खुल गई।

महा०—क्या बातें सबन ने कह दीनी ?

आद०—कह दी कि मेरे से महाराज से गुप्त संबंध है, और उनसे ही बालक उत्पन्न भया है।

महा०—हरे-हरे ! या तो बड़ी बुरी सुनाई । पर देखो भगतजी, यामें कछू डर की बात नहीं। हमारो जन्म ही लोगन कूँ कृतार्थ और शुद्ध करिबे के निमित्त है। रही लोक-निंदा, या तो नृसंन की बकवाद है।

आदमी—गुरु महाराज, यह बात नहीं है। वह बालक फेंक दिया गया था, सो उस स्त्री का पुलीस में चलान हो गया है। उसका पति आप पर दावा करने गया है। फ़ौजदारी में मामला चलेगा।

यह सुनते ही भगत-मंडली चीत्कार कर उठी। इतने में पुलीस के चपरासी ने आकर ख़बर दी कि तहक़ीक़ात के लिये महाराज धर्माचार्य को थाने पर चलना होगा। भगत लोग इस आपत्ति से बचने के लिये पुलीस ग्रह-शांति का विधान करने लगे, और कथा के रिपोर्टर अपनी "खिसकंताम्" की पॉलिसी पर उतारू हुए।

इति पंचपुराणे प्रथमस्कंधे चतुःसप्ततितमोऽध्यायः

पंचसप्ततितम अध्याय

फ़ैशन-संग्राम

महाभारत से लेकर आज तक कितने ही संग्राम हो-होकर इतिहास महाराज के पेट में घुस गए। किंतु फ़ैशन का युद्ध अब तक जारी है।

प्रातःकाल से लेकर सायंकाल तक विशाल भारत के प्रत्येक नगर और घर में इसके मोरचों की बाढ़ लगी ही करती है। कहीं पुराने कुर्तों पर कमीज़ और सूट के ऐसे सरांटेदार धावे हुए हैं कि कुर्ते और मिर्जइयों की सेना तितर-बितर होकर तथा भागकर रेल के स्टेशनों से दूर-स्थित ग्रामों में ही जाकर छिपी है।

कोटों और जाकेटों में कहीं-कहीं ऐसी करारी लड़ाई हुई कि अँगरखों और उपरनों के क़िले बिलकुल धराशायी हो गए हैं । पर धोती और पतलून की लड़ाइयाँ जो हुईं, उनमें अभी तक पतलून की हार ही देखने में आ रही है । इस हार का बड़ा भारी कारण हिंदूपन की क़वायद है, जिसका प्रभाव दिशा और रसोईंघर में पतलून का क़दम नहीं रखने देता । हार-जीत की तो भगवान् जानें, पर इतना ज़रूर है कि अभी तक धोती की तरफ़ से बराबर धावे हुए ही जाते हैं । इस प्रकार की एक लड़ाई की कैफ़ियत फ़ैशनदास मिस्टर पतलूनपरसाद की लीला में दिखाई दी है । गत नवंबर के महीने में जब दक्षिणी आफ़्रिका के चंदे की धूम मची, तब बड़े-बड़े कोट-पतलून-धारियों को भिखारी भूदेवों की वृत्ति का आश्रय ग्रहण करना पड़ा । जिनको वे असभ्यता की दृष्टि से देखते हैं, उन्हीं के दर पर जाकर उन्हें "भिक्षां मे देहि" का राग अलापना पड़ा । मिस्टर पतलूनपरसाद भी एक धनिक लाला के कारख़ाने में पहुँचे। लाला साहब निरे गोबर के ढेर के समान एक पुरानी गद्दी पर पड़े हुए रुपयों की झनकार के शब्द से प्रसन्न हो रहे थे । सामने दरी का फ़र्श था । कुर्सी पर बैठना तो खेल-तमाशे के दिन ही पुराने लोगों की कर्म-पत्री में लिखा होता है । उनके यहाँ इसकी क्या ज़रूरत थी । ज्यों ही पतलूनपरसाद लाला के सामने पहुँचे, उन्होंने "आइए, आइए" कहकर बुलाया । यह बेचारे सींक की तरह खड़े हो गए । बैठते कैसे ? जब बैठने का बहुत आग्रह किया गया, तब बायाँ हाथ टेककर मिस्टर साहब बैठे । पर तंग पतलून से बँधी टाँगों ने झुकने से इनकार किया । लाचार बाबू साहब चौपायों का अनुकरण करके लंबी टाँगें फैलाकर बैठ क्या, लोट-से गए । इनकी इस सभ्यता की बैठाई पर लोग कुछ ऐसे हँसी में निमग्न हो गए कि चंदे की बात एक नहीं जमी । मिस्टर साहब को वहाँ से बैरंग

ही लौटना पड़ा। जब यह आगे बढ़े, तब लाला के सहचरों ने इनको समझा-बुझाकर कुछ चंदा सही करने को पक्का किया, और थोड़ी देर के बाद भिखारी मिस्टर को बुलाने के लिये एक आदमी फिर दौड़ाया गया। थोड़ी देर के बाद मिस्टर पतलूनपरसाद फिर दिखाई पड़े, और फिर "आइए, बैठिए" की आव-भगत होने लगी। अब बेचारों को बैठना आवश्यक ही हुआ; क्योंकि अब की बार चंदा सही होने की पूरी आशा थी। दरी के फ़र्श के पास पहुँचकर फिर रुक गए। बूट की मजाल नहीं थी कि आगे बढ़े। फिर मिस्टर ने बैठने के लिये बाएँ हाथ का पैंतरा चलाया। रुपया सही होने की खुशी थी, किसी और बात के ध्यान में पतलून की चुस्ती पर ध्यान नहीं रहा, और टाँग समेटते ही चर्र-मर्र की आवाज़ करके पतलून ने प्राण त्यागने का लक्षण दिखाया। अब बड़ी कठिनता पड़ी। एक धोती मँगाकर मिस्टर साहब को दी गई, और इस लड़ाई में पतलून की हार मानकर कथा के रिपोर्टर अपने डेरे को रवाना हुए।

इति पंचपुराणे प्रथमस्कंधे पंचसप्ततितमोऽध्यायः

षट्सप्ततितम अध्याय

लीडर-खंड

कहते हैं, नैमिषारण्य-क्षेत्र में पौराणिक सूतजी से शौनकादिक ऋषीश्वरों ने एक बार अपनी महाकानफ़्रेंस करके भविष्य-पुराण की अनेक बातें पूछी थीं। इस सभा का अधिवेशन कई दिनों तक हुआ था, और बड़ी-बड़ी दूर से मुनीश्वर लोग धूल फाँकते हुए इस बड़े समारोह में एकत्र हुए थे। बातें पूछी गई थीं बहुत-सी, पर उनमें सबसे महत्त्व की बात यह थी कि कलिकाल में लीडर-नामधारी जीव कौन होंगे, और उनके क्या कर्म होंगे? इस

सवाल के पूछे जाने पर ऋषिगण की कानफ़्रेंस में बड़ा उत्साह देखने में आया था, और लोग उचक-उचककर गर्दन उठाकर सूत की तरफ़ देखने की चलबली लालसा दिखा रहे थे। मुनियों को समुत्सुक देखकर कृपालु सूतजी ने जो कथा कही या लेक्चर दिया था, उसका थोड़ा-सा वृत्तांत भी बड़े गूढ़ शास्त्र का काम दे सकता है। वह लोक के जीवों को "हुआ-हुआ" गान करनेवाले जीवों का रँगा हुआ स्वरूप दिखलाकर असली मतलब बता देने का सिद्ध मंत्र है। जो बात हज़ारों वर्ष पूर्व कही गई थी, उसका अक्षर-अक्षर इस समय ठीक होकर भविष्य-पुराण की चतुराई को सब लिखावटों से ऊपर क़ायम करता है। सूतजी भी पहले प्रश्न को सुनकर चुप्पी मार बैठे। कोई तो कहते हैं, उनको इसका जवाब ही नहीं आया, और कोई यह अनुमान करते हैं कि प्रेस-ऐक्ट के समान कोई ऐसा क़ानून उस पुराने ज़माने में भी था, जिसके भय के मारे सभा में बोलनेवालों की तोमड़ी बंद ज़रूर हो जाती थी। इसी शंका में सूतजी को आगा-पीछा सोचने का भूत ज़रूर लगा होगा। महाराज को इस उधेड़-बुन में पड़े हुए देखकर शौनकादिकों के समूह हाथ जोड़कर पूछने लगे—हे महा-राज, संसार में लीडर नाम के जीव कब और किस कारण से उत्पन्न होंगे? यह जानने की हमारी बड़ी इच्छा है। कृपा करके वह कार्य कीजिए, जिसमें हमारी यह अभिलाषा पूरी हो जाय।

इस निवेदन को सुनकर पौराणिक सूतजी ने कहा—हे शौनका-दिको, तुमने यह बड़ी गूढ़ कथा पूछी है। सुनो, कलिकाल के वैवस्वत मन्वंतर में जब अट्ठाईसवाँ कलियुग होगा, तब उसके प्रथम चरण में कुछ काल तक आर्यावर्त में बड़ी हलचल मचेगी। अनार और अंगूर के बेचनेवाले देश पर आक्रमण करके बड़ा अत्याचार मचावेंगे। वे सैकड़ों स्त्रियों का सतीत्व नष्ट करके धर्म-

मर्यादा का लोप करेंगे। उनके शासन का रंग यमराज के समान होगा। उसके सामने सब उत्तमता देश छोड़कर भागेगी। फिर पश्चिम देश के गौर-वंशावतंस राजा लोग अपना दोर्दंड-प्रताप फैलाकर पुरानी अत्याचार-प्रथा को हटा देंगे, और प्रजा की इच्छा के अनुसार राज्य करके देश में आनंद के विस्तार की चेष्टा करेंगे। हे मुनीश्वरो, कान देकर सुनो। उस समय सृष्टि में लीडर नाम के विचित्र जीव उत्पन्न होंगे। ये राज्याधिकारी हाकिमों और प्रजा के मध्य मध्यस्थ बनकर अपनी लीला का विस्तार करेंगे। इनकी माया अपरंपार होगी। ये माया पाने की माया में पड़कर अपनी यह माया-पॉलिसी का चक्र चलाकर सबको भ्रांति के समुद्र में गोते दिया करेंगे। यह पहले लीड करने (अग्रणी होने) की जीविका करेंगे, और फिर हर बात में आदियल लादीवालों की प्रकृति का नमूना दिखाकर लीद करने के सिवा कुछ काम नहीं करेंगे। जिस प्रकार स्वर्ग की अप्सराओं के रूप में तापस लोग अपनी तपस्या को खो बैठते हैं, ठीक यही हाल इनका होगा। उपाधि नाम की महाउपाधि करनेवाली अप्सरा इनको जब अपने वश में कर लेगी, तब ये लीद करते-करते स्वयं लीद अर्थात् गोबर की मूर्ति होकर प्रजा के काम के नहीं रहेंगे। ये उस उपाधि-रूपी मेम को वरण करने की लालसा से 'मॅंबर' कहलावेंगे, और "जी हुज़ूर" का मंत्र जपकर स्वार्थदेवता की सिद्धि पाकर पूरे सिद्धार्थ हो जायँगे। कलिकाल के आरंभ-काल में हे मुनिपुंगवो, ये लीडर बड़े-बड़े धर्माचार्य होने का दावा करके आर्यों के कान काटने में कुछ कसर नहीं करेंगे। ये देश में एक नवीन जाति बनाकर वर्ण-संकर का प्रचार करने में अपनी बुद्धि के पैंतरे दिखावेंगे, और राजा, प्रजा, दोनों को धोका देकर अपना माया-जाल विस्तार करेंगे।

इतनी कथा को सुनकर शौनकादिक ऋषि सब वाह-वाह अर्थात्

"साधु-साधु" कहकर प्रसन्न हो गए। फिर पूछने लगे—महाराज, क्या कोई ऐसा भी लीडर होगा, जो रावण या कंस के समान शैतान का वंशज बनकर समाज में द्वंद्व मचा देगा?

इस बात को श्रवण कर सूतजी फिर बोले—हाँ, होगा। उसका द्वंद्व-युद्ध गुप्त रीति से चलेगा। पवित्रात्मा खीष्ट के मरणोपरांत बीसवीं शताब्दी में घाऊगप्प नाम का एक लीडर होगा। यह हिंदुओं का परम अग्रणी बनकर उनको सांसारिक दौड़ में सबसे पीछे ढकेलने के काम में बड़ा प्रवीण होगा। यह खान-पान के आचार को मूर्खता का प्रचार कहेगा। सती स्त्रियों को खसम करने का उपदेश देगा। शूद्र और ब्राह्मण की बेटी-व्यवहार की बात चलावेगा। धार्मिक कामों को व्यर्थ कहकर बुद्धिमानी छौंकेगा। इस प्रकार मुँह-आई बकने में लोग इसको लूथर का छोटा भाई समझेंगे। तब यह पॉलिसी से मेल करके सच से मिला रहकर भी सच की जड़ काटने में कसर नहीं करेगा। प्रजा के लोगों से पैर-पूजी करावेगा। उसकी बड़ी पूँछ बढ़ेगी। अब वह समाज को उस पूँछ के द्वारा अग्निदेव को अर्पण करने पर उतारू होगा। उसकी इस पूँछ से लोगों को बड़ी हानि उठानी पड़ेगी। तब वह बिलबिलाकर लीडरी से घबराकर उसको जीते-जी तिलांजलि देने लगेगा। तब लीडरी की आँख खुलेगी, और वह यह गीत गावेगी—

खुशामद और चाह मिलने की, जब कि लीडर में आ गई अफ़सोस;
फिर न चलने की चाल कोई भी, ग़ोता हिम्मत भी खा गई अफ़सोस।

इति पंचपुराणे प्रथमस्कंधे षट्सप्ततितमोऽध्यायः

सप्तसप्ततितम अध्याय

हिजड़ा-कानफ्रेंस

दिसंबर में सभा-सोसाइटियों का महापर्व होता है। सारे-के-सारे देश में लेक्चरबाज़ी का बाज़ार फैल जाता है। जितनी कल्लेदराज़ी इस महीने में हो जाती है, उतनी शायद फिर साल-भर में नहीं सुनाई पड़ती। सब जातियों की महासभाओं की धूम मच जाती है। उन सबका हाल लिखना क्या है, वैशंपायन व्यास का मुक़ाबला करना है। कहते हैं, इसी महीने में "आल इंडिया हिजड़ा-कानफ्रेंस" का भी बड़ा समारोह रहा। भारत-भर के ज़नाने हाथ मटकानेवाले, ख़्वाजेसरा, हिजड़े आदि इस महासभा में प्रतिनिधि होकर पधारे। ताली पिटने का वह रंग रहा कि कानफ्रेंसों के "हुर्रे" और करतल-ध्वनि के तुमुल शब्दों की कोई हक़ीक़त नहीं रही। सभापति का आसन ख़्वाजा मलूकचंद ने सुशोभित किया। आपने हाथ मटका-मटकाकर ऐसी स्पीच सुनाई कि लोग दंग हो गए। यदि आनरेबुल मॅबर उसको सुन लेते, तो उनके पेट में पानी भर आने में कसर बाक़ी नहीं रहती। ख़्वाजा साहब की स्पीच बड़े मार्के की हुई। उन्होंने बड़ी युक्ति से दिखाया कि हिजड़ों का आचरण राज-शक्ति के लिये बड़े महत्त्व की बात है। इस धर्म के प्रचार से आर्म्स ऐक्ट की ज़रूरत नहीं रहेगी; डाकुओं की सारी प्रजा और पुलीस का कलेजा मुँह को नहीं आने पावेगा; और सार्व-भौमिक शांति देश में फैल जायगी। अतएव ख़्वाजा-धर्म का प्रचार देश में होने का प्रबंध अवश्य होना चाहिए, और युनिवर्सिटी ही में हिजड़ोपाध्याय की परीक्षा नियत होनी चाहिए।

सभापति ने अपनी व्याख्या में बड़ी मज़ेदार बातें कहीं, और बताया कि बिना हिजड़ा बने शिक्षित समाज का कल्याण नहीं हो सकता। यह कहने की ज़रूरत नहीं कि ख़्वाजा साहब की एक-एक

वाक्य-रचना में इतनी तालियाँ बजीं, जितनी कांग्रेस के कुल अधि-वेशनों में नहीं बजी होंगी। यह सभा खुले मैदान में न होकर यदि किसी पंडाल में होती, तो मंडप का फूस उड़कर वायु-मंडल में मिल गया होता, और महासभा का ढाँचा तकावी लेनेवाले अकाल-पीड़ितों का सगा भाई ही बन जाता। ख़ैर, सभापति के बाद रिज़ोल्यूशनों की बारी आई, और उसमें पहला भाग बंबई के पिलपिलो साहब के हिस्से में आया। साहब ने कहा, जो लोग पर्दा हटाना चाहते हैं, उनको सबसे पहले ज़नान-मंत्री बनकर फिर सुधार का मंत्र फूँकना चाहिए; क्योंकि बिना हिजड़ा बने पर्दा हटाने की कोशिश बेकार और ऊलजलूल है। सबकी सम्मति से यह रिज़ोल्यूशन गाकर सुनाया गया, और बड़ी करतल-ध्वनि के साथ स्वीकार हो गया। वह यह था—

वनो हीजड़ा पहले जब;
पर्दा फ़ाहिश होवे तब।
इससे बढ़कर और न काम;
पढ़ लो पट्टे सीताराम।

इसके बाद देहली के कुतुबमीनार से लंबे डील के गोली-फ़रोश साहब सभापति के सामने खड़े हुए। आपने हाथ पर हाथ पटककर कई बानियाँ सुनाईं, और अपने वतन की उर्दू में यह मंतव्य उपस्थित किया—

सेकिन किलास में टिकट जो लेके जावे है;
उसी को मेम का बच्चा झपट डरावे है।
कहे है—"दूर हो मरदूद, कहाँ आवे है",
ढकेल रेल से धक्के बुरे बतावे हैं।
लिहाज़ा बाबुओं को अब नक़ाब पहनाओ;
ज़नानी चाल को अब अहले-हिंद अपनाओ।

यह प्रस्ताव बड़ी धूमधाम से पास हुआ, और कहा गया कि हरएक हिंदोस्तानी यात्री को बुरक़ा, चादर और घूँघट निकालकर रेल पर चढ़ना चाहिए, जिसमें ग़रीब प्रतिष्ठा बेचारी अपमानित होने से बची रहे।

तीसरा प्रस्ताव लखनऊ के काशमीरी नक़्क़ालों की तरफ़ से गए हुए मिस्टर बुलबुले-हिंद ने कानफ़्रेंस के सामने उपस्थित किया। वह इस प्रकार था—

हज़रते-लखनऊ का था क्या हाल ;
हर तरफ़ लखनवी थे मालामाल।
तेग़ खोले यहाँ के बाँके थे ;
दूर मुल्कों में उनके साके थे।
अब बने रंडियों के तावेदार ;
माल खोकर उठा रहे फिटकार।
नतीजा उसका अब यह होना है ;
मुहर्रम की तरह से रोना है।
इससे बेहतर है अब बनो बेगम ;
हाथ मटकाओ ले गुरू की क़सम।
तनज़्ज़ुल की न शर्म आवेगी ;
ज़नानी चाल मुँह छिपावेगी।

इस गूढ़ तत्त्व को समझकर यह बात स्थिर हुई कि लखनऊवाले अब मर्दानगी का काम बेकाम समझकर कबूतरबाज़ी, बटेरबाज़ी और नशेबाज़ी के पाजीपन पर उतारू हो गए हैं। इसलिये इनको ज़नानों से दीक्षा लेने में कुछ डर नहीं है। इस प्रस्ताव को पास करके हिजड़ा-कानफ़्रेंस के प्रतिनिधि लंच (अर्थात् जल-पान) करने के लिये उठकर चले गए।

देखते-देखते एक बाँस-जैसे लंबे साहब प्लेटफ़ार्म पर आकर

खड़े हो गए, और उनको देखते ही श्रोतागण ने तालियाँ पीटने का ख़ज़ाना खोल दिया। बड़ी देर की तड़-तड़ के बाद आपने सारस की तरह गर्दन नचाकर बड़ी भारी राम-कहानी शुरू कर दी। इन्होंने कहा—जिस सभा-सोसाइटी में केवल तालियाँ पीटने के काम कुछ न हो, वही हिजड़ा-मंडली है। इस पर युक्ति की शृंखला निकालकर कथन की पुष्टि की गई, जिसमें बताया गया कि त्रिकाल में सभी समय ताली पीटने का अधिकार हिजड़ा-समाज ही को है। जिस प्रकार मालदारों को वोट देने का अधिकार है, जिस प्रकार बाज़ारू बीवियों को अमीरों के छोकरों की कमर पर लँगोटी बँधवा देने का हक़ है, कर्कशा स्त्री को गालियाँ देने और दफ़्तर के बाबुओं को डाँट-डपट खाने का अधिकार परंपरा से प्राप्त है, ठीक उसी प्रकार हिजड़ों, ज़नख़ों और ज़नानों को ताली पीटने और हथेली पटकने का हक़ भगवान् की कौंसिल से मिला हुआ है।

इस युक्ति से यह सिद्ध किया गया कि काम न करके केवल मंतव्य पास करके ताली पीटना मर्दानगी में नहीं गिना जा सकता। इसके बाद यह विषय उपस्थित किया गया, विधवा-विवाह का झगड़ा चलानेवाले भी इसी समूह के अंतर्गत हैं। प्राचीन काल में नवाबी और बादशाही महलों में बेगमों और बादशाही उपपत्नियों का काम करने को यही लोग नियत थे। उनके प्रेम के झगड़े मिटाने की 'डिप्लोमेसी' भी इन्हीं के हाथ में थी। मतलब यह कि बिना ब्याही कन्या का वर जुटाने का काम नाई और पुरोहित करते हैं, और ब्याह होने पर इश्क़बाज़ी का चरख़ा कातने और समाज में गड़बड़ी पैदा करने का काम जिनके हाथ में है, वे दूती, दूत, मध्यस्थ, ख़्वाजेसरा आदि कहे जाते हैं। अब काम-वेदना की कपोल-कल्पना करके विधवा-विवाह के वकील यदि सामाजिक लॉ अर्थात् क़ानून से किसी दर्जे के अंदर होने की लियाक़त रखते हैं, तो वह

यही हिजड़ों का जनख़ा-समाज है। अतएव यह तय समझना चाहिए कि विधवाओं को ख़सम कराने के पक्षपातियों को इसी समूह में गिना जाना उचित है।

इस कथन के ऊपर बड़ी करतल-ध्वनि मची। तब व्याख्याता ने दूसरी युक्ति यह उपस्थित की कि कचहरी में जाकर दावा करके आर्थिक और शारीरिक शक्ति को नष्ट करनेवाले भी हिजड़ा-समाज के अंदर ही गिने होने चाहिए। यों तो आर्म्स ऐक्ट की कृपा से, और वालंटियर प्रथा के जारी न होने से, देश-भर के लोग इसी दर्जे में होने की योग्यता से विभूषित हैं, तथापि कचहरी में तू-तू मैं-मैं का शास्त्रार्थ करके झूठ और सत्य का झगड़ा मचानेवाले इस विषय में पूरे दक्ष ही ठहरते हैं। लड़ाई वीरों का काम है, और झूठ को सच और सच को झूठ बनानेवाली लड़ाई सिवा इसके और किसी काम की नहीं कही जा सकती। वीर लोग बेईमान कहने पर सिर काट लेने का इरादा रखते थे, और कचहरी में सरासर बेईमान-झूठा कहा जाने पर भी जिनके लोहू में गरमी न आवे, वे सिवा हिजड़ों के और किस दर्जे में शामिल हो सकते हैं। इस दलील से कानफ़्रेंस में बड़ा आनंद मचा, और यह रिज़ोल्यूशन पास किया गया। वर्तमान मनुष्य-समाज के आचरण से यह अनुमान होता है कि वीरता, सत्य, स्पष्ट-भाषण आदि सब गुण संसार से उठ जायँगे। अतएव हिजड़ा-समाज उस बात को तय करता है कि सब ख़िताब और यश के चिह्न उन्हीं के अनुयायी दल को मिलने चाहिए। इसके बाद यह तय किया गया कि उस महामहोपाध्याय पंडित को पाँच सौ रुपए का पुरस्कार दिया जाय, जो वेद-श्रुति-स्मृति और पुराणों से यह सिद्ध कर दे कि हिजड़ा-दल ही यथार्थ क्षत्रिय है, और बड़े-बड़े प्राचीन राजर्षि और महर्षि सब इसी के दल के प्रवर्तक थे। यह बात अधिक मत से स्वीकार कर ली गई, और सभापति तथा सहायकों

को धन्यवाद देकर कार्य पूरा किया गया। यह भी सूचित किया गया कि महामहोपाध्याय बुलबुले-हिंद श्री १००० स्वामी ढपोलशंख एवं घोंघाचार्यजी ने इस प्रकार का ग्रंथ बनाकर संसार में प्रचलित करने का वचन दिया है, अतएव उनको धन्यवाद दिया जाय।

इति पंचपुराणे प्रथमस्कंधे सप्तसप्ततितमोऽध्यायः

अष्टसप्ततितम अध्याय

बुद्धि का अजीर्ण

महाराज धन्वंतरिजी ने सैकड़ों ओषधियों के गले 'हलाल' कर डाले; किंतु उनको भी बुद्धि की विसूचिका का पता नहीं लगा। किसी वैद्यक या हिकमत के ग्रंथ में इस रोग का निदान, लक्षण और चिकित्सा की कौन कहे, नाम तक का पता नहीं है। डॉक्टरों के बड़े-बड़े एम्० डी० हो गए; पर इस अजीर्ण की उनको भी थाह नहीं मिली। लोग इस बात का आक्षेप करते हैं कि यह त्रिकालदर्शी वैद्य काहे के थे, जब बुद्धि के रोग का ही उनको कुछ पता नहीं लगा, तो उनकी त्रिकालदर्शिता भी धोपे की टट्टी ही कही जायगी। पर ऐसी बात नहीं है। संभव है, प्राचीनों ने इस रोग की चिकित्सा लिखी हो, और जहाँ सैकड़ों पुराने ग्रंथ हम्माम के अंदर बलिप्रदान कर दिए गए, वहाँ इसका भी लेख स्वाहादेवी का पात्र बन गया हो, तो आश्चर्य क्या है?

हाल में एक ऐसा रहस्य मिला है, जो इस रोग की उत्पत्ति, लक्षण और उपशांति का पूरा उदाहरण है। उसको जानने से इस व्याधि की बहुत-सी बातें मालूम पड़ सकती हैं, और पेटेंट दवाओं के व्यापारी यदि चाहें, तो इस नुसख़े से बहुत कुछ लाभ उठा सकते हैं। कुछ दिन हुए, इस रोग का आक्रमण एक भले आदमी

के लड़के पर हुआ। देखते-देखते वह और-का-और हो गया। लगा अवाही-तवाही बकने। बात-बात में हाथ-पर-हाथ पटककर ज़ोर देकर बोलने की उसकी आदत हो गई। कोई क्या कर सकता है, कोई क्या मजाल रखता है—यह कह-कहकर वह सबको फटकारने को तैयार हो गया, और अब उसके दिमाग़ का 'थर्मामिटर' उबाल खाने की अवस्था तक पहुँचने की हालत पर आ गया। ऐसा शिक्षित और समझदार इस दुर्दशा के कांड में पड़कर जब लोगों के साथ उद्दंडता करने पर कमर कसने लगा, तो उसके हितैषियों को बड़ी चिंता हुई। किसी ने उन्माद, किसी ने भूत और किसी ने गर्मी का रोग अनुमान किया। वह सबसे लड़ने को तैयार हो गया। अपनी कमज़ोरी को प्रकृति की कमज़ोरी बताना और अच्छी बात को अपना ही गुण गाकर कहना उसमें प्रकृति का नाम तक नहीं आने देता। निदान संसार के स्वभाव को उलट-पुलट करने के उद्योग में उसका यह स्वभाव हो गया कि वह अपने मन को महत्त्व का अधिकारी जानकर यह गीत गाता रहता—

"आधी अकल में सब बसें, औ' डेढ़ अकल में हम।"

इस प्रकार अहम्मन्यता की जब बढ़ती होने लगी, तो फिर अब मित्रों से झगड़ा-लड़ाई की नौबत आई। धीरे-धीरे सब उससे अलग हो गए, और वह अपनी बुद्धिमत्ता का घमंड लिए अलग ही रह गया। इस अकेले होने पर उसकी बीमारी ने और भी ज़ोर पकड़ा। वह समझने लगा कि संसार पागल हो गया है। लोगों को अच्छे-बुरे की पहचान नहीं रही। अतएव सबै पर अपने गुण प्रकट करना परम आवश्यक है। इस कार्य की पूर्ति के लिये उसने बड़ा आडंबर रचा। गली-गली के चौराहों पर अपनी तारीफ़ के पोस्टर या विज्ञापन चिपकाए, और "तारीफ़-नोटिस"-सभा नाम की एक कमेटी खोली, जिसके मेंबर पान-तमाखू के सहारे या अन्य

किसी प्रलोभन में पड़कर उस बुद्धि के रोगग्रस्त की तारीफ़ करने लगे।

कहते हैं, कई वर्ष हुए, इस तारीफ़-नोटिस-सभा के मेंबरों में बड़ी फुर्ती देखने में आई। लोग उसके कीर्ति-कलाप के लिये नगर में बड़ा भारी कीर्तन करते, और गीत गाते बाज़ार में निकले। इस बरात में बड़ी भीड़ जुड़ गई, और पोपो के गुण-गान का रोग चारों तरफ़ फैल गया। यहाँ पर इतना कह देना ज़रूरी है कि इन बाबू साहब का नाम मिस्टर पोपो था।

पोपो की कीर्ति की ख़बर पाकर नगर के महाजनों के लाला ढपली-मल को भी उसी रोग का दौरा हो गया, और वह भी अपनी प्रशंसा की बरात का जलूस निकालने लगे। कई महीने तक यह लीला बराबर होती रही, और नगर-निवासी नित्य नया तमाशा देखते रहे। एक दिन ऐसा हुआ कि दोनों जलूस एकसाथ नगर के प्रसिद्ध बाज़ार में आ डटे, और नोटिस-सभा के मेंबरों तथा लाला ढपलीमल के साथियों का सामना हो गया। तारीफ़ के टोकरे उलटे जाने लगे, और दोनों ओर के लोग अपने-अपने पक्ष के गीत बड़े ज़ोर-ज़ोर से सुनाने लगे। इस तारीफ़ के दंगल की इस कार्यवाही का हाल श्रीमान् मस्तराम की डायरी या दिन-चर्या में बड़े विस्तार के साथ लिखा गया है। उसका कुछ अंश यहाँ पर उद्धृत किया जाता है—

लिखा है—जब हो-हो मची, तब यह निश्चय हुआ कि दोनों पक्ष के लोग बारी-बारी से अपने-अपने इष्टदेवों की तारीफ़ करें, जिसमें पबलिक या सर्वसाधारण को राय देने में सुबीता हो। यह बात दोनों दलवालों ने मान ली, और प्रशंसा की अलाप चल पड़ी। पोपो की मंडली ने पहला राग यों छेड़ा—

धूम पोपो की मची है, यह कहे।

दंगलों के बंगलों में हैं बड़े।
देखने में शेर हैं औ' गौफ़नाक;
पाँच फुट लंबी है साहब इनकी नाक।

इसके बाद डपलीमल के सहायक बोले—

सारद देवी, तुमको सुमिरों, कीरति सबसे बड़ी तुम्हार;
पोचा फेरो उनकी अक्किल पर, जो हैं बस विरोध के यार।
हमरे डपली बड़े गुनी हैं इनकी सबसे बढ़िके सान;
जिनके आगे धर्म-कर्म के कई बार निकले हैं प्रान।

इस कदखे के भाषण को सुनकर पोपो के प्रेमियों ने यह राग सुनाया—

पोपो की लियाक़त है उसकी नाक से बड़ी;
बातें हैं सदा जिसकी हरेक बात में कड़ी।
वह फ़ारसी व अरबी के टट्टू को हाँकता;
हर बात में अँगरेज़ी के जंगल उखाड़ता।
खेती चरी है इल्म की ऐसी, कहें क्या हाल;
संसार में डाला है जिसने इल्म का अकाल।

तारीफ़ की इस ध्वनि से दूसरी ओर के कदखैतों ने अपनी ध्वनि फिर यों उठाई—

डपली साहब सब गुनमोला, उनसे मौला मानी हार;
अँगरेज़ी, उर्दू, हिंदी का डाला जिसने खूब अचार।
वह व्यापारी जगत-बखाना, उसके पल्ले दौलत-माल;
पोपो एक टके पर भाई करता मुर्ग़ी रोज़ हलाल।
है कंजूस पुराना पोपो, दमड़ी कभी न खरचा कौन;
ऐसे लोग सदा से साहब बनते हैं कौड़ी के तीन।

इस कड़ी आलोचना को सुनकर पोपो के साथी गा चले—

डपली की सदा से रही कंगाल की सूरत;

पोपो तो हमारे सदा बहार की मूरत।
हैं पोलदों के यार यह रईस शहर के;
आलिम हैं समुंदर की बड़ी धार, लहर-से।
इनको तो आबादी का जमादार बनाओ;
कर पंच चौधरी व तरहदार बनाओ।
ढपली की फटेगी मियाँ ढपली ज़रूर है;
इक दिन तो मिटेगा, जो बड़ा यह ग़रूर है।
पैसा है उसके पास व भैंसा-सा सो रहा :
सारा गरोह उसका नाम लेके रो रहा।
गर वह कहीं बस्ती का जमादार हो गया;
तो सैकड़ों को समझो कि आज़ार हो गया।

इस प्रकार बहुत कुछ निंदा-स्तुति की फुलझड़ियाँ छूटने के बाद मार-धार की नौबत बजने का सामान हो गया, और पुलीस के दल ने आकर फ़ौजदारी का दंगल होने से रोक दिया। बाबा मस्तराम की डायरी का बाक़ी अंश किसी और समय दिया जायगा।

इति पंचपुराणे प्रथमस्कंधे अष्टसप्ततितमोऽध्यायः

एकोनाशीतितम अध्याय

कवि-सम्मेलन

अब की होली पर कवियों का दंगल मासिक धर्म-पत्रिका के कार्यालय में होने की ख़बर निकली। आनन् फ़ानन् में खड़ी, लेटी और बैठी बोलियों के कविराजों की भीड़ जुड़ गई। लखनऊ और उनके चचाज़ात कानपुर के शायर भी धावा करके दौड़ पड़े। छलछायावादियों ने अपनी कविता की लादी ला पटकी। देखते-देखते बाँकीपुर के बाँके और मिथिला के थल-थल कवि भी आ पहुँचे।

मतलब यह कि भारतवर्षीय कवि और उनके चचा, साले, ससुरे, भांजे, भतीजे, सभी आ डटे. और कविता की वर्षा या पिचकारियाँ चलने लगीं । सभापति का आसन एक ऐसे क़लमदाँ को दिया गया, जिनकी तीन पुश्तों ने कविता की किसी को ख़बर नहीं थी । महासम्मेलन में बड़ी धूमधाम की बातें रहीं । पुराने कवियों की ख़ूब पगिया-खसोटन हुई । किसी ने सूरदास को बुरा कहा ; किसी ने तुलसीदास पर बौछार उड़ाई । अंत को समस्या-पूर्ति की बारी आई, और अपनी-अपनी पूर्ति दिखाने को कवि लोग प्लेटफ़ार्म पर आ-आकर नाचने लगे । समस्या थी "होली हो गई" । इस पर कवियों ने इस प्रकार की बौछार लगाई—

पहला—है न पल्ले दाम, होली हो गई ;
　　इस तरह बदनाम होली हो गई ।
　　रंग को पैसा नहीं, बदरंग है ;
　　फिर तो यह बेकाम होली हो गई ।

दूसरा—टैक्स, फ़ैशन ने किया लाचार बस ;
　　किस तरह हो काम, होली हो गई ।
　　मुफ़लिसी से है लड़ाई रात-दिन ;
　　गालियों की आम होली हो गई ।

तीसरा—लिल्लियों-से घूमते फिरते हैं सब ;
　　मंबरी से काम, होली हो गई ।
　　गर न पहुँचे हाल तक बेहाल हैं ;
　　हाय क्या अंजाम; होली हो गई ।

चौथा—रंडियों ने लूट खाए सैकड़ों ;
　　घर में आठो जाम होली हो गई ।
　　चूतड़ों पर है लँगोटी सिर्फ़ अब ;
　　इश्क़ का यह लाम, होली हो गई ।

इस पर कुछ लोग बहुत बिगड़े, और कहने लगे—यह छंद ठीक नहीं। समस्या-पूर्ति का नियम अनुचित है। इसमें कवि की स्वतंत्रता में बट्टा लगता है। अतएव कवि लोगों को अपनी सर्राटेदार काव्य-शैली चलाने की आज्ञा मिलनी चाहिए। सबकी राय से यह बात क़रार पाई कि मिस्टर लोमड़ीकांत अपनी खिचड़ी-भाषा की तान सुनावें। देखते-देखते ही वह कूदकर प्लेटफ़ार्म पर आ डटे। आपने कहा—

कवि-रहस्य

सुनिए मेरी खिचड़ी भाषा ;
इसकी हैंगी कोटिन साखा।
जब मैं अपनी कथा सुनाऊँ ;
पहले "लेडीजी" को ध्याऊँ।
लेडी के आगे सब लेंडी ;
वह है गेंडा और सब गेंडी।
सुनो लेखकी के अब फंद ;
बनो कवीश, न जानो छंद।
बंगाली की नक़ल उड़ाओ ;
और सुलेखक का पद पाओ।
जी में कुछ उपजै नहिं भाव ;
तब बन जाओ ऊदबिलाव।
यही लेखकी की है चाल ;
भाषा को, बस, करो हलाल।
नई लेख-परिपाटी रचो ;
सृष्टि नई कर कीरति खचो।
समालोचना भी करवाओ ;
कलमचंद बन मौज उड़ाओ।

यह है रंगीनों की होली ;
बुरा न मानो, सुनो ठठोली ।

इस कविता पर बड़े-बड़े लोग नाचने-कूदने लगे, और कवि-सम्मेलन का अधिवेशन समाप्त हुआ ।

इति पंचपुराणे प्रथमस्कंधे एकोनाशीतितमोऽध्यायः

अशीतितम अध्याय

कोल्हूराम की वसीयत

थोड़े दिन बीते, यहाँ पर एक लाला कोल्हूराम रहा करते थे । उनके पास बड़ा माल-मता था । बस्ती-भर में उनकी तूती बोलती थी । वह लोकपीटनदास भी पल्ले सिरे के थे । उनकी एक वसीयत का पता लगा है । उसके देखने से आजकल की सामाजिक लोक-मूढ़ता के तत्त्व का वास्तविक तत्त्व मालूम पड़ने लगता है । क्यों लोग अवनति के गड्ढे में जा रहे हैं, इसकी उसमें पूरी फ़िला-सफ़ी है । उसी वसीयत को बिना टीका-टिप्पणी के प्रकाशित करने ही का आज की कथा का प्रसंग है । उसका आरंभ यों होता है—

मनकि कोल्हूराम, वल्द चौपटचंद, क़ौम हिंदू, साकिन अंधेर-नगरी, शहर लोकपीटनाबाद का हूँ । चूँकि हर आमख़ास को चाहिए कि अपने मरने के बाद का इंतज़ाम कर दे ; लिहाज़ा मैं चंद फ़िक़रे बग़रज़ क़वायद ख़ानदान के लिख देना ज़रूरी सम-झता हूँ ।

दफ़ा १—यह कि हमारे ख़ानदान में महाभारत की थुक्का-फ़ज़ीती के बाद जो फ़ज़ीता होता आया है, वह बराबर हुआ करे । हरएक हिंदू का फ़र्ज़ है कि वह भाई-भाई में जूती-पैज़ार का प्रेम-

व्यवहार जारी रक्खे। यह तरीक़ा महाभारत के घरेलू जंग से ठीक साबित होता है।

दफ़ा २—यह कि बच्चों की शादी कमउम्र में किया करें, और जहाँ तक मुमकिन हो कन्या की उम्र वर से ज़्यादा होनी चाहिए। और, अगर बीबी इतनी बड़ी हो कि वह शौहर को गोद में लेकर खिलावे, तो "बड़ी बहू बड़े भाग" की बेखल वेदवाली कहावत ठीक होगी। इस प्राचीन पंचम वेद की उन्नति इसी पर मुनहसिर है।

दफ़ा ३—यह कि हमारे ख़ानदान में जब लोग अँगरेज़ी पढ़ें, तो वे गोरे साहबों के ऐब सीखने के सिवा उनकी अच्छी बातों को बिलकुल पास न फटकने दें। देशभक्ति याने मुल्क की हमदर्दी को वे प्लेग की सगी बहन समझकर उससे कोसों दूर भागते रहें, और ख़ास प्लेग की बीमारी से बिलकुल नफ़रत न करें। कोट-पतलून और हैट का स्वाँग बनाकर, किरानी साहबों के भाई बनकर सड़कों में कुलाचें मारें। सिगरेट याने लघु चुरुट को मुँह में दबाकर धुआँकश का स्वाँग बनें; खड़े-खड़े मल-मूत्र का त्याग करें; खान-पान का भेद छोड़कर बिलकुल बछिया के ताऊ की तरह सबमें मुँह मारते रहें; किंतु मादरी ज़बान या मातृभाषा का नाम सुनकर चोर और शिकारी से पीछा किए हुए हिरन की तरह भागें।

दफ़ा ४—यह कि लेक्चरबाज़ी का एक नया दुर्गुण चलाकर पबलिक स्पीकिंग यानी सर्वसाधारण में व्याख्यान देने की प्रथा का भी गला हलाल करें।

मीटिंग में जाकर ताली बजाना, हो-हो करना, इस कान से सुनना उस कान से निकाल देना, फिर मीटिंग के विरोध में या अन्याय-पक्ष लेकर आपस में कहा-सुनी करना। इस प्रकार की व्याख्यानबाज़ी करते रहें, और इस नवीन उन्नति के कार्य से कुछ लाभ देश को न होने दें।

इससे पाठक अनुमान कर सकते हैं कि कोल्हूराम के वंशज आजकल कौन-कौन लोग हैं।

इति पंचपुराणे प्रथमस्कंधे अशीतितमोऽध्यायः

एकाशीतितम अध्याय

मेंढकावतार

ज़बान प्रकृति ने एक ऐसी चीज़ बनाई है, जिसके ज़रा भी हिलाने में कुछ कठिनता ही नहीं पड़ती। शरीर के और अंगों से काम लेने में कुछ-न-कुछ श्रम ज़रूर ही बुला है, पर इस देवी को चलाने में कुछ देर ही नहीं लगती। यमराज की अमलदारी में जाने को तैयार बैठे हुए लोग भी सब अंगों की शक्ति से बहिष्कृत हो जाने पर भी ज़बान की कतरनी के अभ्यासी ज़रूर ही रहते हैं। इन्हीं सब बातों को विचारकर एक नामी विचारक ने यह कहा है कि ज़बान उस जवान औरत के समान है, जिसने लोक-लाज से बिलकुल नाता तोड़ दिया हो, और जो ज़रा-सा सहारा पाने पर ही अधिकार के बाहर हो जाती हो। जैसे कुलटा स्त्री को अधिकार में रखना कठिन है, ठीक वैसा ही श्रीमती ज़बान का हाल है। इसके उदाहरण सैकड़ों देखने में आए हैं कि बड़े-बड़े पुस्तकालयों की खेती चरनेवाले और कॉलेजों की चरागाहों में विचरने के अभ्यासी भी ज़बान को वश में नहीं रख सके। उलटा फल यह देखने में आया कि वे लोग, जो अपने में शिक्षा की पूँछ लगाकर सर्वसाधारण के मैदान में कुलाँचें लगाते हैं, उनकी ज़बान सबसे बढ़कर जंगली या छुट्टे बछेड़े की तरह दौड़ने का अभ्यास रखती है। ज़बान की कल की *स्प्रिंग* या कमानी बात के अधीन है। जिसको जितनी बातें मालूम हों, उसकी कल उतनी ही देर तक

चल सकती है। पर जो बकवादी ज़्यादा हैं, उनके अंदर बातों के जाने का मार्ग तो बंद रहता है, पर रात-दिन ख़र्च का साथ रहता है। इसलिये वे कल्पना करके मन-गढ़ंत के बनाने के कारख़ानदार या कार्यालयाध्यक्ष होकर मिथ्या के प्रचार की अधिकता करने के अभ्यासी हो जाते हैं। इसके उदाहरण का एक चमकता हुआ नमूना आज दिखाई दिया है। थोड़ी दूर पर एक बड़ा ख़ानदान है। उसमें लड़के-वालों की ख़ूब भीड़ है। एक-एक के अनेक रूप होते चले आते हैं।

लड़के और लड़कियों की भीड़ देखकर लोग इस कुटुंब को भाग्यशाली कहते हैं। उनके बीच में एक अवतार की तरह बालक उत्पन्न हुआ है। यह पढ़-लिखकर फ़ाज़िल हुआ; पर इसको ज़बान चलाने का बड़ा बुरा रोग हो गया है। पहले इसने अपनी शिक्षा की बातें शुरू कर दीं। जब उनका ख़ज़ाना ख़ाली हो गया, तब फिर कल्पना का रंग उसने जमाया। लोग शिक्षित समझकर इसकी बात का विश्वास करने लगे, और घर-भर में इसने चूल्हा-युद्ध की माया फैला दी। इस अवतार की लीला से सारा कुटुंब "नौ कनौजिए और दस चूल्हे" का उदाहरण बनकर तितर-बितर हो गया। सब संपत्ति चट हो गई, और अपनी-अपनी जोरू लेकर सब अलग-अलग हो गए।

इस प्राइवेट महाभारत की कथा बड़ी विचित्र है। जिस प्रकार श्रीकृष्णचंद्र भगवान् ने महाभारत कराकर सारे देश को और-का-और बना दिया, उसी प्रकार इस नवीन अवतार ने अपने कुटुंब का रूप बदल दिया। किस प्रकार यह प्राइवेट महायुद्ध हुआ, इसकी रामकहानी बड़ी लंबी है। उसके आचार्य हमारी इस कथा के नख़्रक मैंढकावतार हैं, जिनका पूर्ण परिचय आगे चलकर मिलेगा। मूरख-मोहाल में एक बड़ा कुटुंब था। उसमें इतने लोग रहते थे

कि यदि हिंदोस्तान के लोग वालँटियर हो सकते होते, तो एक छोटी-मोटी सेना उस घर से ही वन सकती थी, रात-दिन चूल्हे की आग के सामने रहना पड़ता, और रसोई-घर में कभी छुट्टी का अवसर ही नहीं आता था। एक दिन इस घर में बड़ा तुमुल शब्द होने लगा। "हाय-हाय","अबे-त   े वाण-वर्षा का बड़ा कोलाहल मच गया। आसपास के लोग ..ड़कर गली में आ खड़े हुए, और गुल-गपाड़े का कारण जानने को बड़े समुत्सुक हुए। किसी ने कहा, घर में चोर घुस आया है; किसी ने डाकेज़नी का संदेह किया; कोई कुछ और ही अनुमान करने लगा। एकाएक कई लोग चिल्ला उठे—"हाय मूली, हाय मूली!" और फिर कुछ बक-झक के बाद फिर वही "हाय मूली, हाय मूली!" की तान आने लगी। इस हाय-हाय का कारण एक पड़ोसी ने यह बताया कि घर में मूली की तरकारी हुई थी। दैवयोग से या भूल से वह मेंढक बाबू की पत्तल में नहीं परोसी गई। इस पर उसने अपनी मा से जाकर हाल कहा, और घर की स्त्रियों में कलह-शास्त्र का दंगल मच गया। इस समाचार के प्रकट होते ही फिर कलह-युद्ध की बात चल पड़ी, और इस तरह मार-धार आरंभ हुई—

एक स्त्री—"क्या ग़ज़ब है!"

दूसरी—"ग़ज़ब तो है ही। ऐसा न होता, तो मूली की तरकारी हमारे लड़के को क्यों न दी जाती? वह छिपाकर क्यों रक्खी जाती?"

पहली—"जिसने छिपाकर तरकारी रक्खी हो, उसका सत्यानास हो जाय!"

दूसरी—"हमको तो जनम-भर इस घर में बुरों की जान को रोते ही बीता। अच्छा भगवान्, हमने तो सही, पर तू अंत सहना।"

पहली—"जो हमने तरकारी छिपाकर रक्खी हो, तो हमारा बुरा हो, नहीं तो झूठ बोलनेवाली के मुँह में कीड़े पड़ें।"

इस प्रकार देर तक स्त्रियों में युद्ध का कड़खा बजता रहा। फिर मर्द भी कुमक को आ पहुँचे, और बड़ी कहा-सुनी होती रही। अब गाली-गलौज की अवस्था से हाथ-पैर चलने की दशा आ गई, और कलह-लीला का अंतिम कांड होने लगा। कोई चाकू भोंक देने की धमकी देने लगा। किसी ने नाक काटने की योग्यता दिखाई। अब बड़ी हाय-हाय मची। स्त्रियों के पंचम स्वर में पुरुषों का षड्ज स्वर मिलने से अद्भुत दृश्य उपस्थित हो गया। जब क्रोध का भूत सवार हो जाता है, तब आदमी को कर्तव्य का ज्ञान नहीं रहता। दोनों तरफ़ के लोग फटाफट-चटाचट की ध्वनि करने लगे, लड़के और स्त्रियाँ रोदन पर उतारू हुईं, और कुटुंब में छोटा-सा महाभारत मच गया। इसका फल यह हुआ कि लोग घर में घुस आए और बड़ी मेहनत से कुटुंब की यह लड़ाई समाप्त हुई। उस दिन से घर-भर के लोग सब तितर-बितर हो गए। सबके चूल्हे अलग-अलग हो गए। मेंढकावतार कुटुंब की इस दुर्दशा से दुखी नहीं हुआ। वह उलटा समझता है कि जिस प्रकार योगीश्वर कृष्ण ने महाभारत मचवा दिया था, उसी प्रकार का छोटा-मोटा काम उसने भी कर दिखाया। इस हिसाब से वह अपने अवतार कहाने का पूरा प्रमाण रखता है। वह रात-दिन इसी उद्योग में रहता है कि कहीं-न-कहीं कलह का दंगल खड़ा करे।

इति पंचपुराणे प्रथमस्कंधे एकाशीतितमोऽध्यायः

द्व्यशीतितम अध्याय

मस्तराम-ऐक्ट

देखते-ही-देखते कितने चलते-पुर्ज़े दौड़-धूप के एंजिनों में लग-

कर कहाँ-के-कहाँ पहुँच गए । अनेक लोग गली-कूचों की दुर्गंध-प्रणाली का नाम लेते हुए नगर की नाली की सफ़ाई के सहारे ऐसे बहाव में पड़े, जो उनको कमिश्नरी के घाट पर ले ही तो गया । उनमें कुछ ऐसे निकले, जो अवसर के वसंत को पाकर पूरे आनरेबुल बने, और फिर बुलबुल की तरह चहकने लगे । दर्जनों और कोड़ियों ऐसे भी "कुंदेनातराश" प्रकट हुए, जो केवल "जी हुज़ूर" के महामंत्र के प्रसाद से पंचायती पगिया के अधिकारी हो गए, और अनाड़ी-प्रथा से काम करके दूसरों को अनाड़ी समझने लगे । ऐसे-ऐसे बौखलाहट के पात्र और महापात्र, जो पिंगल के छंद और जुआ-चोरों के छंद का भेद तक नहीं जानते थे, वे स्वच्छंद बनकर कवीश होने की ताल ठोकने लगे । जिनको गद्य और पद्य-का भेद जानने में महीनों दाँत रगड़ने की ज़रूरत बाक़ी थी, वे ग्रंथकार और ग्रंथाचार्य बनकर हिरन के समान चौकड़ी भरने लगे । यह सब तो हुआ, पर बाबा मस्तराम अपनी आराम-कुर्सी पर पड़े मन-मौज ही उड़ाते रहे । कुछ काल पूर्व उनकी यह राय थी कि कोई समय ऐसा आवेगा कि ब्रिटिश टापुओं के समान भारतवर्ष में भी लोग प्रजा की ओर से निर्वाचित होकर राज-सभाओं में राय देंगे, और देशोन्नति के कार्य में सहायता पहुँचा-वेंगे। पर जब से कौंसिल का नया क़ानून बना, तब से उनकी आशा की लता बिलकुल मुरझा गई है । वह कहते हैं कि देश का नाश करने की बड़ी भारी कल ख़ुशामद है । अब नवीन नियमों के अनुसार बिना उस कल की खराद पर चढ़े हुए कौंसिल में बैठने की चमक-रूपी योग्यता हो नहीं सकती । इसलिये अब भारत-वासियों को कौंसिली तरीक़े के सिवा कुछ और काम भी करना बहुत ज़रूरी है, और वह है अपनी सामाजिक अवस्था को ठीक करने के लिये एक नवीन ऐक्ट बनाना । इस क़ानून का घर-घर

प्रचार हो जाय, इसलिये एक नवीन पुलीस क़ायम होगी। इस पुलीस की सेना के इंस्पेक्टर जनरल, सुपरिंटेंडेंट, कोतवाल और सिपाही, सबके पद औरतों ही को दिए जाना मुनासिब समझा जाता है। इसका एक बड़ा भारी कारण यह है कि सामाजिक सुधार में मर्दों की मर्दानगी तो हो चुकी। वे तो केवल सभा में जमा होकर ज़नख़ों और हीजड़ों के परम शस्त्र चलाने अर्थात् ताली पीटने के सिवा कुछ कर नहीं सकते। अतएव नवीन पुलीस का अधिकार औरतों को मिलना बहुत मुनासिब है। इस पुलीस का काम यह होगा कि जब किसी सुधार-सभा में कोई बाबू ताली पीटकर मंतव्य स्वीकार करावे, तो उससे ज़बर्दस्ती वह काम कराया जाय, और यदि यह देखा जाय कि वह अपने सभा के प्रस्ताव को अमली कार्रवाई में नहीं लाता है, तो उसकी चपतगाह की मरम्मत की जाय। बाबा मस्तराम ने जो ऐक्ट बनाया है, उसका 'मसविदा' (पांडु-लिपि) तैयार हो गया है, और उसको वह संपूर्ण सभासदों की कमेटी में पेश करके फिर भारतवासियों की एक महासभा में पास कराना चाहते हैं। इसका क्या फल होगा, यह तो भविष्य के अधीन है, पर मसविदा बहुत ठीक और समय के अनुसार बना है। वह यह है—

नवीन ऐक्ट

(१) इस क़ानून का नाम मस्तराम ऐक्ट होगा। यह हिंदोस्तानियों के घरों में चलाया जायगा। पास होने की तारीख़ से इसके अनुसार काम होने लगेगा।

(२) इस क़ानून में सभ्य 'पुलीस' से मतलब मस्तूरात, यानी औरतों, से होगा। हाजत से 'पाख़ाना' समझा जायगा; क्योंकि सबकी हाजत वहीं रफ़ा हुआ करती है। 'चपतगाह' से गुद्दी का और 'खूँटियां' से 'कानों' का अर्थ ग्रहण किया

जायगा। थप्पड़ के माने चार उँगलियों से गालों पर चोट पहुँचाना और झापड़ के माने पाँचों उँगलियों सहित हथेली से चेहरे पर चटाचट की आवाज़ का तमाचा ख़याल किया जायगा।

(३) इसका मानना हरएक हिंदू के लिये फ़र्ज़ या धर्म होगा, और जो दंड इस क़ानून के अनुसार दिए जायँगे, उनकी अपील न हो सकेगी।

दंड-विधान

(४) जो मनुष्य-जाति की सुधारनेवाली सभाओं में जाकर थपोड़ी पीटेगा, वह सुधारक या रिफ़ार्मर कहा जायगा। उसको हर काम में अपनी बीबी की सलाह लेकर काम करना पड़ेगा, और भूल हो जाने पर उसको अपनी खूँटियों को पकड़कर घरवाली के सामने उठा-बैठी करनी पड़ेगी।

(५) जो आदमी ऐसी सुधारक-सभा में जायगा, जिसमें चारों वर्णों में शादी होने की राय तय हो गई हो, और फिर वह अपनी जाति में लड़की या लड़के का संबंध करेगा, तो उसकी चपतगाह की दिन में दो बार मरम्मत की जायगी। अगर श्रीमती के कड़ों या आभूषणों की चोट सज़ा देने में लग जाय, और ख़ून वग़ैरह निकल आवे, तो यह सब काम भी उसी मरम्मत के अंदर ही गिना जायगा।

(६) जो सुधारक विवाह पर लेक्चर झाड़ेगा, या उसके प्रस्ताव स्वीकार करनेवाली सभा में मेंबर होगा, और फिर भी उसके कुटुंब में विधवा होगी, तो उसकी घरवाली पुलीस का दारोग़ा बनकर उसके मुँह पर ११७ थप्पड़ लगावेगी, और जब तक वह सुधारक-सभा का मेंबर रहे, सप्ताह में दो बार उसको यह सज़ा दी जायगी।

(७) जो सुधारक पर्दा उठाने की राय देगा, और फिर भी

औरतों को पर्दे में रक्खेगा, उसकी झुटैया पकड़कर घर की लक्ष्मी पाख़ाने के अंदर बंद करके कम-से-कम दो साल तक क़ैद रक्खेगी।

(८) जो सुधारक बाल्य-विवाह को कुरीति कहकर प्लेटफ़ार्म पर फुदकेगा, और उस पर भी दुधमुँहे बालकों की शादी करना बुरा नहीं समझेगा, उसे महिला-कानफ़्रेंस में कान पकड़कर सवा लाख दफ़े उठना-बैठना पड़ेगा।

बाबा मस्तराम का यह कानून प्रत्येक गृहस्थ के मनन करने योग्य है। इसके चलने से दो बातें तय होंगी ; या तो सुधार की चाल चलकर नवीन समाज बन जायगी, या फिर रात-दिन की थपोड़बाज़ी से छुट्टी मिल जायगी। यह क़ानून किसी कांग्रेस, कानफ़्रेंस या प्रभावशाली कौंसिल में अवश्य उपस्थित होना चाहिए।

इति पंचपुराणे प्रथमस्कंधे द्व्यशीतितमोऽध्यायः

त्र्यशीतितम अध्याय

रिफ़ार्मर का स्वप्न

मिस्टर पिल्ले तिवारी रिफ़ार्मरों के भी रिफ़ार्मर हैं। यह यदि एक दिन भी अपने मन की करने पावें, तो ग़ज़ब हो जाय। इनका यह मत है कि मनुष्यों को बिलकुल सींग और पूँछ के जीवों के समान आचरण रखना चाहिए। यही स्वतंत्रता का परम पद है। जो लोग चातुर्वर्ण्य की बेटी-रोटी की चाल चलाया चाहते हैं, उनकी भी इनके सामने नानी मरती है। आपका कथन यह है कि ब्राह्मण ने शूद्रों से शादी की, तो नई बात क्या हुई ; क्योंकि सैकड़ों ब्राह्मण क्षत्रिय म्लेच्छ स्त्रियों तक के पीछे दौड़ते फिरते ही हैं। इसी प्रथा के अंदर निम्न श्रेणी के अंत्यजों का भेद भी आ

गया। जब यवनी के हाथ से पान खाना और उसके स्पर्श का संबंध समाज में चलाया ही जा चुका है, तो डोम-चमार आदि को ऊँचा करने की बहस कुछ ऊँची श्रेणी की नहीं है। इसलिये मिस्टर पिल्ले यह कहते हैं कि रिफ़ार्मरों का काम इसके आगे बढ़ना चाहिए, अर्थात् मनुष्यों को पशुओं के साथ बिरादराना संबंध क़ायम करना चाहिए।

इसमें वह बड़े-बड़े तर्क उठाते हैं। कहते हैं, यदि आदमी का विवाह भैंस या बकरी के साथ हुआ करे, तो ब्रह्मचर्य की तो पूरी ही तरक़्क़ी हो जायगी। और, जब वह उसका दूध पी लिया करेगा, तो जोरू के दूध की गाली मानने की जो ख़राब चाल चल पड़ी है, वह भी दूर हो जायगी। भैंस का पिता दहेज नहीं दे सकता। बस, दहेज की चाल भी उठी ही दिखाई देगी। और, जब वह पार्क में चरती हुई घूमेगी, तो मनहूस पर्दे का भी देश से निकाला हो जायगा। आभूषण वह पहनेगी ही नहीं। चलिए, गहने-कपड़े का दावा होने का भी डर मिट गया। सारांश यह कि इस प्रकार के विवाह में रिफ़ार्म की बुद्धि से सब प्रकार मंगल-ही-मंगल दिखाई देता है।

मिस्टर पिल्ले साहब इस बात को सैकड़ों प्रमाणों से सिद्ध करते हैं कि जानवरों के साथ सभ्य-समाज का मेल होने से किसी तरह की हानि नहीं है। यदि पशुओं की तरह, बिना हाथों की सहायता से, बरतन में मुँह डालकर लोग खा लिया करें, तो हाथ भी साफ़ रहें, और चमचे तथा काँटे के ख़र्च से भी छुटकारा मिल जाय। आपका कथन है कि पशु स्वभाव से ही मनुष्य से चतुर है; क्योंकि उसका नाम जानवर है। यह शब्द-शास्त्र के घुमाव-फिराव से जानकार के अर्थ में लिया जा सकेगा। इसके विरुद्ध आदमी के जितने नाम हैं, उनके माने मूर्खता से भरे हुए हैं।

जैसे किसी का नाम शिवप्रसाद है, तो वह कहा जाता है, जो दोने में रखकर मंदिरों के पुजारी दर्शकों को दिया करते हैं। वह खाने की चीज़ है, जिसके अनुसार मनुष्य भोजन बन जाता है। किसी का नाम हुआ हुलासराय, तो इस नाम से वह हुलास अर्थात् सुँघनी बन गया, और तमाखू की बहन हो गया। मिस्टर महोदय ने मनुष्यों की नामकरण-प्रणाली का उत्कृष्ट खंडन करके यह सिद्धांत प्रतिपादित किया है कि नाम किसी का होना ही न चाहिए। इस प्रकार के सिद्धांती रिफ़ार्मर-समाज में परिवर्तन होने का हिसाब लगाया ही करते हैं।

एक दिन स्त्री-पुरुषों के समानाधिकार की ज्ञान-माला का राग अलापते-अलापते पिल्ले साहब -सो गए। मुँह से ख़र्राटों का प्रबल वेग चल पड़ा, और उनके सामने विचारे हुए संस्कृत-समाज का चित्र खड़ा हो गया। वह एक ऐसी बस्ती में पहुँचे, जहाँ औरत-मर्द, सब बराबर थे—अर्थात् दोनों हर काम पर नियत हो सकते थे। मिस्टर पिल्ले ने देखा, औरतें हल जोत रही हैं, और मर्द घर में बैठे रोटी पका रहे हैं। स्त्रियाँ बाज़ारों में घूम रही हैं, और मर्द वेश्या-वृत्ति का व्यापार करते हुए चौकों में कमरों के छज्जों पर डटे हैं। आगे बढ़कर उसने पुलीस की चौकी पर कोतवाल से लेकर सिपाही तक के पदों पर औरतों को पाया, और ज़नख़ों के समूह तथा नख़रे करते हुए मर्द देखे। यह सब देखकर मिस्टर की बुद्धि चकरा गई। वह सोचने लगा, मैं स्वर्ग में आ गया। रिफ़ार्मर अर्थात् सुधारकों के लिये यदि कोई दिव्य लोक है, तो यही। जैसे कुरानी बिहिश्त में नाचनेवाले लड़कों की कथा है, और व्यभिचारियों के देव-लोक में वाम-लोचनाओं की शृंगार-शैली की इतिहास-माला है, वैसे ही रिफ़ार्मरों के भगवान् की राजधानी में स्त्रियों का काम मर्दों के समान और पुरुषों का कृत्य घर की देवियों

का-सा होना ही चाहिए। इस विचार-सागर में पड़े पिल्ले तिवारी आनंद के ग़ोते लगा ही रहे थे कि उन्होंने देखा, उनका विवाह एक विदुषी से हो गया है, और वह वेद के अर्थ करके मिस्टर महात्मा को सुनाया करती है। कुछ दिन के बाद इनके घर पुत्रोत्सव का अवसर आया, और रिफ़ार्म-रीति के अनुसार बड़ी धूम-धाम मची। पर पुत्र के होने पर एक नवीन शास्त्रार्थ की चर्चा चलने लगी, और तिवारीजी को पेट-कष्ट की बारी ने दर्शन दिए। मामला यह था कि चिरंजीवि बालक के खिलाने को जब कोई न आया, और दाई इस स्वप्न के स्वर्ग में नहीं मिली, तो मिसेज़ तिवारी ने यह प्रस्ताव उपस्थित किया कि बालक को आधे समय मिस्टर पिल्ले खिलावें, और सप्ताह में तीन दिन रोटी पकाने का काम भी वह किया करें; क्योंकि पुरुष और स्त्री, दोनों गृहस्थी के अर्द्धांग हैं। इस पर बड़ा झगड़ा मचा। पिल्ले बालक को लादने और चूल्हे की उपासना करके रोटियों की सृष्टि करने पर राज़ी नहीं होते थे, और बीबी साहबा वोटाधिकारिणी मेमों के समान बल-पूर्वक उनसे काम लिया चाहती थीं। इस प्रकार कई दिन तक ठायँ-ठायँ होती रही। जब इससे कोई बात तय न हुई, तब एक दिन बड़ी भारी सार्वजनिक सभा में पति-पत्नी का शास्त्रार्थ होना निश्चित हुआ। इससे यह भी मामला ठीक हुआ कि दो में से जो इस तर्क-वाद में हारेगा, उसको कान पकड़-कर उठा-बैठी की क़वायद भी करनी पड़ेगी। इस तर्क-वाद की बड़ी धूम फैली, और रिफ़ार्मर-स्वर्ग के बड़े-बड़े नामी-गरामी लोग सभा में दर्शक बनकर बैठे। देखते-ही-देखते शास्त्रार्थ का दंगल खचाखच भर गया, और कर्कशा-शास्त्र की कलह-पूरित कार्य-वाही का आरंभ हुआ।

पहले बीबी ने कहा—"स्त्री और पुरुष यों तो प्रकृति

या नेचर के अनुसार बराबर हैं ; पर औरत का हक़ ज़्यादा है।"

यह सुनकर मिस्टर पिल्ले तिवारी बोले—"कभी नहीं । मर्द का अधिकार है ; क्योंकि वही गृहस्थी का पालन-पोषण करता है। जिस प्रकार जगत् का पालन-कर्ता परमात्मा पिता है, उसी प्रकार गृहस्थी का पिता पुरुष है।"

इसका जवाब बीबी न्हाहदा ने यों दिया—"यह बात बिलकुल ग़लत है । वह पिता होगा, तो छोकरों का या लड़कियों का। सबका पिता कैसा ? वह चाहे सारे संसार का पिता हो, किंतु घर की स्वामिनी का तो सर्वदा दासानुदास, ग़ुलाम ही है।"

अब पिल्ले साहब ने पूछा—"पुरुष के ग़ुलाम होने का क्या प्रमाण है ? वह तो पति कहलाता ही है। पति का अर्थ ही उसको स्वामित्व का पद प्रदान करता है।"

इसका जवाब श्रीमती ने यह दिया—"पति का नाम कुछ करामात नहीं रखता । हाकिम पबलिक सर्वेंट यानी सर्वसाधारण के नौकर कहलाते हैं ; किंतु वे नौकर हैं नहीं । इसी प्रकार पति चाहे स्वामी कहलावे, पर स्वामी है नहीं।"

इस उत्तर से सारी सभा में हर्ष-ध्वनि प्रकट हो गई। हर तरफ़ करतल-ध्वनि होने लगी।

पिल्ले तिवारी ने बहुत कुछ उज्र-माज़रत किया, पर उससे हार उन्हीं की मानी गई। सबकी सम्मति से यह तय पाया कि पिल्ले महात्मा हार गए। उन्हें पुत्र को पीठ पर लादकर प्रतिदिन १४ घंटे रखना होगा ; क्योंकि १२ घंटे तो अर्द्धांग के हक़ के हैं, और श्रीमती ने १० मास लगातार पेट में बालक को रक्खा है, इसके बदले २ घंटे रोज़ पिल्ले को पुत्र का अधिक पालन करना चाहिए।

इस बात से तिवारीजी बड़े घबराए, और जब लोगों ने फ़ाम-

पकड़कर उठने-बैठने को कहा, तब उनकी समझ जाती रही। वह उठकर भागे। औरतों की पुलीस ने उनको पकड़कर घसीटा, और कान पकड़ने को कहा। अब वह बालकों की तरह लोट गए। इसी ईंचातानी में इनके शरीर की वह दशा हो गई, जो मरे हुए लँडियों की होती है। कई जगह खरोंचों के लगने से खाल कट गई। मारे दर्द के वह हाय-हाय करने लगे। इसी घबराहट में उनकी नींद खुली, तो टूटी चारपाई शरीर में गड़ने लगी।

इति पंचपुराणे प्रथमस्कंधे त्र्यशीतितमोऽध्याय·

चतुरशीतितम अध्याय

हँसोड़ की शादी

शादी का नाम सुनकर कुँआरों, कलियुगी ब्रह्मचारियों और बिना जोरूवालों के मुँह में पानी भर आता है। सैकड़ों बिना शादी के संसार में रहने को केवल पाप की लादी समझते हैं। चाहे जन्म-भर मड़वे की तपस्या में मिली गृहलक्ष्मी बंदर की तरह नाच नचावे, चाहे वह लड़कों की फ़ौज की सृष्टि बनाकर ग़रीब की आमदनी को स्वाहा करके घर-भर को अकाल के मारों की अवस्था को पहुँचा दे, चाहे वह फ़र्माइशों के गोलों के मारे पति के खोपड़ी-रूपी क़िले से बुद्धि को भगाकर वहाँ भोंदूपन का राज्य स्थापित कर दे ; पर शादी करने की चाह सबको होती है। शादी के नाम से कुछ लोगों की लार टपकती है ; कुछ लोग उस परम पद को न पाकर जन्म-भर शादी के गीत गाने ही में अपना जन्म सफल समझते हैं। कुछ ज़ोरदार जोरू के जुल्म की कथाओं के रोदन में जीवन-यात्रा समाप्त करने को चारों धाम की यात्रा विचारते हैं। इसके लाखों इतिहास हैं। उनमें एक ऐसा है, जो व्यास-

कथा का उपपुराण हो सकता है। वह यहाँ पर उद्धृत किया जाता है। आशा है, कथा के श्रोता आज उसी से संतुष्ट होंगे—

"तब से चिल्लाता आता हूँ कि मैं एक अच्छे रईस आदमी का लड़का हूँ। हमारे यहाँ 'वाणिज्ये वसते लक्ष्मीः' के अनुसार सदा से वाणिज्य-व्यापार का काम होता आता है। घराने के सयाने लोग सदा से सेठ कहाते आते हैं। मैं एक पुराने ढर्रे के सेठ का लड़का हूँ। मेरे बाप बुड्ढे होते जाते हैं, और मैं दिन-दूना रात-चौगुना जवान होता जाता हूँ। मुझे न तो 'रात को नींद है और न दिन को भूख।' इस मौक़े पर मेरी जो दशा हो रही है, उसका ठीक अनुभव शायद हज़रत मजनूँ ही को हुआ होगा। चौबीसों घंटे मेरे सिर पर प्रेम महाराज की अपूर्व शक्ति अपना राज्य जमाए रहती है। शुद्ध हृदय महादेव को जिसने हैरान कर डाला, वही भूत मेरे पर सवार है। मेरी ऐसी दशा देख बूढ़े वालिद ने एक बढ़िया और बड़ी ही खूबसूरत पोडशी बाला के साथ मेरी शादी करने का निश्चित संकल्प किया है। छः-चार यानी दस रोज़ के भीतर जिस सुकेशी के साथ धूम-धाम और बड़ी शान-शौक़त से मेरी शादी होनेवाली थी, उसी को सौभाग्य-वश मैंने बग़ीचे में नेत्र खोलकर देख भी लिया। इस बात का बड़ा ही डर था कि कहीं मेरी औरत कुरूपा और काली न हो। पर वह तो सुंदरता के कल्पवृक्ष की डाली ही निकली। पर वाह रे मैं, और मेरी क़िस्मत! मेरी शादी उस पोडशी बाला से न हो, इसके लिये मेरे दो 'विपकुम्भं पयोमुखम्' मित्र दिन-रात पड्यंत्र रचा करते थे। वैसा कब होनेवाला था। आख़िर को शादी बड़े आनंद के साथ उत्तम प्रकार से हो गई, और मेरे समर्थ लालाजी ने उसी लग्न में द्विरागमन का कार्य भी निपटा दिया। शादी करके मैं सानंद घर लौटा। इधर मेरे आगत-स्वागत की बड़ी धूम थी।

जो आनंद आया, वह अलेख्य था। और सुनिए, अब मुझे घर से बाहर निकलने का मौक़ा बहुत ही कम क्या, कभी हाथ ही न आता था। सारी स्वतंत्रता उस षोडशी ने छीन ली, और मैं पलँग का परम उपासक महंत ही बन गया।

"एक रोज़ बूढ़े वालिद ने मुझे बुला भेजा, और कहा—बेटा, अब मेरी पहले की-सी शक्ति नहीं रही। वाणिज्य का सब काम अब तुम्हें ही देखना पड़ेगा, और बाहर प्रवास में भी महीनों रहना पड़ेगा। कारण, बिना वाणिज्य-व्यापार किए हमारा बड़प्पन जाता रहेगा। अतएव मैं तुम्हें उचित शिक्षा देता हूँ कि तुम इस कार्य का भी भार अपने ऊपर लो।

"पिता की आज्ञा अनुल्लंघनीय है—इस वाक्य का स्मरण कर मुझसे अपने बूढ़े बाप की आज्ञा टालते न बन पड़ी। चट चार सेवकों को साथ लेकर घर से निकल पड़ा, और थोड़ी दूर चलकर अपना डेरा एक गाँव में डाला। वे दोनों नवयुवक, जो उस षोडशी बाला पर आसक्त थे, और मेरे विवाह में विघ्न डाला चाहते थे, अब मुझसे बदला लेने का अवसर ताक रहे थे। उन्हें अच्छा मौक़ा मिला। उन दोनों ने मेरा पीछा किया। रात को भोजनोपरांत थोड़ी देर तक मैंने अपना हुक़्क़ा गुड़गुड़ाया, और फिर सो गया। हम सबको बाहर मुक़ाम में सोते देख उन दुष्टों ने मेरी वह अँगूठी, जो प्रेमलतिका ने शादी के समय मुझे दृढ़ और सच्चा प्रेम निरंतर बनाए रखने के लिये पहनाई थी, चुपचाप निकालकर कूच कर दिया। दूसरे दिन निद्रा खुलने पर मुझे ज्ञात हुआ कि उँगली में वह अँगूठी नहीं है। अब संकल्प-विकल्प में पड़ा, और किं-कर्तव्य-विमूढ़ हो गया। अंत को चित्त में यह ठानकर कि कहीं वह अँगूठी घर ही में न रह गई हो, मैं आगे बढ़ा। इधर वे दोनों नीच अँगूठी लेकर घर पर पहुँचे, और जाकर मेरे पिता से बोले—हम लोग

पुर-नामक शहर के रहनेवाले ब्राह्मण हैं। आपके पुत्र का क़ाम है। उन्होंने अपनी स्त्री प्रेमलतिका को बुला भेजा है। आपको हमारी बातों का एतबार न हो, तो लीजिए, यह उन्होंने अपनी एक अँगूठी भी हमें दी है। अँगूठी देखकर बूढ़े बाप और प्रेमलतिका, दोनों को पूर्ण विश्वास हो गया। अब बेचारी प्रेमलतिका इनके साथ हो ली। जब इन्होंने देखा कि उपाय सफल हुआ, तो ये वंचक मन-ही-मन बड़े प्रसन्न होने लगे, और उस सती साध्वी स्त्री को छल से लेकर आगे बढ़े। उन व्यभिचारियों के मन में ज्यों ही पाप का प्रवेश हुआ, त्यों ही वे अनेक प्रकार के तर्क-वितर्क करने लगे। प्रेमलतिका जान गई कि ये दुराचारी मुझे ठगे ले जा रहे हैं। चलते-चलते शाम हुई, और ये तीनों एक क़स्बे में पहुँचे। प्रेमलतिका बहाना बनाकर एक पेड़ के नीचे बैठ गई, और कहने लगी—भाइयो, मुझसे अब अधिक चला नहीं जाता, और इधर शाम भी हो गई है। मैं बहुत ही थक गई हूँ। मुझे सोने की इच्छा हो रही है। जाओ, शहर के भीतर सोने की जगह तलाश कर आओ। तब तक मैं इसी वृक्ष के नीचे आराम करती हूँ। जगह तलाश करने की इच्छा से वे दोनों पाखंडी शहर को गए। उनके लौटकर आने तक इधर प्रेमलतिका रफ़ूचक्कर हुई। रात-भर जंगलों में अकेली चलते-चलते सुबह होने पर एक सुंदर तड़ाग के तट पर जा पहुँची। तड़ाग के भीतर कमल खिल रहे थे। भ्रमर-गुंजार से वह स्थान और भी रमणीय जान पड़ता था। आम के फलदार पेड़ों पर कोयल अपनी तान अलग अलापती थी। चारों ओर वसंती बहार की भरमार थी। आहा! ऐसी नेत्र-प्रिय प्राकृतिक छटा को देख प्रेमलतिका पथ-यात्रा का सारा दुःख भूल गई, और तड़ाग का जल पीकर एक रसाल के पेड़ के नीचे चुप-चाप सो गई। सोते ही निद्रादेवी ने आ उसे परम आह्लाद के

सहित अपनी गोद में लिया। इसके थोड़ी देर बाद दो नवयुवक—राजकुमार और मंत्रीकुमार—उसी राह से शिकार के लिये निकले। उन्होंने उस परम सुंदरी षोडशी बाला को अकेले जंगल में शयन करते देखा। विकट जंगल में ऐसी रूपवती कन्या को देख उनके आश्चर्य की सीमा न रही। वे दोनों आपस में बातचीत करने लगे।

"इतने में प्रेमलतिका की निद्रा खुली। राजकुमार और मंत्रीकुमार में परस्पर इसलिये झगड़ा होने लगा कि प्रेमलतिका का पूर्ण अधिकारी कौन बन सकता है? राजकुमार और मंत्रीकुमार की ऐसी दशा देख प्रेमलतिका को अपने बच भागने की युक्ति सूझ पड़ी। उसने उन दोनों नवयुवकों से कहा—महाशयो, आप लोग मेरे लिये इस प्रकार क्यों उत्कंठित हो रहे हैं? मुझे कोई बिना परिश्रम पानेवाला नहीं। लो, यह तुम्हारे ही तीर-कमान से मैं एक तीर मारे देती हूँ। तुममें से जिसमें अधिक शक्ति होगी, वही उस तीर को लावेगा, और मेरे पाने का भी पूर्ण अधिकारी बन सकेगा।

"दोनों नवयुवकों को यह बात अच्छी जची। वे प्रेमलतिका के कर से शर छूटते ही अपने साहस और शक्ति-भर ख़ूब ज़ोर से दौड़ने लगे। इधर प्रेमलतिका को आगे बढ़ने का अच्छा अवसर हाथ लगा। वह चट एक घोड़े पर सवार हुई, और अपने पिता के घर की राह ली। दोनों कुमारों के लौटकर आने तक प्रेमलतिका अपने पिता के घर सानंद पहुँच गई। इधर मंत्रीकुमार और राजकुमार, दोनों प्रेमलतिका की चालाकी की प्रशंसा करते हुए अपने देश को लौटे। प्रेमलतिका चिंताहीन हो, सुख से अपने पिता के घर रहने लगी। पर मैं जब प्रवास से पूर्व के सुख का स्मरण करते घर लौटा, और प्रेमलतिका से मेरी भेंट न हुई, तब प्यारे

पाठको, मुझे जो कष्ट हुआ, वह कहा नहीं जा सकता। प्रेमलतिका के बिना जीवित रहना ठीक नहीं, ऐसा दृढ़ संकल्प कर मैं घर से निकल पड़ा, और देश-विदेश में जाकर प्रेमलतिका का पता लगाने लगा।

"ढूँढ़ते-ढूँढ़ते मैंने सीधी अपनी ससुराल की राह पकड़ी और दिन-डूबते वहाँ जा पहुँचा। साधुभाव से मेरी अच्छी ख़ातिरदारी की गई, और मैं रात-भर प्रेमलतिका के वियोग का भजन गाता रहा। लोग मुझे पागल समझते थे; पर प्रेमलतिका इस भाव का अर्थ समझ गई। दूसरे दिन मुझे वह अपना पति जान स्वयं आकर मेरे हृदय से लग गई। दोनों ने घंटों तक प्रेमाश्रु बहाकर इतने दिन के वियोग का अंत कर डाला। जिस प्रकार आनंद के साथ प्रेमलतिका का और मेरा मिलन हुआ, उसी प्रकार ईश्वर सबको मिलाता रहे, यही मेरी आंतरिक इच्छा है।

भवदीय—
एक हँसोड़"

इस हँसोड़ के समान सैकड़ों ऐसे हैं, जो रात-दिन जोरू-स्तोत्र—बीबी-सहस्रनाम का—घर पर दुर्गा-सप्तशती आदि ग्रंथों के समान पाठ किया करते हैं। और, उनसे भी ज़्यादा ऐसे लोग हैं, जो शादी के यज्ञ में बलिदान होने के लिये मोटे बकरों का काम देने को तैयार हैं। हज़ारों जूतियाँ खा रहे हैं, और लाखों कष्ट पाकर "भों-भों"-राग के स्वर अलाप रहे हैं। कितने ही जोरू से लड़कर कलह करने में जन्म खो रहे हैं। पर इतना होने पर भी शादी के नाम पर लोगों के मुँह में पानी भर आता और लालसा की नदी का सोता-सा बहने लगता है। शादी के विषय में किसी कवि की एक उक्ति बड़ी सुंदर बन पड़ी है। वह यह है—

लोग कहते तो हैं इसे शादी;

पर यँ है सच गुनाह की दादी।
जिसने बीवी को घर में रक्खा है;
लदी उस पर गधे की है लादी।
रात-दिन हो रही है फ़र्मायश;
"न यह ला दी मियाँ न वह ला दी।"
जिस घड़ी टेंट में टका न हुआ;
उसी दम आबरू की बरबादी।
ताव मूछों पँ जो दिया करते;
करके शादी बने हैं वह मादी।
जब हुई घर में फ़ौज लड़कों की;
फ़ौजदारी की रोज़ फ़र्यादी।
लड़ाई इस तरह मची रहती;
घर है दोज़ख़ की गोया आबादी।
ख़सम, बंदर में फ़र्क़ है इतना;
दुम मियाँ ने है गोया कटवा दी।
कैफ़ियत यह कि सैकड़ों "पंडित";
अब भी कहते हैं "हाय, हो शादी"।

इति पंचपुराणे प्रथमस्कंधे चतुरशीतितमोऽध्यायः

पंचाशीतितम अध्याय

कलियुगी कार्यालय

जब एक छोटी सभा का मंत्री अपनी सभा की थोथी कार्यवाहियों की पोथी बनाकर संसार में तारीफ़ का टोकरा लादकर चलना चाहता है, तो श्रीमान् कलियुग महाराज, जिनकी तरफ़ से भू-मंडल में आंदोलन के चरखे घूम रहे हैं, क्योंकर मौनव्रती रह

सकते हैं ? अब आपने आज्ञा दी है कि संसार-भर में जो कुछ उद्योग उनके चेले-चापड़ कर रहे हैं, उसकी रिपोर्ट बराबर बृहदाकार में प्रकाशित की जाय। इस आज्ञा को पाते ही महाचार्यजी के प्रधान कार्यालय में रिपोर्टों के बंडल-के-बंडल दनदनाते चले आ रहे हैं। उनका इतना ढेर लग गया है कि हेड क्लर्क का हेड अर्थात् सिर बिलकुल पैकटों से दब गया है। इस बात का भय हो गया है कि यदि रिपोर्टों की ऐसी ही भरमार रही, तो कार्यालय के कर्मचारियों की जानें बंडलों से दबकर निकल जायँगी, और कलियुगजी का कार्यालय क़ब्रस्तान का नातेदार बन जायगा। इस आशंका से नए रंगरूट बाबू भरती किए गए हैं, और वह कुलियों की तरह दौड़-दौड़कर उसी तरह काम करने में लगे हैं, जैसे हमारे दफ़्तरों के बाबू लोग लगे रहते हैं। इस नवीन दास-दल ने प्रत्येक विभाग की रिपोर्ट अलग-अलग कर डाली है, और उनका अलग-अलग प्रकाशित करना भी आरंभ कर दिया है। ये सब उर्दू-भाषा में तैयार की गई हैं; क्योंकि श्रीमान् कलिकालजी की आज्ञा है कि उनका कार्यालय कीड़ों की तरह बिलबिलाते अक्षरों में ही सुशोभित रक्खा जाय। ख़ैर, पहली रिपोर्ट जो इस प्रधान कार्यालय से निकाली गई है, उसका नाम "रिपोर्ट महकमे ऐयाशी" है, जिसका अर्थ साधारण भाषा में होता है—व्यभिचार-विभाग का वार्षिक विवरण। यह रिपोर्ट ख़ासकर उनके काम की ज़रूर है, जो अपने पेट की उपासना की प्रेरणा से उपदेशक और आचार्य बनकर सर्वसाधारण के चंदे के गले पर छुरी फेर रहे हैं, या धर्म का बहाना करके समाज में कलह की खेती के किसान हो रहे हैं। साथ ही, जो दुराचार की गंदी नालियों के जीव होकर पाप-कर्म में डूबे हुए अपने को 'ऐयाश' कहते हैं, उनको भी इस विवरण से अपनी जाति के जीवों का बहुत कुछ पता लग सकता है। इस

रिपोर्ट का इतना ही माहात्म्य क्या थोड़ा है ? कलियुग महाराज के हेडक्लर्क या कार्यालयाध्यक्ष श्रीयुत मिस्टर शैतान ने अपनी भूमिका में बड़ी बृहदाकार आलोचना की है। उसमें व्यभिचार के प्रकार के फ़िलासफ़ी की रागिनी गाकर यह सिद्ध किया गया है कि बड़े-बड़े लोग इसी की आजीविका में लगे हैं । पाठकों या व्यास-कथा के श्रोता-मंडल के कुतूहल को दूर करने के अर्थ रिपोर्ट का इतस्ततः कुछ अंश उद्धृत किया जाता है—"महकमे ऐयाशी की मुख़्तलिफ़ रिपोर्ट इस अम्र को पुख़्ता बुनियाद पर क़ायम करती है कि जमातें-इंसान का एक कसीर हिस्सा महज़ इश्क़ यानी औरतों और मर्दों के मिलाने के पेशे में अपनी औक़ात बसर कर रहा है।" इसका मतलब यह है कि संसार में बहुत-से मनुष्य वही जीवन व्यतीत करते हैं, जो कि वारांगनाओं की मध्यस्थता का होता है।

इसी रिपोर्ट में आगे चलकर लिखा है कि जान स्टुअर्ट मिल साहब ने अपनी 'तत्त्व-विचारमाला' में स्त्रियों की जीविका के लिये बड़े-बड़े भाव लिखे हैं । साहब का दार्शनिक मत यह है कि स्त्री और पुरुष, दोनों बराबर हैं; फिर संसार-भर के यावत् कार्य पुरुष ही क्यों करें ? और स्त्रियों को केवल दुलहिन बनकर रहने का काम सिपुर्द करें ? उनका कथन है कि मर्दों की स्वार्थपरता ही के कारण स्त्रियों को अपने शरीर बेचने का पेशा दिया गया है । इस प्रकार पुरुषों की बड़ी निंदा और स्त्रियों की प्रशंसा करके रिपोर्ट के प्रधान अंग का संगठन हुआ है, जिसमें दिखाया गया है कि संसार में ऐयाशी की दिनोदिन उत्तरोत्तर वृद्धि होती जाती है, और सुधारक तथा संसार में शुद्धाचरण फैलानेवालों की बराबर हार-पर-हार हो रही है।

कहते हैं, जर्मन-देश में ४० लाख स्त्री और पुरुष अदालत से

पति या पत्नी को त्यागने की आज्ञा प्राप्त कर चुके हैं। यह इस बात का जीता-जागता प्रमाण है कि व्यभिचार या ऐयाशी सभ्यता की बढ़ती के साथ ज़ोर पकड़ती जाती है। महकमे ऐयाशी की रिपोर्ट में इस पति-त्याग-प्रणाली पर बड़ा हर्ष प्रकट किया गया है, और आशा की गई है कि वह दिन शीघ्र आवेगा, जब भारतवर्ष में भी स्त्रियों को यह सौभाग्य प्राप्त होगा।

कलियुग-राज की इस रिपोर्ट में ऐयाशी के बड़े-बड़े उपाख्यान लिखे हैं। उनमें से कुछ यहाँ पर श्रोताओं को अर्पण कर देना उचित समझा जाता है।

कलियुग के ऐयाशी-विभाग की रिपोर्ट में आगे चलकर जो लिखा है, उसका भावार्थ यह है—

व्यभिचार ने जितना कार्य कलिराज का किया, उतना किसी ने न किया होगा। ऊपर से नीचे तक सब श्रेणियों में गड़बड़ मचा दी। व्यभिचार के ऐसे-ऐसे उपासक उत्पन्न कर दिए, जिन्होंने बिलकुल पाशव प्रथा चलाकर उन विचारकों की बात का प्रत्यक्ष प्रमाण बना दिया, जिनका मत यह है कि आदमी पशु की औलाद है; क्योंकि बहुत-से लोग अब भी सींग और पूँछवालों का आचरण कर सकते हैं। इसके प्रत्यक्ष उदाहरण लाला गिरगिटपरसाद हैं। यह लाला कामदेव के पूरे उपासक हैं, और रात-दिन ता-ना-री-री में समय खोने ही को अमीरी का चिह्न समझते हैं। प्रातःकाल सूर्योदय के साथ उठने की तो इनकी आदत नहीं है, अतएव इनका दिन ६ बजे से आरंभ होता है। उठते ही प्रातःसंध्या की जगह इनके आश्रम में भैरवी की अलाप के साथ इश्क़बाज़ों के वह विलाप होते हैं, जिनकी उत्पत्ति बाज़ारू औरतों की ज़ेरपाई के प्रहार से होती है। यही इनका संध्या-वंदन है। तबले पर थाप पड़ना ही इनकी संध्योपासना का अंगन्यास है, और विरह-लीला तथा हाव-भाव

कटाक्ष का गान ही इनका भगवत्-भजन। इस प्रकार इस नवीन पूजा-पाठ में ही एक बजने की नौबत आ जाती है। फिर खा-पीकर आ-तो यह पर-स्त्री के चुराने के उपाय में या सोने में अपना समय काट डालते हैं। तीसरे पहर वही प्रेम की राम-कहानी का आरंभ होकर रात के एक या दो बजे तक समाचारों के गले पर बूचड़ों की विधा का अभ्यास किया जाता है। इस अनुष्ठान के पुजारी लाला गिरगिट-परसाद ऐयाशियत में बड़ी ख्याति प्राप्त कर चुके हैं। इश्क़बाज़ी के यह पूरे सी० एस्० आई० समझे जाते हैं। इनकी व्यभिचार-लीला का बड़ा भारी पोथा बन सकता है; पर ऐसे भ्रष्ट ग्रंथ का न बनना ही इष्ट है।

एक दिन का वृत्तांत यह है कि लाला नई नवोढ़ा नायिका की तरह मटकते हुए घर से चले। सिर पर टोपी रखने से माँग की लकीर नीचे आ,जाती थी। उसको पर्दे में रखना इनको अभीष्ट न था। बस, यह नंगे सिर एक गली में घुसे। वहाँ इनके एक संबंधी रहते हैं। शायद वह गिरगिट के मामा लगते होंगे;क्योंकि यह उनको "मामा" कहकर पुकारते हैं। इनके मामा की लड़की बड़ी सुंदरी है। उसी पर गिरगिट की नज़र पड़ी है। इसका कई बार झगड़ा भी हो चुका है, और घरवालों ने शौक़ीन बाबू के वहाँ जाने की मनाही भी कर दी है। पर यह कब माननेवाले ठहरे? छिप-लुककर वहाँ जाने ही को यह अपने जीवन का परम साधन समझते हैं।

गिरगिटपरसाद सदा के नियमानुसार अपने अभिलषित स्थान पर पहुँचे। वहाँ थोड़े समय तक बातचीत करते रहे। इतने में इनके मामा आ पहुँचे। अब यह घबराए। इन्हें पुरानी बातें याद आने लगीं। इन पर संदेह करके मामा ने घर में आने की मनाही कर दी थी। अब यह घर के स्वामी की आज्ञा के विरुद्ध अन-धिकार स्थान में आए थे। इसका परिणाम बुरा होगा, यह विचार-

कर इनको पसीने में तर होना पड़ा। इनको वह भी याद आ गया, जो कि इनके संबंधी ने कहा था। यथा—"अगर तुम बिना मेरी आज्ञा के मकान के अंदर गए, तो मार के मारे खोपड़ी अंगुलों ऊँची कर दूँगा।" यह भय से काँपने लगे। इन्होंने समझा, मारपीट का श्रीगणेश होने ही वाला है। यह भागना चाहते थे, पर कहावत प्रसिद्ध है—"चोर के पैर कितने ?"

इधर घर की स्त्रियों में भी हलचल मच गई; क्योंकि घर में पहले ही से यह घोषणा हो चुकी थी कि गिरगिट मकान के अंदर न घुसने पावे। पर वह आ गया और शील या चक्षुलज्जा के कारण उसको निकालने की किसी की हिम्मत नहीं पड़ी। दोनों तरफ़ से घबराहट की नदी का प्रवाह उमड़ आया, और बुद्धि बिलकुल कर्तव्य-विमूढ़ता के जल के अंदर निमग्न हो गई। इतने में घर के स्वामी ने आकर कुंडी खटखटाई, और गिरगिट को भागकर पाख़ाने में छिपने के सिवा और कुछ बात नहीं सूझी। सच पूछिए, तो पाख़ाना भी व्यभिचारियों का देवस्थान है। कुल-देवता के समान वही इनकी रक्षा करता है। सृष्टि के आरंभ से आज तक कितने परस्त्री-गामी पाख़ाने की पुनीत दुर्गंध सूँघकर जूतियों की वर्षा से बच गए, इसका हिसाब लगाना कठिन है। ऐसे प्रत्येक मनुष्य को अपने गरेबान में मुँह डालकर हिसाब लगा लेना चाहिए। ख़ैर, गिरगिट पाख़ाने में घुसे, और घर के स्वामी लाठी पटकते घर में आ पहुँचे। भयभीत गिरगिट की घबराहट ने अब और भी ज़ोर पकड़ा, और प्रत्येक खटखट की खटखटाहट का असर हृदय पर पहुँचकर उसको कँप-कँपी का आश्रय बनाने लगा। पाख़ाने भी तो कई प्रकार के होते हैं; पर जिसमें यह शौक़ीन बाबू बंद किया गया था, वह बिलकुल नरक-कुंड का नमूना था।

एक प्राचीन लेखक ने लिखा है—"पाख़ाना या जाय ज़रूर में हर-

एक आदमी को चाहिए कि जाय ज़रूर ; क्योंकि यह शरीर-शुद्धि के लिये ज़रूरी जगह है।" पर उस लेखक का ध्यान वर्तमान पर-युवती पर लार टपकानेवालों की चाल पर नहीं गया, नहीं तो कम-से-कम पाख़ाना-माहात्म्य तो ज़रूर बन जाता, और इश्क़बाज़ी में सर्वस्व खो बैठनेवालों के पाठ करने के लिये एक उपासना का ग्रंथ अवश्य हो जाता। उसमें यह भी अवश्य लिखा जाता कि पाख़ाने कई प्रकार के हैं। जिस प्रकार रेलवे कंपनी की गाड़ियाँ फ़र्स्ट, सेकिंड, थर्ड आदि दर्जों में विभाजित हैं, और उस पर भी माल-गाड़ी तथा कूड़ा-गाड़ी के नाम गाड़ियों को दिए जाते हैं, उसी प्रकार सब कुछ होने पर भी गंदी-से-गंदी पुरीषोत्सर्ग की जगह भी रंडीबाज़ों के लिये तो परित्राण का कार्य ही करनेवाली उस माहात्म्य में गाई जाती। जिस पाख़ाने में कथा के नायक जा छिपे थे, वह बिलकुल पुराने फ़ैशन का था। उसकी नाली भी कृपणों के स्वभाव की तरह कुछ ऐसी उलटी बनी थी कि आगे ऊँची और पीछे नीची की युक्ति से मोहरी के पानी का ख़ज़ाना बन रही थी। ज्यों ही गिरगिटपरसाद भागकर छिपने गया, त्यों ही एक मोटा चूहा भागकर ऊपर को चढ़ा, बाबू को देखकर धच्ची की तरफ़ से घबराकर ज़मीन में आ गिरा, और पानी में "छप" का भारी शब्द होकर गंदे पानी का अभिषेक कासी को कृतार्थ करने लगा।

यदि चोरी का मामला न होता, तो शौक़ीन गिरगिट ने "छिः-छिः" और "थू-थू" के ढेर के साथ थूक के ढेर लगा दिए होते। पर अब क्या करता? गंदी नाली के मल-मूत्र के मिलित पाख़ाने के जल से अभिषिक्त होने में उसी तरह बैठना पड़ा, जैसे राज्य पर बैठते समय भूम्यधिकारियों को करना पड़ता है। भेद इतना ही था कि उनका राज्याभिषेक कहलाता है, और इसका लँगोटाभिषेक

कहा जाना चाहिए। क्योंकि व्यभिचारियों के चूतड़ों पर लँगोटी का प्रबल राज्य एक-न-एक दिन हो ही जाता है।

चूहे की छपछपाहट से घर के स्वामी का ध्यान पाख़ाने की तरफ़ गया, और वहाँ से ऐयाशी-यज्ञ के अधिष्ठाता गिरगिटपरसाद निकल पड़े। उस समय की इनकी हालत का चित्र खींचने से क़लम बेचारी के घिसकर बरबाद होने का भय है। पर इस छिपकर पाख़ानोपासना का विशेष फल नहीं निकला; क्योंकि गृह-स्वामी ने ललकारकर इतनी ज़ोर से घसीटा कि बाबू के बदन में ख़रोंचे लग गए, और इतनी मार पड़ी कि खोपड़ी की उपमा मरम्मत होनेवाली टूटी-गाड़ी के योग्य हो गई।

"हाय-हाय" और गाली-गलौज से आकाश भर गया। इतनी धायँ-धायँ गिरगिट पर हुई कि यदि स्त्रियाँ न रोकतीं, तो एक का वंश नष्ट हो जाता, अर्थात् मामा भाँजे का घातक बन जाता।

इति पंचपुराणे प्रथमस्कंधे पंचाशीतितमोऽध्यायः

षडशीतितम अध्याय

संग्राम में हँसी

कहते हैं, कहीं पर बुराई से भी भलाई पैदा हो ही जाती है। कहावत जर्मनी के बेगरहेपन से सत्य हो गई। भारतीय दैनिक, जो अपनी ज़िंदगी के दिन गिन रहे थे, एकाएक मोटे महाजनों की तोंद का अनुकरण करने लगे, और चलते-पुर्ज़ों के यहाँ तो ईद का पर्व ही हो गया। उनकी पैसों की थैलियों के फूले हुए पेट देखकर कितनों ही के मुँह में पानी भर आया, और वह भी दैनिकों की पूँछ बाँधकर लंका में कूदनेवाले लंगूरराज की परिपाटी ग्रहण करने लगे। अब जिधर देखिए, उधर ख़बरों की भरमार है। ख़ोनचे-वालों की तरह ताज़ी ख़बरों की आवाज़ें आ रही हैं, और जो अख़-

चार को कभी स्वप्न में पढ़ने का नाम नहीं लेते थे, वे भी बाप की वसीयत की तरह बग़ल में समाचार पत्रों का पुलिंदा लिए घूम रहे हैं।

इतने समाचार पत्रों के होने पर भी भारतीय जन-समूह का बहुत भारी भाग असली ख़बरों को न देखकर गप्प-गोष्ठी में लगा है। उसकी ख़बरें बड़ी विचित्र हैं। उनसे और कुछ चाहे पता न लगे, पर देशवासियों की गहरी नींद का पता ज़रूर चलता है। इन महापुरुषों की गप्प-गोष्ठी बड़ी मज़ेदार है, और उसकी रिपोर्ट भी इस अवसर पर सुनने ही लायक़ हो रही है।

लाला मोटलशाह एक बड़े भारी हलवाई हैं। उनकी दूकान पर कुछ लोग रात को जमा होते हैं। जब ११ बजे के बाद रास्ता कम चलने लगता है, तो लाला के मित्र गप्प उड़ाने का मोरचा जमाते हैं। इन लोगों का पैसे में खुरचन-उरचन सहित कुछ अधिक माल मिल जाना ही इन लोगों को आकर्षित करके वहाँ पर ले जाता है। हाल में एक दिन की कैफ़ियत का यह हाल है कि लाला मोटलशाह मिठाई की गंध से तर-बतर बैठे ऊँघ रहे थे कि उनके दो-चार मुसाहब आ पहुँचे, और लड़ाई की बातें होने लगीं।

एक से लाला ने पूछा—"कहो, आज की क्या ख़बर है गुरू ?"

इस सवाल को सुनकर गुरु ने गर्दन उठाई, और बोले—"फ़ैज़ाबाद में जापानी आ गए। जापान की सेना यहाँ रहेगी और यहाँ की फ़ौज जर्मनी को भेजी जावेगी।" इसकी गप्प सुनकर गुरु की तरफ़ सब देखने और पूछने लगे कि जर्मनी कहाँ है ? इस पर उनके गुरु ने विचित्र कल्पित भूगोल सुनाना प्रारंभ किया। बोले—"जर्मन एक टापू में रहते हैं। यह लंका के पास है। जब सोने की लंका जलकर लोहे की हो गई, तब ये वहाँ की जली हुई मणियाँ उठा ले गए। इसी से इनका नाम जली-मणि पड़ा। अब धीरे-धीरे वह जर्मनी हो गया।"

इस बात पर श्रोतागण ने "वाह-वाह" के ढेर लगा दिए, और गुरु फिर अपनी कथा कह चले—"ये जर्मनी राक्षस हैं। जीते आदमियों को कच्चा चबा जाते हैं। सिर के बल दौड़ते हैं, और बड़ी गहरी चपत देते हैं। इनके सिर पर सींग होते हैं। ये रक्तबीज के चेले हैं।"

इस कथा से लोगों की और भी उत्कंठा बढ़ी, और गुरुजी से लोग लड़ाई की ख़बरें पूछने लगे। गुरु ने कहा—"ताज़ी ख़बर यह है कि पानी में तैरती हुई जर्मनी की एक मंडली कलकत्ते के मछुआ-बाज़ार के घाट पर आ लगी। उसको देखकर घाट के बटवाले सब हाय-हाय करते भागे। वे पानी के किनारे बैठ गए। तब चतुर्वेदी-जाति के चौधरी लोगों ने चारों वेद के मंत्र पढ़कर उनको भगाया।"

सुननेवालों ने इस गप्प को ठीक समझा, और पूछा कि लड़ाई कहाँ पर हो रही है? आपने कहा—"बंबई से थोड़ी दूर एक नार्थ-सी नाम की झील है। उसमें लड़ाई हो रही है। उसी बेलजियम टापू पर जर्मन धावा कर रहे हैं।"

फिर लोगों ने पूछा—"इसका फल क्या होगा?"

तब गोष्ठी के गुरुजी बोले—"अभी तक तो वे बड़ा युद्ध कर रहे हैं। हज़ारों मरे, तब भी आगे बढ़े चले आ रहे हैं। अब अँगरेज़ों ने एक जादूगर भेजा है। फ़रासीसी बाना है। आशा की जाती है कि वह अपने मंत्र से उन सबको मार डालेगा।"

अब एक आदमी कहने लगा—"कलियुग में मंत्र सब कीले हैं। उनका कुछ फल नहीं हो सकता।"

इस विषय पर बड़ा वाद-विवाद होने लगा, और ठायँ-ठायँ हो कर मार-पीट की नौबत आने को हुई। यह देखकर कथा के रिपोर्टर इस अध्याय को यहीं समाप्त करके आगे बढ़े।

इति पंचपुराणे प्रथमस्कंधे षडशीतितमोऽध्यायः

सप्ताशीतितम अध्याय

ढपोलशंखी रस

प्राचीन कवियों ने शृंगार, वीर, करुण आदि आठ विभागों में रस का विभाग किया है। उनकी कविता की सुंदरता इन्हीं आठ रसों में गर्भित है। प्राचीनों की यह परिपाटी कई युगों तक चल चुकी। अब उसके भी बदलने की ज़रूरत दिखने लगी है। आधुनिक उन कवियों के वाक्य, जो लोगों में अपना प्रभाव डालने का बाना बाँधते हैं, किसी-न-किसी रस में अवश्य होने चाहिए। पर उनके अंदर कुछ ऐसा भाव भभकता हुआ निकलता है, जो किसी के हृदय के अंदर बैठना स्वीकृत ही नहीं कर सकता।

पुराने लोगों की चाल से प्रेम-पात्र में वीरत्व का आरोपकर शृंगार में वीर-रस का समावेश किया जाना नियम-विरुद्ध नहीं है। यह दोष नहीं गिना जाता, वरन् सुंदरता का द्योतक है। किसी हिंदी-कवि ने यह कहा है—

"थाकी काहि वाकी जोन जोवन हिया को वनी,
मूरति सिंगार बीच पूरी वीरता की है।"

दूसरा कवि कहता है—

"तिरछी निगाहें होती हैं हरदम जिगर के पार;
इन बरछियों से दिल को कहाँ तक बचायँगे।"

ये उदाहरण प्रेम-पात्र को शृंगार में वीर-रस का आभूषण पहनाकर समलंकृत करने की युक्ति के द्योतक हैं? इसी प्रकार और एक कवि की—

"मसजिद में उसने हमको
आँखें दिखा के मारा;

क़ाफ़िर की देख शोख़ी,
घर में ख़ुदा के मारा।"

ये पंक्तियाँ शृंगार और वीर का एकीकरण करने के कारण प्रशंसा के योग्य हैं। प्रेम-पात्र के द्वारा आहत होने का वर्णन इस विचार से आक्षेप-योग्य नहीं होता कि जिसको वे आघात कहते हैं, वह वास्तविक आघात नहीं, किंतु प्रेमी के हृदय में रोचकता का प्रभाव है, मिलने की आकांक्षा का चिह्न है। पर आजकल के कवियों के मरने की उत्सुकता के भाव न तो वीर-रस हैं, और न वे शृंगार के साथ ही मिल सकते हैं; क्योंकि शृंगार में विरोध का अंश आ नहीं सकता।

नवीन कवियों की प्राण देने की दृढ़ता का भाव वीर-रस में तो आ नहीं सकता। उसके लिये एक नवीन रस का आविर्भाव होना चाहिए। एक तबियतदार साहब यह प्रस्ताव करते हैं कि यदि ऐसा न होगा, तो आगे चलकर यह सारी कविता नीरस मानी जायगी। इसलिये साहित्य-सम्मेलन के आगामी जल्से में हिंदी-रसिकों को एक नवीन रस को ज़रूर जन्म देना चाहिए। इसका सुनाम ढपोलशंखी रस होना ही ठीक जचता है; क्योंकि तुलसी-दास बाबा के—

"अपने मुख तुम आपन करनी;
बार अनेक भाँति बहु बरनी।"

कथन के अनुसार उसमें बहादुरी की शेख़ी के सिवा और कुछ बात प्रकट नहीं होती। इस ढपोलशंखी रस का वर्णन कवियों की लेख-शैली के अनुसार लिखा गया है, जिस पर कवि और कोविद महाशयों को अपनी राय देनी चाहिए।

अथ नवीन रस लिख्यते—

(१) जब करनी करतूत का कविता में कुछ मतलब न हो, और

कवि मुँह-आई बकने से वाहवाही प्राप्त कर सकें, तब डपोलशंखी रस कहना चाहिए।

(२) पूर्व-काल में आठ रसों के देवता प्राचीनों ने निकाले हैं। इस रस के देवता का पद किसी राजनीतिक मौलाना को मिलना चाहिए।

(३) इस रस का स्थान हुल्लड़-मंडली, दिशा दक्षिण और रंग सब रंगों की खिचड़ी होनी चाहिए।

(४) डपोलशंखी रस का प्रयोग गान-विद्या में भी किया जाता है। इसलिये राग-रागिनियों की प्रथा के अनुसार उसकी भार्याएँ और पुत्र आदि भी ज़रूर ही हो सकते हैं। उनके उदाहरण नीचे लिखे जाते हैं—

डपोलशंखी रस

छातियों पर गिरें अगर गोले ;
जिस तरह आसमान से ओले।
तब भी सीना रहेंगे हम खोले ;
जो बहे हाथ खून से धो ले।

एक गोले में काम तमाम होता है, पर कविजी ओले की तरह गोले खाने की बात कहकर डपोलशंखी रस का उदाहरण ठीक दरसाते हैं। इसी के अंदर एक 'बेहयाई'-भाव है, जिसमें बेभाव की खाने की आकांक्षा प्रकट होती है। रोग्नी इसकी भार्या है।

बेहयाई !

जूती औ' पैजार सहेंगे ;
घूँसे को हम प्यार कहेंगे।
जेलों के हित त्यार रहेंगे ;
हरदम पिटते यार रहेंगे।

इस प्रकार की बेइज़्ज़ती को सहन करने की शक्ति बेहयाई के

सिवा और वर्ग में रक्खी ही नहीं जा सकती। ढपोलशंखी रस का एक अंग नपुंसकत्व हो सकता है, जिसका उदाहरण यह है—

वार हम पर होय, हम वार करने के नहीं ;
मार खा लेंगे, मगर हम वार करने के नहीं !
ख़ून नाहक़ कर रहे हो, पाप तुमको होयगा ;
बेकसों को मारकर संताप तुमको होयगा।

प्रकृति के अनुकूल रहना कवि का कर्त्तव्य है। जब वह उसके प्रतिकूल हो जाय, तो भाव का श्राद्ध समझना चाहिए। इसका उदाहरण यह है—

भाव-श्राद्ध

गुड्डी उड़ाके भाई-सरदार हम बनेंगे ;
चरख़ा चलाके यारो बस राज हम करेंगे।
गा-गा के रात-दिन हम वेदांत जान लेंगे ;
झूठी उड़ाके नित हम सच्चों की शान लेंगे।

ढपोलशंखी रस की मुख्य बातें ये हैं। इनको देखकर इस नवीन रस को मान लेना सब विद्वानों का परम धर्म है।

इति पंचपुराणे प्रथमस्कंधे सप्ताशीतितमोऽध्यायः

अष्टाशीतितम अध्याय

कनागत की रिपोर्ट

अब की बार महँगी की परम कृपा के पात्र भारतवासियों के पितर बड़ी संकटावस्था में रहे। कितनों के पुत्र सभ्यता की दुम लगाकर बाप-दादे को बेवकूफ़ तो कहा ही करते थे। ऐसे सपूत तो उन 'बेवकूफ़ों' को क्यों बुलाने लगे थे ? ऐसों के घर वे पितर बेचारे दौड़कर आए होंगे, और हताश होकर अकाल के टूटे

भिखमंगों का अनुकरण करते ही चले गए होंगे। रहे दूसरे वे साहब, जो पितरों के होने-न-होने के ही शंका-समाधान के कीचड़ में फँसे हुए हैं। उनके घर पितर कोरे शंख बजाने और मियाँ मोहर्रम का पर्व करने के सिवा कर ही क्या सकते हैं? इसी प्रकार जो ग़रीब तकावी लेकर जीवन-यात्रा चला रहे हैं, उनके घर धरा ही क्या है, जो पितर लोग खाते? वहाँ तो यदि भूख के मारे ग़रीब पितरों ने एक 'हाय' की होगी, तो अपनी ग़रीब संतति की अवस्था देखकर बिलबिला गए होंगे। नौकरी-वृत्ति पर पेट पालनेवाले तथा क़लम-घिसौनी के निर्जीव बाबूलोग बेचारे नौ बजे से अपनी जीविका की फ़िक्र में बंदर का नाच नाचने लगते हैं, और बात-बात पर अफ़सरों की घुड़की की याद कर फुर्ती देवी के कृपा से प्रत्येक काम कूद-कूदकर करते ही रहते हैं। उनको मध्याह्न के समय अवकाश कहाँ? फिर नौ की आमदनी ग्यारह का ख़र्च—यह बाबूदल की मौरूसी जायदाद है। इसलिये इनमें से जिसके यहाँ जो कुछ श्राद्ध हुआ, वह उसी ढंग का हुआ, जैसा जानवरों को दाना देना। किंतु पितर लोग स्वाभाविक महत्त्व के कारण ऐसे श्राद्ध को अपमान समझें, तो क्या आश्चर्य है?

बात यह है कि वर्तमान हिंदू चाहे जैसे दीन-हीन और नौकरी के परम प्रेमी दास बन जायँ, या ख़ुशामद करके गिड़गिड़ाने और "जी हुज़ूर" के मंत्र का जप करके रात को दिन और दिन को रात कहने लग जायँ; पर उनके पितर इससे प्रसन्न नहीं हो सकते। कारण, वे ऐसे समय में उत्पन्न हुए थे, जब नौकरी, ख़ुशामद, झूठी वकालत, स्वार्थी प्रशंसा और बगलाभगती बिलकुल गए-बीतों के काम की बातें समझी जाती थीं। यही हाल ऐसे सभी पितरों का हुआ, जिनके पुत्रों को समय की पाबंदी से हाज़िरी बजाने की चिंता ने तंग कर रक्खा था। इसके सिवा ऐसों के पितर, जो

अकाल और प्लेग से सदा के लिये विदा हो गए, या जो जेल गए, उनकी दशा या दुर्दशा विचारवान् स्वयं समझ सकते हैं।

लाला लोगों में बहुतों के पितर श्राद्ध में विलायती शक्कर देख-कर भागे, और ऐसे बेतहाशा भागे कि कई जगह मुँह के बल गिर पड़े। कितने ही श्राद्धकर्ता लोगों के पितर अन्यायोपार्जित द्रव्य को देखकर उलटे पैरों, फेरी हुई बैरंग चिट्ठी की तरह, रवाना हुए, और हज़ारों नहीं, वरन् लाखों के पितर अश्रद्धा के कारण बिलकुल एकादशी का निराहार व्रत करते ही चले गए।

इस प्रकार उच्च जाति के हिंदुओं के पितरों की ऐसी अवस्था रही। अब एक उनका नमूना सुनने में आया है, जो अभी तक तो नीच जाति में समझे जाते थे, पर समय के फेर और भूदेव महाराजों की परम कृपा से द्विजाति-दल में भरती कर लिए गए हैं। इन द्विजाति के रंगरूट महोदय के श्राद्ध का नाटक इस प्रकार है—

पुरोहित—का तुमहू सराध करिहौ ?

यजमान—हाँ, करब।

पुरोहित—अच्छा तो जौन-जौन अच्छर हम कहब, तौन-तौन तुमहूका कहै का होई।

यजमान—हाँ, कहिबै।

पुरोहित—यह आपन धोती केरि लाँग ठीक करिकै बाँधौ।

यजमान—आपन धोती केरि लाँग ठीक करिकै बाँधौ।

पुरोहित—ई न कहो।

यजमान—ई न कहो।

पुरोहित—ससुर मूरुख से काम परिगा।

यजमान—ससुर मूरुख से काम परिगा।

ग़रज़ यह कि जो पुरोहित कहता गया, यजमान भी उसी का

उच्चारण करता गया, और अंत में लड़ाई का सामान ठन गया। अब पंडित महाराज ने क्रोध में आकर यजमान के एक थप्पड़ मारा, और वैसा ही यजमान ने भी किया। बड़ी देर तक लात-घूँसे का महाकांड होता रहा, और घर आए हुए देहाती कुटुंबी सब श्राद्ध का दंगल देखकर दंग हो गए। नवीन द्विजाति पंडित से विशेष बली था। उसके घूसों से महाराज का शारीरिक क़िला डगमगा गया, और वह क्रोध में भरे हुए यजमान के घर से गाली-गलौज करते विदा हुए। पंडितजी के जाने पर यजमान बोला कि श्राद्ध तो हो गया, और श्राद्ध की पत्तल पड़ी ही रही। यह विचारकर उसने अपनी स्त्री को पत्तल देने के निमित्त महाराज के घर भेजा। ज्यों ही वह स्त्री ब्राह्मण के घर पहुँची, त्यों ही क्रोध में भरे हुए महाराज ने ग़रीबिन अबला को मारना शुरू कर दिया। बड़ी मार खाकर वह ग़रीबिन घर को लौटी। जब सब कुटुंब भोजन करने लगे, तब श्राद्धकर्ता बोला—"सराध करब बड़ा कठिन है। मारे चोट के हाथ पिरात हैं।"

स्त्री बोली—"सराध करब कठिन नाहीं; जस पत्तल देव होत है। पंडित की मार से भगवान बचावें।

इसी प्रकार की एक कथा स्वामी दयानंद सरस्वती ने भी अपने ग्रंथ में लिखी है।

इति पंचपुराणे प्रथमस्कंधे अष्टाशीतितमोऽध्यायः

एकोननवतितम अध्याय

भंग की तरंग

(स्थान गोमती का तट। मस्तराम का प्रवेश)

मस्तराम—(स्वगत) आज किसी ऐसे का मुँह देखा कि पेट

में चूहे ही कूदते रहे। क्या समय लगा है कि भलेमानस की मिट्टी ख़राब है। जिसको देखिए, ऊपर की तड़क-भड़क और बाबूगीरी के सिवा कुछ नहीं। हम तो समझते थे कि हमसे ही ग़रीबी की नातेदारी है; पर अब तो सारे-के-सारे महाजन इसी के कुटुंब में आ गए हैं। बड़े-बड़े वैश्य कोरी बग़लें बजाने की विद्या ही में पंडित बन गए। (सोचकर) वाह, भंग ने तो अच्छा रंग जमाया! सुहावनी नदी की लहरें क्या मनोहरता प्रदर्शित कर रही हैं। चित्र-विचित्र वर्ण के अधिष्ठाता मेघों की शोभा नदी की सुंदरता से मिलकर भूमि को स्वर्गीय रमणीयता की अधिकारिणी बना रही है।

(पीछे से मिस्टर गिटपिट का आगमन)

गिटपिट—गुड मार्निंग मस्तराम।

मस्तराम—(घूमकर) ओहो, आइए मित्र गिटपिट साहब। किधर आए?

गिटपिट—वेल तुमने दुनिया को बिहिश्त का बात बहुत ठीक कहा। कहिए, दान का माल पा गए क्या?

मस्तराम—अरे यहाँ भोजनों में संदेह हो रहे हैं, तुमको दान की सवार है।

गिटपिट—ओहो, तुम बाँभन लोग सबको लूटता। तुमको खाने की कोछ कमी नहीं।

मस्तराम—मित्र गिटपिट, तुम किरानी हो गए, इससे भोजनाच्छादन का सहारा हो गया। यदि अपने पूर्वपुरुषों की आजीविका में रहते, तो हमारे लूटने का हाल प्रकट हो जाता। देखो न, वह तुम्हारे पिता मटरू जन्म-भर भाड़ ही झोंकते रहे, और मरने के समय तीन पैसे भी पास न निकले।

गिटपिट—वेल तुम उस काले आदमी का बात अलग करो।

देखो आजकल तरक़ी का ज़माना है। दिन-पर-दिन तार-बिजली क्या-क्या रंग दिखा रही है?

मस्तराम—मित्र गिटपिट, तुमने कोट, पतलून और हैट लगा लिया। बस, तुमको सब काले ही दृष्टिगोचर होने लगे। अपने पिता के तुल्य चचा को काला आदमी कहते हो?

गिटगिट—वेल पंडित, इसका बहस जाने दो।

मस्तराम—अच्छा, तो जो आप कहिए, वही कहें। पर क्या कहें मित्रवर, मामला बड़ा कठिन है? महँगी ने प्राण दुखी कर दिए हैं।

गिटपिट—ओहो, तुम लोग बिलकुल काहिल है, आजकल भी क्या रोज़गार की कमी है? देखो, बंगाल में चारों तरफ़ सिडीशन के मुक़दमे हो रहे हैं, और घर-घर बम की तलाश जारी है।

मस्तराम—अरे भाई, तलाश जारी है, तो उसमें हमारा क्या काम?

गिटपिट—और कुछ न समझ हो, तो पुलिस की तरफ़ से मदद करो।

मस्तराम—क्या पुलीसवाले दुर्गापाठ कराते हैं?

गिटपिट—क्या वाहियात बकते हो! अरे पूजा-पाठ नहीं, पुलीस की मदद करो, मदद।

मस्तराम—जब पूजा न पाठ, तो क्या अपना सिर फोड़के मदद करें?

गिटपिट—ओहो, बिलकुल नासमझ है—पंडित सब मोटे समझ का होता है। मदद करो का माने यह कि जहाँ कहीं बम-वाला या बाग़ी पाया जाय, उसकी ख़बर पुलीस में करो।

मस्तराम—अच्छा व्यापार बताया; किसी बमबाज़ बाबू को मालूम हो जाय, तो बस, प्राण ही जायँ। एकआध बम हमारे ऊपर भी आकर मार दे। बस, चलो, ख़ूब रोज़गार हुआ।

गिटपिट—आहा हा! यू कावर्ड, डर गया। अरे पंडित, उसको कैसे मालूम होगा कि तुम ख़बर किया?

मस्तराम—तो हमको कैसे मालूम होगा कि अमुक बमवाज़ या विद्रोही है।

गिटपिट—शक होने पर ख़बर करना होगा।

मस्तराम—हमको शक करना नहीं आता।

गिटपिट—तुम बिलकुल उल्लू हो।

मस्तराम—ए, मिस्टर गिटपिट, ज़रा ज़बान सँभाल के बोलना। गाली-आली दोगे, तो ऐसा तमाचा मारूँगा कि मुँह लाल हो जायगा।

गिटपिट—कुछ भंग पी गया क्या?

मस्तराम—भंग-अंग सब रह जायगी। ऐसी मित्रता को हम तिलांजलि देते हैं।

(मियाँ चालाकख़ाँ का प्रवेश)

मियाँ—बंदगी अर्ज़ है मिस्टर गिटपिट साहब।

गिटपिट—बंदगी—गुड मार्निंग।

मियाँ—कहिए, क्या हो रहा है?

गिटपिट—होता क्या है, यह मस्तराम कहता है, इसको शक करना नहीं आता, और समझाने से लड़ने को तैयार होता है।

मियाँ—साहब, यह सीधे आदमी हैं। यह बेचारे दुनिया की चालाकी क्या जानें? मैं आपकी बातचीत दूर से सुन रहा था। पुलीस की सूरत देखते इनके होश उड़ते हैं। यह बेचारे ख़बर क्या करेंगे। अगर बाशिंदगान-शहर से राय लेकर पुलीस काम किया करती, तो इनकी भी हिम्मत पड़ती कि जाकर कुछ कहें-सुनें। मौजूदा हालत में पंडित लोगों—ख़ुसूसन् पंडित मस्तराम के-जैसे लोगों—से मदद चाहना बिलकुल मज़ाक़ की बात है।

नत्तराम—वाह मियाँ भाई, खूब कही। अब तो मिस्टर गिटपिट बग़लें झाँकने लगे।

गिटपिट—वेल, तुम इस बात को ठीक नहीं समझा। हम तुमको फिर समझावेगा। अब डिनर का वक़्त आ गया। हम जाना चाहता है।

(सबका प्रस्थान)

इति पंचपुराणे प्रथमस्कंधे एकोननवतितमोऽध्यायः

नवतितम अध्याय

पितृलोक की चिट्ठी

जैसे रेलों में यहाँ लड़ाई की कृपा से गड़बड़ी साहबा ने अपनी छटा दिखा रक्खी है, वैसी ही पितृलोक में भी होनी चाहिए; क्योंकि संग्राम में वीर गति पाए हुए लोग स्पेशल ट्रेनों में पहुँचाए जाते होंगे, और गढ़वाल पंडों की तरह पितर-रेलवे-कंपनी के बाबू लोग खूब संड-मुसंड हो गए होंगे। ऐसी दशा में पितृलोक की डाक में देरी हो जाना कुछ आश्चर्य की बात नहीं। गत शनिवार की रात की डेलीवरी में निद्रादेवी के चिट्ठीरसा ने स्वप्नावस्था की ट्रेन से आई हुई नीचे लिखी चिट्ठी दी है। उसका मज़मून यह है—

"सिरी पत्तरी दुस्टियान मंदिर ठनठनगोपालजी जोग लिखी पितरलोक से संतराम की राम-राम बंचना। आगे हाल यह है कि योरप की लड़ाई से मरे हुए लोगों की यहाँ पर बड़ी भीड़ है। सब मकान भर गए हैं। भीड़ को कम करने के लिये पितृलोक से लोगों को निकाल देने का बंदोबस्त हो रहा है। यहाँ की सेनी-टेशन कमेटी ने धर्मराजजी के दस्तख़त से एक इत्तिलानामा उन

लोगों के नाम भेजा है, जिनके मंदिरों के ट्रस्टी अपने बदइंतिज़ाम से देवमंदिरों को गाने या बजाने के इश्क़बाज़ों के अड्डे बना रहे हैं।

"आगे भाईजी इसी मज़मून का एक नोटिस मेरे पास भी आया है, जिसमें लिखा है कि तुम्हारे बनाए टनठनगोपालजी के मंदिर के पुण्य के समय तुमको पितृलोक में जगह मिली थी; लेकिन अब तुम्हारे नाम से बने हुए मंदिर में पुण्य और धरम के गले के ऊपर उसी तरह से छुरी चलाई जा रही है, जैसे बकरीद के दिन ग़रीब जानवरों की गरदन पर। इसलिये तुमको नोटिस दिया जाता है कि तुम फ़ौरन् पितृलोक के होटल का कमरा ख़ाली कर दो, और उन लोगों के पास जाकर रहो, जिनके ज़रिए से संसार में पाप फैला है।

"सो भाई ट्रस्टीजी, भगवान् के वास्ते, किंतु जैसा तुम्हारे कामों से देखा जाता है, यह कहना चाहिए कि अल्लामियाँ के वास्ते, हमारे मंदिरों में मन और वचन का पाप फैलाने के महापाप से बचो।

"आगे भाईजी, आपके इंतिज़ाम की शिकायतों से पितृलोक की हवा बिलकुल गंदी हो रही है। एक तरफ़ यह ख़बर आई कि आपके दोस्तों ने गाँजे और चरस के धुओं के इतने गुब्बारे उड़ाए कि ठाकुरजी महाराज का जी मिचलाने लगा। दूसरे लोगों में यह ख़बर फैली है कि आपके कराए हुए रहस के नाम के अंदर छिपे हुए नौटंकी के नाच से कितने ही युवक और युवतियों के दिलों से पाप की खेती होने लगी, और शायद अब की रबी की फ़सल के मौक़े पर यह खेती अपना पूरा भयंकर रूप दिखावेगी। तीसरी शिकायत यह भी सुनने में आई कि आप लोगों में से किसी-किसी साहब ने ठाकुरजी महाराज के ज़ेवर पर बिलकुल हाथ सफ़ा कर दिया, और जो कुछ बचा है, उसको भी जहाँ-का-तहाँ पहुँचा देने की हालत होती दिखती है।

"भाईजी, कहाँ तक लिखें, ट्रस्टियों के पाप की यहाँ बड़ी शोहरत फैली है, और मंदिर बनवानेवालों को जमराज के जासूसों द्वारा बड़ी तकलीफ़ें दी जा रही हैं। क्या कनागत के श्राद्ध के दिनों में आपने धर्म, कर्म और ईमानदारी का श्राद्ध करने ही में अपना ट्रस्टीपन समझ लिया है ? मेहरबानी करके अब इन शैतानी कारस्वाइयों को बंद कीजिए, नहीं तो मंदिर बनवानेवाले स्वर्ग और पितृलोक से नरक या दोज़ख़ में ढकेल दिए जायँगे। इसका पाप आप ही की गर्दन पर रहेगा, और जैसा तुलसीदासजी ने कहा है, वही हाल होगा—

उघरे अंत न होय निबाहू ;
कालनेमि जिमि रावन राहू।"

ऐसे कितने ही ख़त आए हैं, उनमें से एक का नमूना यहाँ दिया गया है।

इति पंचपुराणे प्रथमस्कंधे नवतितमोऽध्यायः

एकनवतितम अध्याय

श्रीमती गुलब्बो का स्वराज्य

कहते हैं—"माया तेरे तीन नाम ; परसा परसी परसुराम।" कहावतों की अंजील का यह एक पवित्र वाक्य है। इसका मतलब है कि रुपया होने से नाम में परिवर्तन आप-ही-आप हो जाता है। पास टका न होने से जो 'परसा' कहा जाता है, कुछ मिलने से वही 'परसी' पुकारा जाने लगता है, और जब रुपए की थैली की साइनबोर्ड-रूपी तोंद पर लटककर ज़मीन झाँकने लगती है, तब वही लाला परसुराम के नाम से विख्यात होने लगता है। इसी ढंग या

(१)

पढ़ना छोड़ो बालक भाई ;
इसमें भारत केर भलाई ।
फेंको पुस्तक बाँध लँगोटा ;
विद्या पढ़ना सबसे खोटा ।
माता-पिता-भ्रात नहिं मानो ;
लेक्चरबाज़ी में सब जानो ।

(२)

भाई कातो सब मिल चरखा ;
यह है बड़ा तत्त्व हम परखा ।
चरखा चले काम बन जाई ;
कहते कल्लू राम-दुहाई ।
इससे शत्रु सभी भागेंगे ;
भारत-भाग खूब जागेंगे ।

(३)

हिंदू-मुसलमान हैं भाई ;
इनके सिवा और सब नाईं ।
दोनों का यह भारत देश ;
इसमें झूठ नहीं है लेश ।
दोनों का हो मेल जहाँ पर ;
बरसें हुन्ने यार वहाँ पर ।

(४)

पैसा सबका राजा भाई ;
कहते कल्लू राम-दुहाई ।
बेचो पुस्तक, जोड़ो पैसा ;
मौक़ा फिर नहिं मिलना ऐसा ।

जय-जय 'शौक़त', जय-जय 'दास';
जिसमें पैसा आवे पास।

कालू आचार्य ने लेक्चरबाज़ी में नाम पैदा कर लिया। अब इनकी टेंट गरम होने लगी। लोग "स्वामीजी" कहकर प्रणाम करने आते दिखाई दिए। दो महीने में यह पूरे या अधूरे आचार्य हो गए। बाहर ग्रामों में घूम-घूमकर जब मुट्ठी ज़्यादा गरम हो गई, तब यह अपने घर में आए। पर श्रीमती घर की स्वामिनी ने आगे इनको क़दम बढ़ाने से रोका। 'स्वामीजी' ज़बर्दस्ती अपनी रागनी गाते दरवाज़े के अंदर चले। रुपए खनखनाने लगे। पर बीबी पर कुछ प्रभाव नहीं पड़ा। इसने इनको पुराना धर्म-च्युत समझा, और ढकेलकर बाहर गिरा दिया। स्वामीजी गरजे तो बहुत, पर आटा पीसने के व्यायामवाली बीबी गुलब्बो का बाहुबल लेक्चरबाज़ी के पैंतरेवाले शरीर से बलिष्ठ निकला। उसने गर्दन पकड़कर ऐसा धक्का दिया कि आचार्य देवता पीठ के बल सड़क पर गिरे, और बच गए, नहीं तो स्वामीजी में से जी निकल जाने की अवस्था आ ही गई थी। जान पड़ा, संसार में चाहे किसी का राज्य हो, पर घर में तो श्रीमती गुलब्बो का पूरा स्वराज्य था।

इति पंचपुराणे प्रथमस्कंधे द्विनवतितमोऽध्यायः

त्रिनवतितम अध्याय

गुप्त मंडली

गर्मी की रात में चाँदनी की बहार कुछ अद्भुत रंग दिखाती है। उनमें घूमने से दिन-भर की उष्णता से संतप्त लोग कुछ ठंडे ज़रूर हो जाते हैं। इसी इष्ट की प्राप्ति के लिये एक पबलिक-पार्क में कथा के रिपोर्टर को जाने का अवसर हुआ। वहाँ जाकर देखा, घास के ऊपर लोट लगाए कुछ लोग पड़े फाकेमस्ती की-सी बातें उड़ा

रहे हैं। थोड़ी दूर पर बैठकर उनकी बातों को सुनने की कोशिश की जाने लगी, और मालूम पड़ा कि वह प्राकृतिक कवियों की गुप्त मंडली थी। निश्चय हुआ कि समस्या पर पूर्ति की जाय। बस, अब क्या था? धड़ाधड़ पूर्तियाँ होने लगीं। समस्या थी—"खो बैठे।" उस पर पहले ने यों आरंभ किया—

पहला कवि—

जब से हम प्रेम वन में हैं पैठे;
ज्ञान अज्ञान बुद्धि खो बैठे।

दूसरा कवि—

जब से पंजाब में अकड़ के चले;
हाकिमी ढंग यार, खो बैठे।

तीसरा कवि—

मेकोडायर की बुद्धि को देखो;
आप नादिर का रूप हो बैठे।
मार-काटों के काम करवाकर;
न्याय बिरतानियाँ की खो बैठे।

चौथा कवि—

माडरेटों की कौन सुनता है?
मिनिस्टर बनके यार जा बैठे।
भरके पाकिट नगदनरायन से;
सर्वजनता प्रभाव खो बैठे।

पाँचवाँ कवि—

गांधी की बड़ी है अब महिमा;
आप देवावतार हो बैठे।
जब के मिलने गए व शिमले पर;
असहयोगी शुमार खो बैठे।

छठा कवि—

सुना कितने ही जोश में आकर ;
असहयोगी लिबास हो बैठे।
व्यर्थ जाते हैं जेल के अंदर ;
अपनी आज़ादियों को खो बैठे।

सातवाँ कवि—

अली भाई बड़े मज़े में रहे ;
मुआफ़ी माँग शर्म धो बैठे।
सैकड़ों भेज करके जेलों में ;
अब तो पहले-सा नाम खो बैठे।

आठवाँ कवि—

लॉर्ड रीडिंग ने क्या चलाया पेंच ;
लीडरों को बुलाके हो बैठे।
गुप्त रखने की वह प्रतिज्ञा कर ;
असहयोगी विचार खो बैठे।

नवाँ कवि—

ख़िलाफ़त पंच जाके लंदन में ;
करने अपना विचार तो बैठे।
तर्क उनसे न हो सका पूरा ;
जॉर्ज लायड से तार खो बैठे।

दसवाँ कवि—

सिनफ़िनों की जमात को देखो ;
मारकाटों के वार हो बैठे।
होमरूली झमेले में आकर ;
जाति के सुख का द्वार खो बैठे।

इन पूर्तियों के बाद कुछ और भी पूर्तियाँ चलीं ; किंतु समया-

भाव से लौट आना उचित समझा गया। उसके अंत के कुछ छंद सुनाकर यह अध्याय समाप्त किया जाता है—

अब सुराज महँ चली गुलामी ;
बनि नादिरशाही अनुगामी।
लीडर को परि पाँयन पूजो ;
और न देव जगत महँ दूजो।
दिन जब लीडर रात कहावै ;
कूद-कूदकर चेलो गावै।
सत्य-असत्य कहौ, डर नाहीं ;
कारज सब यों ही बनि जाहीं।
अब स्वराज की चाल यह, टट्टी-ओट शिकार ;
नासहु कथन स्वतंत्रता, परतंत्रता प्रचार।
जनता सबै गुलाम बनावहु ;
अपनी धुनि कहि इत-उत धावहु।
जो कोउ कबहुँ विरोधी बोलै ;
शांति एकता हित मुँह खोलै।
सत्य धाम करि मारि भगाओ ;
पीटो पाटो गालि सुनाओ।
ऐसे बने सुराज सुनामी ;
जैसे साहब केर गुलामी।
जो पुनीत माहात्म्य यह, पाठ करै चित लाय ;
एक बार के पाठ सों, दासभाव मिटि जाय।

इति पंचपुराणे प्रथमस्कंधे त्रिनवतितमोऽध्यायः

चतुर्नवतितम अध्याय

इक्का-पालिटिक्स

पुराने ज़माने में जब कपोल-कल्पना के आचार्य सी० आई० डी० की सृष्टि नहीं हुई थी, तो राजा लोग भेस बदलकर प्रजा का हाल जानने को इधर-उधर घूमा करते थे। इस रीति से उनको राज्य की यथार्थ अवस्था मालूम हो जाया करती थी। पर अब उस प्रकार की कोई परिपाटी प्रचलित नहीं दिखती। कई बार के अनुभव से यह सिद्ध हुआ कि इक्के की सवारी आजकल इस काम के लिये पूरी नहीं, तो अधूरी उपयुक्त ज़रूर है।

हाल में किसी काम के लिये इक्के-महात्मा की शरण में जाने का अवसर मिला। इक्के का स्वामी म्युनिसिपलिटी के नियमों से असहयोग करनेवाला निकला। उसने नियत निर्ख़ पर चलना स्वीकार नहीं किया। ख़ैर, उस पर बैठे, और साथी मुसाफ़िर या फ़ेलो पैसेंजर की राह ताकने लगे। थोड़ी देर में इक्का-स्वामी बोला—"सदर बाज़ार, सदर बाज़ार।" दो-एक आदमियों से बात करके फिर चिल्लाया—"सदर बाज़ार, सदर बाज़ार।" इस ढंग से जब कोई सवारी नहीं मिली, तो वह कह चला—"तीन आने, तीन आने, सदर बाज़ार।" इस पर भी जब कोई चलने पर राज़ी न हुआ, तब उसने इक्का चलाकर "तीन आने, तीन आने" की धुन लगा दी। अब वह इस क़दर गुल मचाने लगा कि चलनेवालों को यह संदेह हो गया हो, तो आश्चर्य नहीं कि या तो वह सवारी ढूँढता था, या हमको नीलाम करने की बोली लगा रहा था।

इस प्रकार बड़ी बोलियों के बाद दो आदमी आए। एक गेरुए वस्त्र को नख-शिख से सजे और दूसरे गांधी-कैप डटे थे। ख़ैर, वे

दोनों भी सवार हुए। नीलाम की बोली का ख़ातमा और "टिक-टिक" के पाठ का आरंभ हुआ। इतने में सामने से "पॉ-पॉ-पॉ" करती एक मोटर आई। सड़क की गर्द उड़कर म्युनिसिपलिटी-वालों की सफ़ाई का नमूना दिखाने लगी। सारा मार्ग सहारा की आँधी का छोटा दृश्य दिखाने लगा। राम-राम से काम पड़ गया। दो-चार मारो गर्द आँखों, नथनों, मुँह और कानों के छिद्रों द्वारा शरीर के अंदर ज़रूर पैठ गई होगी। जब गाड़ी चली गई, गर्द तब पर आने लगी, तब गेरुआ वस्त्रधारी बोल उठा—"यह पॉं-पॉं छः महीने तक है।"

"छः महीने के बाद क्यों पॉं-पॉं के बंद करने का हुक्म हो जायगा?" यह सवाल करके इक्केवाले ने बड़ी अकड़ व ऐंठ से लेक्चरबाज़ी की आतिशबाज़ी दिखाई। बातें बहुत हुईं, पर मतलब सबका यही था कि छः महीने में राज्य पलट जायगा।

इक्केवाला भी पुराना बैठकबाज़ निकला। वह पूछने लगा कि राज्य कैसे पलटेगा? ये अंगरेज़, जो तोप और बंदूकों के ढेर लिए बैठे हैं, क्या राज्य को पलटने देंगे? इन सवालों के जवाब में बाबाजी ने यों गीत गाया—

मर जायँगे, कटेंगे, हमको सुराज होगा;
अक्खड़ बने रहेंगे तब ख़ूब काज होगा।
लेक्चर के बम चलेंगे, अख़बार के निशाने;
गाली की गोलियों से संग्राम-साज होगा।
मीटिंग की फ़ौज बनकर धावे करेगी ऐसे;
मुँह फेर भागता बस, घर को जहाज़ होगा।

इक्केवाला भी पुराना माडरेट निकला। यह सुनकर वह हँसा, और अपना गीत गाने लगा—

बकबक से कुछ मिला है, तब तो सुराज होगा;

या गुद्दियों में धक्कों का खूब साज होगा।
सब काम छोड़ देंगे वेकार हो हज़ारों ;
भुक्खड़पने का तब तो घर-घर में राज होगा।
हर चीज़ जो स्वदेशी, उसको चलाश्रो साहब ;
भारत की उन्नती का यह शुद्ध काम होगा।
समझे विना अगर यह बकबक की चाल होगी ;
तकलीफ़, क़ैद, झगड़े का सब समाज होगा।

इस गीत की धुन में पड़े रहने से दोनों को इक्के की कुछ ख़बर नहीं रही। आगे चलकर घोड़े ने ऐंड़ ली, और "मोहम्मदअली की जय" कहकर लोग इक्के पर से ढुलक पड़े। पर कुशल यही हुई कि किसी के चोट नहीं लगी।

इति पंचपुराणे प्रथमस्कंधे चतुर्नवतितमोऽध्यायः

पंचनवतितम अध्याय

समाज-सौख्य

समाज पर क़लियुग देवता का चाहे और कुछ प्रभाव आया हो या नहीं, किंतु इसमें संदेह नहीं कि उसका सब सुख जाता रहा। जिसे देखिए, वह मियाँ मुहर्रम का कोई-न-कोई ज़रूर मालूम होता है, और हँसना तो किसी के मुखारविंद पर तिथि-त्योहार पर भी नहीं देखा जाता। आगे समाज में सुख का इतना आधिक्य था कि लोग अवस्थांतर करने के लिये दुःख की कल्पना करते थे। 'इश्क़' का नाम लेकर हज़ारों कवियों ने गीत बनाए हैं। उनसे यही पता चलता है कि उस समय की सोसाइटी या जन-समाज सुखमयी अवस्था में था, और सुख की अधिकता का प्रबल प्रेम हटाने के लिये ही प्रेम के वियोग और प्रेम-पात्र की निर्दयता के गीत गाए जाते थे।

एक कवि कहता है—

बराहे इश्क़ मुझे रंजोग़म उठाने दो ;
हसरतें दिल की मेरी कुछ तो निकल जाने दो ।

यह वाक्य इस बात का द्योतक है कि लोग रंजोग़म का आवाहन जानकर करते थे । प्रेम के असली भाव को न समझनेवाले इस बात के तत्त्व को पहुँच ही नहीं सकते कि विशुद्ध प्रेम कैसे और क्यों होता है ?

दूसरा कवि सुनाता है—

किसी की ज़ुल्फ़ के पेचों में गिरफ़्तार है दिल ;
आह भर लेते हैं, झगड़ा नहीं, तकरार नहीं ।

यह बात विशुद्ध प्रेम-मार्ग पर चलनेवाले ही समझ सकते हैं कि आकांक्षा न होने पर प्रेम की आह कैसी सुंदर रीति से इस वाक्य में दिखाई गई है ।

प्रेम की दुःखमयी बातों का प्रेम दिखाता हुआ एक विद्वान् कहता है—"प्रेम बिथा की कथा अकथा है ।" इन सबका तात्पर्य यही है कि समाज के सुख की वृद्धि होने पर ही लोग कविता के काल्पनिक दुःख का आश्रय लेते हैं ।

इसके विरुद्ध आजकल समाज में हर बात का रोना है । जिसको देखिए, वह "हाय-हाय" देवता की उपासना किसी-न-किसी प्रकार अवश्य करता दिखता है । अब वह पुराना 'इश्क़' का रोना कहीं दिखाई नहीं पड़ता । उसकी जगह हर बात का रोना अपनी प्रभा दिखला रहा है । इस बात की चरचा बाबा मस्तराम के आश्रम में हुई, और बाबाजी ने जो भाव प्रकट किए, वे कथा के श्रोताओं को सुनाने के लायक़ ज़रूर हैं ।

बाबाजी बोले—

"अरे , जान पड़ता है दुनिया बनाई गई है रोने के वास्ते ,

आँसुओं से मुँह धोने के वास्ते और अंत में शरीर खोने के वास्ते ! पैदा होने के साथ ही रोना सामने आता है। रोना भी प्राकृतिक धर्म है। एक मियाँ शायर ने कहा है—

रोएँगे हम हज़ार बार, कोई हमें सताए क्यों ?"

लोगों की बौखलाहट बदलना चाहती है; किंतु नेचर फिर अपनी हालत पर बसींद लाती है। कहने लगे, इश्क़ की कविता का रोना ठीक नहीं। कवियों ने देशभक्ति का राग छेड़ा। फलड़वा निकला ? जब लैला का नाम लेकर रोते थे, अब पुराणों के भारतीय पुरुषों का नाम लेकर चीख़ मारते हैं। मतलब दोनों का एक ही है। शिया-संप्रदाय के आचार्यों का प्रकृति-ज्ञान सराहने योग्य है कि उन्होंने साल में नौ महीने छाती पीटने की प्रथा ही धर्म में चला दी।

ख़ैर, पुराने झगड़े को जाने दीजिए। पंजाब में गोरे सिपाही की शेख़ी ने जब ग़रीबों को मार डाला, तो देशी लोग रोए। साहब बहादुर पिटे, तो गोरे अख़बारों के चचाज़ात रोए। इस अत्याचार की कथा सुनाकर लीडर रोए। उसको सुनकर जनता के आबाल-वृद्ध रोए। टर्की की गर्दन जब नपने लगी, तो मियाँ भाइयों की सृष्टि रोई। किसान-सभा के झगड़े देखकर हाकिम-दल रोने पर उतारू हुआ। अब अमन-सभा में कुछ-कुछ आँसू पोछने का रंग दिखाई देने लगा है।

"साल-भर के इतिहास के पन्ने उलट जाइए। सब देशों का हाल पढ़ जाइए। चारों तरफ़ रोना-ही-रोना सुनाई पड़ेगा। हँसनेवाले इने-गिने रह जायँगे। रोने का सार्वभौमिक राज्य देखकर यह कहना पड़ता है कि कलियुग को रोना-युग बनाने का प्रस्ताव भविष्य-पुराण की बनानेवाली कमेटी में ज़रूर होना चाहिए।"

बाबाजी का भाषण सुनकर एक ने कहा—"महाराज, बड़ी-बड़ी तनख़्वाहें पानेवाले कोट-पतलूनिए तो न रोते होंगे ?"

इस पर बाबाजी का लेक्चरी चरख़ा फिर चला—

"कोट पतलूनिए दो प्रकार के हैं। एक तो आबनूस के कुंदे के रिश्तेदार काले और दूसरे मैदे, खड़िया, हड्डी, दही, शंख और बगले के रंग से मिलते गोरे। कालों के रोने का तो ऊपर कथन हो चुका। रहे गोरे, उनका हाल सुनिए।"

"मिस्टर पिलपिली एक मिलनसार और सच्चे गौरांग थे। वह कहा करते थे कि पहले तो वह स्कूल के नियमों से रोए, फिर शादी करने के झगड़ों में रक़ीबों के घूसे और भावी पत्नी की झिड़कियाँ खा कर रोए। गृहस्थ हुए, तो बीबी की स्वतंत्रता की बातों से रोए और वृद्ध अवस्था में संसार का पाप देखकर रोए। अतएव चारों तरफ़ रोना ही नज़र आता है।"

बाबाजी का व्याख्यान सुनकर लोग दंग हो गए, और तरह-तरह की बातें करने लगे। कथा के रिपोर्टर ने यह अर्थ निकाला कि आजकल ज़माने-भर के आदमी रोते हैं। केवल मिस्टर व्यास और उनके श्रोता ही हँसते दिखाई देते हैं।

इति पंचपुराणे प्रथमस्कंधे पंचनवतितमोऽध्यायः

षण्णवतितम अध्याय

लल्लू की सभा

लाला खेमटामल पुराने ख़ानदान के लोग हैं। यह जिस वंश में हुए, उसका संबंध पुरानी नवाबी गद्दी से विशेष था, और इसी कारण इस कुटुंब में अमीरी का रंग अभी तक उछलता है। पुराने शाहों की बातें इनके यहाँ धर्म-ग्रंथों की तरह कही-सुनी जाती हैं, और छोटे-बड़े, सबको वह मालूम हैं। खेमटामल के पितामह पर नवाब साहब ने प्रसन्न होकर थूक मारा था। इस थूक का आख्यान ख़ास कुटुंब का सुंदरकांड है। पुराने नवाब लोग ज़रा-

ज़रा-सी बात में खुश होकर आदमी को निहाल कर देते थे। इसके अनेकों प्रमाण लाला के घर गाए जाते हैं। नवाब को एक दिन खाना खिलाने के बदले में ५ लाख मिले थे। एक शादी में बहू की मुँह-दिखाई की रस्म में बेगम साहबा दो लाख का हार दे गईं। लड़का जब गोद में लेकर सरकार के घर ले गए, तो १० हज़ार का ज़ेवर मिला, इत्यादि बातें घर-भर में रोज़ घटा-बढ़ाकर कही जाती हैं।

ऐसे नवाबी भक्त की बुद्धि अधिकारियों को ब्रह्मा, विष्णु, महेश के समान समझे, तो क्या आश्चर्य? प्रकृति नियम के अनुसार खेमटामल का हाकिमों की मुलाक़ात का प्रेम, उनको प्रसन्न करने की चेष्टा, और हाँ-में-हाँ का मेल मिलाती हुई चाल भी होनी चाहिए थी, और वह इनकी नस-नस में कूट-कूटकर भरी है। इनके घर में पुरानी चालें अभी तक ऐसी चली आती हैं, जिनसे लोकोपकार भी हो जाया करता है। गुणियों का समादर भी थोड़ा बहुत होता है; किंतु सबमें स्वामि-भक्ति लगी है। अब समय के फेर से इनके स्वामी नवाब साहब अधिकार-च्युत हो गए हैं; किंतु अब उनके स्थान में स्थानीय हाकिमों को ही अभीष्ट वर देनेवाला इष्ट देवता गिनते हैं। ऐसा समझना इनकी पुश्तैनी प्रकृति का भाव हो गया है, और इसमें कुछ तत्त्व की बात नहीं है।

यह जानते हैं कि पुराने समय के समान अब बात-की-बात में लाखों-हज़ारों रुपए मिलने की बात बिलकुल मरीचिका है। किंतु स्वामि-भक्ति की आदत कुछ-न-कुछ आशा के भरोसे नाचा ही करती है। कुछ दिन हुए, एक पुराने ढंग के कवि इनके यहाँ पधारे। उनकी सत्कार-विधि ख़ानदानी चाल के अनुसार इनको करनी पड़ी। कविराज से खेमटामल ने मिस्टर-स्तोत्र बनाने की फ़रमायश की, और कहा कि "मैं इन लोगों को प्रसन्न रखना ही अपनी ज़िंदगी का

फ़र्ज़ समझता हूँ।" कविराज ने पुराने ढंग की संस्कृत खिचड़ी की हिंदी के पाठ में गाकर पढ़ने लायक़ स्तोत्र बना डाला। उस पाठ का थोड़ा ठाठ यों है—

मिस्टर-स्तोत्रम्

(१)

कोटबूटजाकटादिना सदैव शोभिताम्;
माँग को सुधार हैटखोपड़ा मदोदिताम्।
कुरसियान टूल के लगे हमेश मिस्टरम्;
इस प्रकार के प्रभुं नमामि देवमिस्टरम्।

(२)

दफ़्तरादिरूढ हाँ सुपुष्ट पेटपालितम्;
औ सिगार मुँह लगाय अग्निदेवज्वालितम्।
नक्कटाइशोभिनी विशालशुद्धगरदनम्;
मिस्टरं नमामि तं सुजाति-भेद-मर्दनम्।

(३)

श्वान पट्ट सो विशालशोभनं सुकालरम्;
फूल गुच्छ वक्ष में रहे ललाम सादरम्।
त्यों खड़े पिशाव की सुचाल में रतं सदा;
मिस्टरं नमामि तं रहे जो कोप से लदा।

(४)

जो जवान मोड़ के बताय डाँट ठाठ सों;
ऐंठ के अकड़ दिखाय रूप सूख काठ सों।
लाल-लाल मुँह दिखाय नाचतं सुबंदरम्;
खौखियात क्रोध से नमामि देवमिस्टरम्।

(५)

इष्ट होय तो सदा हि मिष्टभाषितं नरम्;
लेकचरानि बीच माहिं झूठ बोलतं परम्।

जायँगे न दीन बीच कूदतं दिगंबरम् ;
शिष्ट को वशिष्टदेव मिस्टरं नमामि तम् ।

यह बड़ा लंबा स्तोत्र बनाने पर कविराज को पुरस्कार भी दिया गया, और उस समय से बराबर कुटुंब में जो सबसे अधिक बड़ा होता है, वह पूरे स्तोत्र का पाठ किया करता है। लाला खेमटामल के हिस्से में आजकल इस स्तोत्र का पाठ है। इसके सिवा लाला साहब में पुरानी पैतृक नवाब-भक्ति का अंकुर भी है। इसका प्रतिफल यह निकला है कि वह अधिकार पर बैठे हुओं को पुरानी नवाबी ढंग का-सा अधिकारी मानता है। अतएव खेमटामल इस समय सभा करने से क्योंकर चूक सकता था? उसने इस आशय का नोटिस छापा है।

नोटिस

तमाम हुज़ूर भगतान्, जी हुज़ूर दरगाह मुरीदान्, कुरसी पर बैठे हुओं को झुककर बंदगी करदान्, घूँस देकर अमीर कहलानेवाले ठेकेदारान्, गिड़गिड़ाने और ख़ुशामद करने के कामों पर कुर्बान लोगों को इत्तिला दी जाती है कि वह चौपटाबाद मोहल्ले के ज़नाने महल में आकर आजकल के चलतू मामलों पर राय दें। सभा में इस अम्र पर बहस होगी कि कौंसिली हुकूमत के कुल हकूक़ तहसील-दार या दूसरे अफ़सरों को दिए जायँ और कौंसिलें बंद कर दी जायँ।

दर्शनाभिलाषी—

राय तोंदपरसाद, लाला बौखलसरूप,
मुंशी गिरगिटपरसाद, पंडित हलुआदास।
वग़ैरह वग़ैरह।

आज लाला खेमटामल के बाग़ में बड़ा तंबू तना है। नगर-भर में लोग उसकी धूम की बातें कर रहे हैं। कोई कहता है, वहाँ

तवायफ़ का नाच होगा, कोई भाँड़ों की मंडली का तमाशा कहकर उसकी बड़ाई करता है। ऐसी-ऐसी बातों की उत्कंठा वहाँ एक अच्छी भीड़ को घसीट ले गई। [illegible]
[illegible] ... वहाँ एकत्र हो गए। इस भीड़
[illegible] [illegible]नटामल को स्वाभाविक प्रसन्नता थी। जब सारा तंबू खचाखच भर गया, तो वह बड़ा बया, बहुत बड़ा प्रसन्न हुआ। उसने समझा कि अब की बार नाम के साथ ख़िताब का किरीट लगने में कुछ कसर नहीं रही। ख़ुशी छाती के अंदर नहीं समाती थी, कोट का कपड़ा चुस्त नहीं होता। यदि वह वैसा होता, तो हर्ष के मारे बटन टूटकर ज़मीन पर ज़रूर जाकर गिर पड़ते।

इस अवसर पर खेमटामल ने अपना महत्त्व सार्थक समझा, और खड़े होकर प्रस्ताव किया कि उस दिन की सभा के सभापति का पद राय हलुआपरसाद को दिया जाना चाहिए। कहा कि राय साहब के समान प्रतिष्ठा का पात्र "न भूतो न भविष्यति।" इस पर बड़ी ताली बजी। फिर खेमटामल ने राय साहब का गुणानुवाद गाना आरंभ कर दिया। तारीफ़ या माहात्म्य में सुनाया कि लाला तालीम हिंदू स्त्रियों की चूल्हे की युनिवर्सिटी तक ही रही, और उसमें यह प्रथम श्रेणी के "आलिमो फ़ाजल" निकले। आपके समान पकौड़ा शास्त्र-पारंगत देश में कोई दूसरा नहीं है। इसी अभ्यास में आपने संसार-यात्रा की पहली दौड़ में कचालू के ख़ोनचे का व्यापार आरंभ किया, और उससे बढ़ते-बढ़ते अब आप राय साहब की योग्यता से अलंकृत हो रहे हैं। खेमटामल ने तारीफ़ों का टोकरा उलट दिया। बड़ी वाह-वाह मची, और सर्व सम्मति से राय लाला हलुआपरसादजी सभापति के मंच पर जा विराजे।

सभापति के सिंहासनारूढ़ होने पर पं० ठकुरसुहाती मिश्र ने मंगलाचरण का आरंभ किया। यथा—

जिसको लोग उपासते हर घड़ी, संसार का सार जो,
जो दिलचाय ख़िताव नाम जग में, सबसे बड़ा सर्वदा।
जिसके कारण हाकिमादि सगरे, इज़्ज़त करें धूम की,
ऐसी मतलबकारिणी विजयते, मिन्नत-ख़ुशामद सदा।

पंडितराज का यह मंगलाचरण संस्कृत के ढंग से पढ़ा गया, और फिर कहा गया कि मुंशी ढाढ़ीपरसाद ने जो अपनी सौतेली मातृ-भाषा याने उर्दू में कविता की है, वह भी मंगलाचरण के ढंग की है, और इस अवसर पर ज़रूर सुनाई जानी उचित है।

एकाएक ढाढ़ीपरसाद मुंशी कूदकर डायस अर्थात् मंच पर खड़े हुए, और पैंतरे फटकारते हुए अपनी समझ की करतूत यों सुनाने लगे—

अगर तू चाहता दौलत की आमद;
तो कर ले यार, जी भर के ख़ुशामद।
यह मसला तो पुराने वक़्त का है;
मगर इस में मज़ा अब भी भरा है।
नहीं देते ख़ुशामद में जो पैसा;
तो इससे कुछ न हो रंजीदा ऐसा।
ख़ुशामद में दिया जाता है पैसा;
बड़ा अलक़ाब होता, जैसा भैंसा।
यही हो ज़िंदगी का यार मक़सद;
ख़ुशामद कीजिये सब लोग भर हद।

इसके बाद राय हलुआपरसाद ने आरंभिक कथन यों चलाया—
"मेहरबान भाइयो, मैं आपकी मेहरबानी का एवज़ नहीं दे सकता। मैं कुछ पढ़ा-लिखा नहीं हूँ, मगर आपने जो मेरा यह प्रतिष्ठा की कि मुझको बनारस के माधोराम के धरहरे के बराबर उँचाई पर कर दिया, इसका धनवाद या शुकराना करता हूँ। मुझे ठीक लफ़्ज़

नहीं मालूम, आप क्षिमा कीजिएगा। मगर शुकरानों के क़ायदे से आप का धनवाद करना ज़रूरी है। यह बात कल मैंने, मास्टर साहेब जब मेरे लड़के को पढ़ाने आया, तब पूछ ली थी। मैं अपना काम कर चुका, अब आप अपना काम करें।"

इस दंतकथा के बाद रायसाहब कुर्सी पर बैठ गए, और भद्र लोगों ने खड़े होकर "वंदे खुशामदम्" का बड़ा ऊँचा स्वरपूरित नाद किया।

अब लेक्चरबाज़ी आरंभ होने के पहले लोगों के भेजे हुए पत्र पढ़े गये।

उनमें से एक सुनने लायक़ है। उसमें था—

"भाई गेनटापरसाद, मैं सभा में नहीं आ सकता। सबब यह है कि कल कबूतर की डाबली में बिल्ली घुस गई। सब गिरहबाज़ों को मार गई। परसों घुड़दौड़ में घोड़ा हार गया, और मियाँ कलंदरबख़्श की जमात में हमारा बटेर भाग खड़ा हुआ। बड़ी मुसीबत दरपेश है। उस पर बी उल्फ़तजान ख़फ़ा हो गई हैं। अजीब हालत है। यही मामला है—

मर रहे हैं ग़म में और आँसू बहाना मना है।
इस क़फ़स के क़ैदियों को आबोदाना मना है।

मैं आपकी सभा से हमदर्दी करता हूँ। मेरी राय में ख़ुशामद-कानफ़्रेंस हर नगर में क़ायम होनी चाहिए। होमरूल, कांग्रेस व लीग वग़ैरह-वग़ैरह सब बंद कर दी जायँ, और तहसीलदार या नायब तहसीलदार को कम-से-कम गवर्नर के अख़्तियार दे दिए जायँ।

आपका दोस्त
नवाब टनटनख़ाँ"

जल-पान करने के पश्चात् सभा जमी, और सभापति की आज्ञा-

नुसार मिस्टर खुशामदचंद ने अपना भाषण सुनाया। आपका लेक्चर क्या था, खुशामदी दल के लिये सिद्धांत का ख़ज़ाना था। उसकी छटा सुनने ही से संबंध रखती है। वह यह था—

"भाई हाज़रीन महाशय,

मैं वह कहूँगा, जो किसी ने नहीं कहा, और एक ऐसी बात सुनाऊँगा कि कितनों की ढोल-पोल लीला हो जायगी। संसार में दो नारायण हैं, एक तो वह, जो कहीं क्षीर-सागर में सोते हैं, और दूसरे हमारे उपास्य परम पददायक विधायक श्रीनगद-नारायण।

(करतल-ध्वनि)

महाशय, दुनिया के बुद्धि-सागर में जिसको दोनिया भरभी समझ लेती है, वह इसको मानेगा कि नगदनारायण ही इस भवसागर से पार करनेवाले हैं।

महाशय, सच पूछिए तो पतितों के उधारनेवाले अगर कोई हैं, तो वह तहसील और ज़िले के तहसीलदार। इन्हीं की कृपा या मेहरबानी से पतित-से-पतित का उद्धार हो जाता है। आपके सुनने और मनन करने के लायक़ यह कहानी है। उसको ध्यान देकर सुनिए, और दुनिया के झगड़ों को अलग कीजिए।

(सुनो-सुनो की ध्वनि)

हमारे मित्र लाला मटकापरसाद पढ़े-लिखे कुछ भी न थे। उनकी लियाक़त या योग्यता यह थी कि जब कभी दस्तख़त करने का काम पड़ता, तो मौन से सामना पड़ जाता था। लाला साहब के नाम में सात अक्षर थे, और इनके लिखने में वह बेचारे घड़ी-दो घड़ी मुनीम की नाक में दम करते थे। अपने नाम के हरफ़ पूछते-पूछते दस्तख़त करना क्या था, मानो एक संग्राम था। ऐसे

आदमियों को लोग क्या समझते हैं। पर नगदनारायण की कृपा का फल देखिए। वह चौधरी बने; पंच नियत हुए, सरपंची के पद पर बैठे। यह सब तो हो गया, पर लियाक़त को जगह बाक़ी नहीं रही।

खुशामदी संप्रदाय का शिष्य होने से वह भी काम फ़तह हो गया। मेंबरी, कमिश्नरी, मजिस्ट्री, सब कुछ मिला, और अब देखिए, राय की कलगी लगा चाहती है। कहिए, इस बेवकूफ़ी के अंधकार को नाश करनेवाली उपासना से बढ़कर और कौन काम हो सकता है?"

यह सुनकर चारों तरफ़ से हर्ष-ध्वनि होने लगी। यह तय हुआ कि नीचे लिखा 'रिज़ोल्यूशन' सबकी राय से पास किया जाय—

"हर एक अच्छे देशवासी का यह धर्म है कि वह खुशामद का प्रयोग किया करे।"

इसका समर्थन करनेवाले महामहाउपाधिधारी पंडित टिमटिम शास्त्री आए। आप खड़े होकर यों कह चले—

खुसामद तें बढ़िकै तो कोऊ न भवा न होहि है। ले हम ही का चाखौ, सारस्वत चंद्रिका कुछौ न आवा तब कौमुदी मा कूदे। पर पूरी न भई। फिर इधर-उधर पूजा-पाठ के ठाठन मा दौड़त रहे। पर प्रतिष्ठा जरौ न भई। ले देखौ खुसामद की महिमा कि तहसील-दार की सिफ़ारिस से हमहूँ महामहोपाध्याय बनाय दिए गए। याह मंतव्य स्वीकार करब मा हार न होय का चही।

इसके बाद सर्वसम्मति से मंतव्य स्वीकृत हुआ, और सब उपस्थित लोगों ने बड़े ऊँचे स्वर से "वंदे खुशामदम्" का तुमुल शब्द किया।

इसके पश्चात् दूसरा प्रस्ताव उठाया गया, जो कथा के छोटे कलेवर में आज आ नहीं सकता।

इति पंचपुराणे प्रथमस्कन्धे पण्णवतितमोऽध्यायः

सप्तनवतितम अध्याय

ख़ुशामदी टट्टू

ख़ुशामदी और भंग दोनों सगी बहनें हैं। ये जिस पर कृपा करती हैं, उसकी मति भंग होने में कसर नहीं रहती। एक विद्वान् ने लिखा है कि ख़ुशामदी और निंदक, इन दोनों में पहला बड़ा बेढब है; क्योंकि वह सामने झूठी बातें गढ़ता है और निंदक पीठ पीछे। ख़ुशामदपसंद एक ऐसे रोगी के बराबर है, जिसकी समझ झूठ और सत्य को तय करने में इस्तीफ़ा दे चुकी है।

ख़ुशामद से प्रसन्न होनेवाले प्रायः वे ही होते हैं, जो योग्यता के बिना योग्यत्व की दुम लगाने के प्रेमी हैं, जिनकी घर की पूँजी इतनी ओछी है कि वे बिना दिखौआ बातों के आडंबर को सँभाल नहीं सकते, या जो ऐसे-ऐसे बछिया के सगे नातेदार हैं, जो अपने में जिस गुण को बिलकुल नहीं पाते, उसका कथन दूसरों से सुन-कर बत्तीसी वा देने को बुरा नहीं समझते।

इसका कथन तो सैकड़ों जगह पाया गया है; पर वह सब पुरानी राग-माला में है। नवाब, लाला और महाजनों के छोकरे और उत्तराधिकारी कितने ही ख़ुशामद के प्रवाह में पड़कर भवसागर की नदी के पेंदे में पहुँच गए। अब वर्तमान काल में सभी बातों ने केचली बदली है, तो ख़ुशामद उससे अलग क्योंकर रह सकती थी? उसका नया प्रहसनात्मक वृत्तांत कथा के एक रिपोर्टर ने यों लिखा है—

"गल्लूराय जिस दिन से सरकारी नौकरी की टोकरी सिर पर धरकर बैठे, उसी दिन से उनके शरीर ने कुंभकर्णी ढाँचे की नक़ल करना आरंभ कर दिया। पहले वह प्लेग के भूखे चूहे की ख़ानदानी सूरत से उपमान-उपमेय का संबंध रखते थे, अब वह बैशाख की सखी घास के चरनेवालों के भाई बनने लगे। देखते-देखते रंग और-

का-और होने लगा। रायजी की सूरत की मूरत खींचने के लिये वाण भट्ट की लेखनी की दरकार थी। पर अब वह कहाँ मिले? ख़ैर, यों समझिए कि तोंद बंबे के पानी से ठसाठस भरी मशक, नानपाई की रोटियों के बेटे से गाल, शकरकंद की-सी मोटी-मोटी उँगलियों की छटा को लिये हाथ, नगर के बदमाशों के डंडों के समान कलाई और मोटे सूकर के थूथन को शिकस्त देनेवाले ओठ थे।

मल्लू का यह मोटापा अफ़सर की लापरवाही का असर हुआ। वह मल्लू को बड़ा भारी लियाक़त और ईमानदारी का कुंट समझकर आप लापरवाही के समुद्र में विस्तर-रूपी शेषनाग की शय्या में लोटने लगा। जब मल्लू उसके पास आता, तो इधर-उधर की गपशप उड़ाकर बेवकूफ़ बनाकर चला आता, और दफ़्तर में आकर अपना महत्त्व स्थापित करता। अफ़सर की बोंबा-वृत्ति से उसका और भी रंग बँधा और दफ़्तर के कामों में वह मरहटों की चौथ लगाने लगा। वह अब अपने को अल्लामियाँ से एक-आध डिगरी कम समझने के सिवा सब बातों में नादिरशाह बनने के रंग दिखाने लगा।

एक दिन वह अपनी चारपाई पर बैठा हुआ चुरट का धुआँकश चला रहा था। दफ़्तर के नौकर-चाकर सब "जी, हाँ" वृत्ति में लगे थे। एक ने कहा—"आप बड़े ग़रीबपरवर हैं"; दूसरा बोला "अल्लामियाँ की गाय हैं"; तीसरा कहने लगा—"ताक़त में आप अली या हनूमान हैं"; चौथे ने तारीफ़ की—"आप इल्म के समुंदर हैं।" इन सब बातों से मल्लूराय फूलकर कुप्पा होने लगा।

राय मल्लू ऐसी तारीफ़ों को सुनकर आपे से गुज़रने लगा; वह बिलकुल भूल गया कि नौकरी की क्या परिस्थिति है। अब उसने

अपने ख़ुशामदी गणों के नौ भाग किए, और उनसे विक्रमादित्य के नवरत्नों की नक़ल उतारी। विक्रम के नवरत्नों में धन्वन्तरि थे। उसका स्थान एक दिहाती को मिला। क्षपणक दफ़्तर का हेड चपरासी और अमरसिंह एक मुंशीजी बने। वैताल भट्ट का स्थान रायसाहब के कहार को मिला। घटकर्पर एक खुटाई करनेवाले नियत हुए और कालिदास मुंशी बुद्धूलाल बनाए गए। वराह-मिहिर का पद बेकार समझकर रद कर दिया गया। रायसाहब की सभा के कालिदास की कविता उनकी तारीफ़ में बनाई गई थी। वह इस प्रकार थी—

राय के ख़ानदान की बातें;
सुन के कवियों को हो गईं मातें।
नगर में एक वृद्ध लाला था;
देखने में ज़रा न काला था।
रंग था उसका साहबों जैसा;
पर न था पास एक भी पैसा।
ग़रीबी की छटा निराली थी;
पास लोटा न एक थाली थी।
लाला तब भी घमंड करते थे;
घर में चूहे भी डंड करते थे।
ऐसे घर में हुए उजागरराय;
क्यों न हो उनको बात की बकवाय।
राय हैं पंडितों के पंडितजी;
सारे संसार के हैं मंडितजी।
पढ़े हैं राज-काज की बातें;
झूठबाज़ी की सब करामातें।
बैठ अंदर शराब उड़ती है;

बाहरी चाल और जुड़ती है।
लोग हिंदू उन्हें कहा करते;
पर ये नित होटलों में जा चरते।
जिए तो लाख वर्ष मेरा राय;
हमारे नौरतन को मौज कराय।

इस कविता से मल्लू साहब गद्गद हो गए। और, वह कहते हैं कि यद्यपि कवि लोग, और मुख्यकर हिंदी के कवि लोग, मूर्ख हुआ करते हैं, पर मुंशीजी की कविता में जो मज़ा आया, वह कालिदास में भी कभी नहीं आया था। कालिदास की निरंकुशता तो बता चुके हैं, तो अब और बाक़ी क्या रहा? इन नवरत्नों के सहारे आप साहित्य-सेवियों के ख़लीफ़ा होने का दावा करते हैं, और अपने को करामाती समझने में एक इंच की कसर नहीं रखते। किसी ने ठीक कहा है—

ख़ुशामद तू बला कहाँ की है!
कुछ पता है नहीं जहाँ की है!
अक़्लमंदों की अक़्ल खोती है;
सचाई तेरे आगे रोती है।
जिस किसी का शिकार करती है;
उसको बाँसल बना के धरती है।

इति पंचपुराणे प्रथमस्कंधे सप्तनवतितमोऽध्यायः

अष्टनवतितम अध्याय

फ़ैशन-प्रदर्शिनी

चौक, प्रत्येक नगर में, फ़ैशन का घर है। चमक-दमक से भरे आदमी वहाँ दिखाई पड़ते हैं। फ़ैशन की छटा वहाँ दर्शन

देती है। गिरहकट लोग उसी स्थान में अपनी विद्या का चमत्कार काम में लाते हैं, और ज़माने-भर के निकम्मे लोग चाहे और जगह न भी जायँ, पर चौक की भूमि को वे बराबर कृतार्थ ही किया करते हैं। एक कोने पर बैठकर चौक की चाल को देखना मनुष्यों के अजायबघर को देखने से किसी अवस्था में कम नहीं है। फ़ैशन में क्या-क्या परिवर्तन हुए हैं, इसके तो वहाँ प्रत्यक्ष उदाहरण दिखाई पड़ते हैं। जिस प्रकार चिड़ीमारों के बाज़ार में तरह-तरह के पक्षी पाए जाते हैं, बड़े प्राचीन सर में रंग-बिरंग के मच्छ और मछलियाँ दिखती हैं, उसी तरह चौक में चित्र-विचित्र प्रकार की फ़ैशन-लीला से लिसे लोग दृष्टिगोचर होते हैं।

कई दिन हुए, ऐसे लोगों के आचरण का अवलोकन करने के लिये बाबा मस्तराम चौक की एक दूकान पर जाकर बैठे, और अपने अनुभव की रिपोर्ट लिखवाने लगे। आपने कहा कि मंगलाचरण करना हमारे देश का पुराना शिष्टाचार है। इसलिये फ़ैशन के वर्णन को उससे ख़ाली नहीं रखना चाहिए। मंगलाचार में आपने कहा—

चौकदेवी, फ़ैशनों की खान हो;
सच तो है यह, तुम नगर की जान हो।
बेचते सौदा फिरें किस ढंग से;
भीख माँगें काव्यपाठी रंग से।
गुल मचाते आ रहे हैं जो गली;
मानो पढ़ते चौक की बिरदावली।
यह दुकानें क्या चमकती चाल हैं;
फाँस लेने का सरासर जाल हैं।
रंडियाँ कोठों पॅ लटकी-सी खड़ी;
छीन लें सर्वस्व औ, मारें छड़ी

दाम माँगें एक के वस, चौगुने ;
और की सुनते नहीं, अपनी धुने ।
जो कहीं मिल जाय झंझट के दलाल ;
बस, समझ लो होगई मूंड़ी हलाल ।
चार आने, आठ आने की न बात ;
चल गई, तो हो गई पूँजी को मात ।
चौक की बस, वंदना करते रहो ;
कलयुगीदेवी से तुम डरते रहो ।

यह मंगलाष्टक समाप्त होने भी नहीं पाया था कि सामने से एक साहब आते दिखाई पड़े । सिर से पैर तक चुस्त पोशाक डटे, मूछें खड़ी किए और गालों को पानों से फुलाए बड़ी ऐंठ-अकड़ से देखते पास से होकर निकले । बाबा मस्तराम ने कहा—"यह महाजन नहीं, महा 'जिन्न' हैं, अर्थात् जीते-जी प्रेत-रूप में स्थित हैं । मतलब यह कि धर्म, और शर्म सबका इष्टदेव नगददेवता को मानते हैं । वह इनके पास है । बस, यह उस देवता के पुजारी बन गए । पुजारी तो पूजा के अरि अर्थ ही से प्रकट हैं ।"

इतना कहकर मस्तराम ने कुछ इनकी भी स्तुति सुनाई, जिसका कुछ अंश यह है—

पाय हराम भरी कमला,
समला सिर दै नित धाय रहे हैं ।
बीर खुशामद के महाराज,
जमाकर तोंद फुलाय रहे हैं ।
त्यों गनिकागन के सरदार,
सुकूठन चूंद चढ़ाय रहे हैं ;
बात सुनै कविराजन की,
बस घोंघन सो मुँह बाय रहे हैं ।

बाबा मस्तराम जब कविता कहने लगते हैं, तो धाराप्रवाह रुकता नहीं। फिर बोले—

ये दौलत भी रंगत बदल डालती है;
नए ढंग से रूप गढ़ डालती है।
किसी को फँसाकर बनाती है मजनूँ;
किसी को गधे की तरह पालती है।
सवारी बना जब कि दौलत का कोई;
तो पहले का ख़ाका जला डालती है।
जो "हम-हम" का आदी हुआ तो समझिए;
कि नेचर भी मिट्टी जला डालती है।

इतना कहकर आपने अपने काव्य का दूसरा सोता चलाया। वह यों था—

गरम टट टें-टें करें यह नेचर की चाल;
भौंकत पालू स्वान सों रहें ताल बेताल।
जो गरीब गोवर भरो होय माल को ईस;
बनमानुस मानुस बने लपकें, काढ़े खीस।
बा र-राज पायो न कुछ, बने महाजन आज;
तिनकी बातें देखिके लाजहु आवत लाज।
ठसक चाल अकड़त चलें समुझत आपुहि ईस;
मूरखता के सकट के, समझौ तिन्हें सहीस।
रंडिन के पूजक जिते नेता बने समाज;
तितै कुशल की कौन फिर, बूड़ो लाज-जहाज।

मस्तराम की यह काव्य-माला फिर भी पूरी नहीं होने पाई; क्योंकि आपने इसके साथ ही यह कहना आरंभ कर दिया—

दौलत पाय बदौलत झूठ के,
ऊँट से ऐंठत मूरति ठाठ के।

काव्यकला सुनि कै विकला बनि,
बाय रहे मुँह उल्लुहि काठ के।
त्यों कमलासन जानै कहा यह,
पंडित गाली गलौज के पाठ के;
भूमि के भार हैं व्यर्थ महाजन,
आठ के हाँ चढ़े पूरे हाँ साठ के।

महाराज की इस आशु कविता और समालोचना को सुनकर विचित्र भाव से मन पूरित हो गया।

अब आप कहने लगे—

महाजन शब्द का अर्थ है बड़ा आदमी। इससे लंबाई-चौड़ाई की बड़ाई नहीं ली जा सकती। बड़ा वह है, जो बड़ा काम करे अर्थात् दूसरों को लाभ पहुँचा सके। जब यही नहीं हो सका, तो बड़प्पन गया हवा खाने, दानी गए स्वर्ग में, अब तो वे रह गए हैं कि—

जव के षोडस भाग करि, ताके टुकड़े बीस;
लाला जी संकल्प कर देन लगे बकसीस।

या

"दोना पात बबूर के, तामें तनिक पिसान;
लालाजी लागे करन, क्वों-क्वों यह दान।"

फिर आपने कहा—यदि ये बड़े आदमी कुछ बड़े काम करते होते, तो देश का उद्धार हो गया होता। मस्तरामजी की कविता का प्रवाह इतना बढ़ गया कि यहाँ पर ही कथा का अध्याय समाप्त करना पड़ा।

इति पंचपुराणे प्रथमस्कंधे अष्टनवतितमोऽध्यायः

एकोनशततम अध्याय

धर्म की हार

इतिहास लिखनेवालों ने बड़े बड़े धावों का वर्णन किया, लड़ाइयों का पूरा हाल पुस्तकों में लिख डाला, पर एक बात में वे बुरी तरह चूके। किसी ने यह नहीं बताया कि हिन्दुओं के राजा धर्माचारजी पर कौन धावे हुए और किस प्रकार से वह हज़रत इमामहुसैन की तरह गला घोटकर मारे गए। ख़ाली मारे ही नहीं गए, उनकी 'मज़ार' या 'क़ब्र' का भी कहीं नाम-निशान रखने को जगह नहीं मिली, और उनके परम शत्रु भ्रष्टाचारजी की सेना ने अपना प्रभाव जमाकर सब तितर-बितर कर दिया। इसका कथन किसी इतिहास की पुस्तक में नहीं है।

कहते हैं कि, पुराने ज़माने में धर्माचार की बड़ी तूती बोलती थी। उनकी आज्ञा से अन्य धर्मवालों का स्पर्श किया जल तो दूर रहा, उनसे बोलना भी त्याज्य चीज़ों में गिना जाता था। जब मुसलमानों ने यहाँ का राज्य अपने हाथ में लिया, तब धर्माचार की हुकूमत चारों तरफ़ मानी जाती थी। विदेशी आचार या भ्रष्टाचार ने जब यहाँ पदार्पण किया, तब दोनों का बड़ा भयंकर संग्राम हुआ। हज़ारों क्या, लाखों सिपाही ऐसे निकले, जो टीका छुड़ाने के नाम पर जूझ गए। ऐसे लोगों को हराना एक टेढ़ी खीर थी। चिरकाल तक नवाब भ्रष्टाचार और राजा धर्माचार से घोर युद्ध हुआ। जब कोई करामात नहीं चली, तब नवाब ने राजा की सेना को परास्त करने का एक नया उपाय निकाला।

प्रत्येक नगर के बाज़ारों में बाज़ारू बीबियों का ब्रिगेड ले जाकर बैठाया गया, और कोठों पर से कामदेव के बाण मार-मारकर इस ज़नानी सेना ने धर्माचार की पलटन को गिराना आरंभ कर दिया।

प्रतिफल भयंकर निकला। चारों वर्णों की रेजीमेंटें इस सेना से म. गिराई गईं। अन्त में जो हुआ, सो सबको मालूम है। पहले कायथों की फ़ौज मारी गई, फिर बनिए शिकार बनाए गए, उसके बाद राजपूतों की सेना हार भागी, और अंत में ब्राह्मणों की करारी मंडली भरती की गई। अन्त में धर्माचारजी के ऊपर छुरी फेरी गई और सब और-के-और कर डाले गये। धर्माचार के मारे जाने का हाल यों है कि पंडित गड़बड़ सुकुल के यहाँ विवाह था। बरसात में बड़े चुटियाधारी बराती पधारे। ऐसे लोग जो त्रिकाल संध्या और तर्पण करनेवाले थे, जो रोटी को भी धोकर पेट में जाने की आज्ञा देते थे, जिनके यहाँ छुआछूत का पूरा राज्य था। इस फ़ैशन के लोग जिस जगह आवें, वहाँ की ज़मीन पवित्र मानी जाती थी। इस नियम में गड़बड़ सुकुल का सारा घर पुनीत हो गया होगा। इसमें किसी को संदेह की जगह न होनी चाहिये।

ख़ैर, जब विवाह हो चुका, तब नगर के निवासियों को दावत दी गई। उसमें नगर के बाज़ार में बैठनेवाली गणिकाएँ बुलाई गईं। सुकुल का घर पंक्तिपावन भूदेवों की कृपा से पहले पवित्र हो चुका था। अब यह अपवित्रता फैलानेवाली मूर्तियाँ पधारीं। इससे यह अनुमान सहज ही सिद्ध होता है कि पंडित की पहली सफ़ाई का बिलकुल सफ़ाया हो गया। वेश्या की महफ़िलों के बाद एक युवक का सर्वस्व नष्ट होना सर्वदा से सुना जाता है। वही हाल यहाँ भी हुआ।

सुकुल की महफ़िल का चेला होने को उसका लड़का ही वेश्या-गण ने तजवीज़ किया। उस दिन से वह नित्य चौक की हवा खाने को तैयार हो गया। महफ़िली मुलाक़ात उसको डूबने के घाट तक घसीट ले गई। कुछ दिन तक तो उस पर बँभनई का असर रहा, फिर धीरे-धीरे यह रंग बदलने लगा। पहले तो वह मियाँ के लाए लड़के के पान खाने को राज़ी हुआ। फिर फ़र्श पर पानी पीने

की चाल का चेला बना। वह बीबी के डब्बे के पान खाने में "मुख सदा शुचि" की दीक्षा मानने लगा, और धीरे-धीरे बीबी का और उसका "एक जान दो क़ालिब" वाला मामला हो गया। अब कुछ दिनों बाद वह ऊपर से सुकुल और आंतरिक बिलकुल मियाँ हो गया। सब उससे खान-पान करते रहे। जानने पर भी अमीरी की चाल के आगे कोई परिवारी चाल चला नहीं सके। इस हिसाब से पुराने लोगों ने शिकस्त मानी, और यह तय किया कि जिसको जान लो कि अमीर है, और भक्ष्याभक्ष्य का विचार नहीं करता, या यवनी को कुटुंबिन बनाकर रखना चाहता है, तो उससे कुछ कहना न चाहिए। जिस दिन यह चाल मान ली गई, उसी दिन ग़रीब धर्माचार का गला घोटा गया।

इति पंचपुराणे प्रथमस्कंधे एकोनशततमोऽध्यायः

शततम अध्याय

फ़ैशन-प्रदर्शिनी

परिशिष्ट

बाबा मस्तराम चौक बाज़ार के एक कोने से बैठे संसार की कैफ़ियत देख रहे थे। सामने एक नवाब की-सी चाल के जीव दिखाई दिए। आपने कहा—"इनको लोग "शौक़ीन" का उपनाम देते हैं। यह जीवन को व्यर्थ खोनेवालों के नमूने हैं।"

इतना कहकर मस्तराम ने एक व्याख्यान सुनाया, जिसका मतलब यह था—थोड़ी दूर पर कंगालपुर नाम की एक बस्ती थी। यहाँ ग़रीबी, मुफ़लिसी, फ़ाक़ेमस्ती और उसकी बहनें बेकारी, निंदावृत्ति, बकवाद आदि का पूरा गौरव था, और हर तरफ़ उन्हीं की तूती बोलती थी। यहाँ जिसके पास हज़ार का माल होता, वह अपनेको धार्मिक गिनता, दो हज़ारवाला धुरानसीबों में समझा

जाता, और दस-पंद्रह हज़ार का आदमी कुबेर के घोड़े को भी ला मारने को तत्पर रहता था।

अपने को धनिक कहनेवालों को कुछ-न-कुछ ख़र्च करना ही पड़ता है, और इस कारण कंगालपुर के लोग कंगाल होने पर भी ख़र्च करने को बुरा नहीं समझते थे। ग़रीबी के साथ-साथ फ़ाकेड़-मस्ती का साथ हो जाया करता है। इस नगर में ऐसे लोगों की कमी नहीं थी, जो दिन-भर ऐसे काम करते थे, जो निष्‍ - कार्य के सगे भाई अर्थात् बेकाम होने में कुछ कसर नहीं रखते थे। ऐसे ही लोगों में कचौरी नवाब की गिनती थी। यह हिंदुओं में नवाब गिने जाते थे, और काम करने में किसी नवाबज़ादे से कम नहीं थे।

कचौड़ी नवाब प्रातःकाल उठकर भगवान् के नाम की जगह अँगड़ाइयों और जम्हाइयों से काम लेता। फिर आँखें मलता हुआ कोठे पर पहुँचता। ज्योतिषी के समान आकाश को ख़ूब देखता, और फिर "कूकू" युद्ध का अनुष्ठान आरंभ करता। कबूतर पालने-वाले "कू-कू" करके उन्हें उड़ाते और "आ-आ" कहकर बुलाते हैं। मतलब यह कि कचौरी नवाब सवेरे यह कबूतर-संग्राम और फिर खोए हुए पक्षियों को ढूँढने, और पाए हुओं के बेचने का व्यापार करते। भूलकर भाग जानेवाले कबूतर की टाँगें पकड़कर यम-यातना के समान दंड देते। दोपहर को सोते और फिर तीसरे पहर गंजीफ़े और चौसर का युद्ध आरंभ करते हैं। सायंकाल को हार-जीत की लज्जा मिटाने के लिये वह चौक जाकर अपनी दिन-भर की दिन-चर्या पूरी करते हैं।

बाबा मस्तराम ने नवाबी चाल के लोगों की अनेकों बातें अपने अनुभव की सुनाईं; पर उनका विस्तार कथाभाग के बढ़ जाने के कारण यहाँ पर रोकना पड़ता है।

इति पंचपुराणे प्रथमस्कंधे शततमोऽध्यायः